श्रीवीतरागाय नमः

नरक और स्वर्ग

लेखक :
श्रीभागचन्द जी महाराज

प्रकाशक
तपोनिधि श्रीफकीर चन्द जैन
स्मारक-समिति
टोहाना शहर (हिसार)

प्रकाशक :
तपोनिधि श्रीफकीर चन्द्र जैन

स्मारक समिति
टोहाना शहर (हिसार) हरयाणा

प्रवेश .
प्रथमावृत्ति, प्रति एक हजार

स० १९७० मूल्य दो रुपया

मुद्रक :
देवदत्त शास्त्री विद्याभास्कर
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध सस्थान
साधु आश्रम होशियारपुर ।

समर्पण

किसको ?

पूज्य गुरुदेव कोमल स्वभाव, मातृ-हृदय मनोहर वक्ता

श्रीटेकचन्द् जी महाराज

के

कर कमलों

मे

सादर समर्पित

नरक और स्वर्ग

पुस्तक

—मुनि भागचन्द

को मिठाई, दूध तो क्या खट्टी लस्सी, (छाछ) रोटी भी नसीब न हो। पढाई के लिए पुस्तक भी न मिले। साम्यवाद का फारमूला बहुत अच्छा है कि बाट कर खाओ। फालतू जमा मत करो। लेकिन आज के साम्यवाद मे दो बुराईया आ गई हैं। हिंसा मे विश्वास और पुण्य-पाप, नर्क-स्वर्ग से इन्कार।

खैर कम्युनिस्ट तो नास्तिक है ही किन्तु आश्चर्य तो उन लोगो पर है जो दम तो भरते हैं आस्तिकता का किन्तु स्वर्ग नरक को मानते नही। जो पक्के आस्तिक हैं वह स्वर्ग नरक को अच्छी तरह मानते है उनको नास्तिक कह देते हैं। स्वर्ग नरक को न मानते हुए भी अपने आप को आस्तिक होने का दावा करते हैं। वही बात हुई —'है तो काली कुदर्शनी दावा करे अप्सरा या जयपुर की महारानी गायत्रीदेवी होने का आर्य समाजी स्वर्ग नरक के स्थान विशेष को नहा मानते यानि परलोक मे विश्वास नही करते फिर भी आस्तिक होने का ठेका लिये हुये हैं। जैनियों को नास्तिक कहते सकोच नही करते जो पुण्य-पाप लोक-परलोक मे अटूट विश्वास रखते हैं।

जैन तो परलोक को मानते ही हैं पाणिनीय ऋषि भी परलोक मे विश्वास रखते थे जिसने आस्तिक नास्तिक का फेसला करते हुए अपने अष्टाध्यायी पाणनीय व्याकरण में आस्तिक नास्तिक का स्वरूप इस प्रकार किया है।

"आस्ति नास्ति दिष्ट मति" ४।४।६० सिद्धान्त कोमुदी तद्धित ठगा धिकार। तदस्त्यस्येत्मेव आस्ति परलोक इत्मेवे मतिर्यस्य स आस्तिक। नास्तीति मतिर्यस्य सह नास्तिक अर्थात जिसका परलोक मे विश्वास है वह आस्तिक है। और परलोक मे जिसका विश्वास नही है वह नास्तिक है।

आस्तिक नास्तिक शब्द का अर्थ श्री हेमचन्द्र आचार्य ने इस प्रकार किया है।

"नास्ति पुण्यं पापमिति मति रस्य नास्तिक" पुण्य पाप नही है ऐसा जिसका विश्वास है वह नास्तिक है। सूत्र कृताग मे बतलाया गया है "नत्थि पुण्णे व पावे वा नत्थि लोऐ इतो वरे सरीरस्स विणासेण विणासो होई देहिणो',

पुण्य और पाप नही है इस लोक से दूसरा लोक नही है शरीर के नाश से आत्मा का नाश भी होता है ऐसा नास्तिक मानते हैं। वाम मार्गाय तो घोर नास्तिक हैं। वह तो धर्म पुण्य कुछ नही मानते उनका तो यही नारा है की यह लोक मीठा परलोक किसने दीठा (देखा) इसलिये खाओ पीओ मोज उडाओ। नरक स्वर्ग यह सब भ्रम है। यही सब कुछ है। आगे कुछ नही आने जाने वाला। यह लोग प्रत्यक्षवादी हैं परोक्ष को नही मानते। यह उनकी भ्रान्ति मात्र है प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो मानने पडते है। क्या समुन्द्र के दोनों किनारो को कौन नही मानता चाहे आस्तिक हो चाहे नास्तिक हो सभी मानते हैं। जो एक किनारे को तो माने दूसरे किनारे (साहिल) को न माने तो उसे समझदार नही कह सकते पागल ही कहेंगे जो दोनों किनारो को ही न माने वह तो पागलों का सरदार ही कहा जा सकता है। जो यह माने कि यह लोक परलोक सब मिथ्या है स्वप्न है वेदान्त का यह नारा हैं। जो ऐसा समझ लेते हैं कि स्वर्ग नरक या पुण्य पाप का फल नही है वह उस भोले कबूतर की तरह हैं जो कि बिल्ली के आने पर आख बन्द कर लेता है।

धार्मिक कहलाने वाली तीन समाजें ऐसी है जो कि नास्तिकता का चोला पहने हुए हैं तीनो ही समाज नरक स्वर्ग को नही मानती वे हैं ब्रह्म समाज, देव समाज और आर्य

को मिठाई, दूध तो क्या खट्टी लस्सी, (छाछ) रोटी भी नसीब न हो। पढाई के लिए पुस्तक भी न मिले। साम्यवाद का फारमूला बहुत अच्छा है कि बाट कर खाओ। फालतू जमा मत करो। लेकिन आज के साम्यवाद मे दो बुराईया आ गई है। हिंसा मे विश्वास और पुण्य-पाप, नर्क-स्वर्ग से इन्कार।

खैर कम्युनिस्ट तो नास्तिक है ही किन्तु आश्चर्य तो उन लोगो पर है जो दम तो भरते हैं आस्तिकता का किन्तु स्वर्ग नरक को मानते नही। जो पक्के आस्तिक हैं वह स्वर्ग नरक को अच्छी तरह मानते है उनको नास्तिक कह देते हैं। स्वर्ग नरक को न मानते हुए भी अपने आप को आस्तिक होने का दावा करते हैं। वही बात हुई —'है तो काली कुदर्शनी दावा करे अप्सरा या जयपुर की महाराणी गायत्रीदेवी होने का आर्य समाजी स्वर्ग नरक के स्थान विशेष को नहा मानते यानि परलोक मे विश्वास नही करते फिर भी आस्तिक होने का ठेका लिये हुये हैं। जैनियो को नास्तिक कहते सकोच नही करते जो पुण्य-पाप लोक-परलोक मे अटूट विश्वास रखते हैं।

जैन तो परलोक को मानते ही हैं पाणिनीय ऋषि भी परलोक मे विश्वास रखते थे जिसने आस्तिक नास्तिक का फेंसला करते हुए अपने अष्टाध्यायी पाणनीय व्याकरण में आस्तिक नास्तिक का स्वरूप इस प्रकार किया है।

"आस्ति नास्ति दिष्ट मति" ४।४।६० सिद्धान्त कोमुदी तद्धित ढगा धिकार। तदस्त्यरयेत्मेव आस्ति परलोक इत्मेवे मतिर्यस्य स आस्तिक। नास्तीति मतिर्यस्य सह नास्तिक अर्थात जिसका परलोक मे विश्वास है वह आस्तिक है। और परलोक मे जिसका विश्वास नही है वह नास्तिक है।

आस्तिक नास्तिक शब्द का अर्थ श्री हेमचन्द्र आचार्य ने इस प्रकार किया है।

"नास्ति पुण्यं पापमिति मति रस्य नास्तिक" पुण्य पाप नही है ऐसा जिसका विश्वास है वह नास्तिक है । सूत्र कृतांग मे बतलाया गया है "नत्थि पुण्णे व पावे वा नत्थि लोऐ इतो वरे सरीरस्स विणासेण विणासो होई देहिणो',

पुण्य और पाप नही है इस लोक से दूसरा लोक नही है शरीर के नाश से आत्मा का नाश भी होता है ऐसा नास्तिक मानते हैं । वाम मार्गीय तो घोर नास्तिक हैं। वह तो धर्म पुण्य कुछ नही मानते उनका तो यही नारा है की यह लोक मीठा परलोक किसने दीठा (देखा) इसलिये खाओ पीओ मौज उडाओ । नरक स्वर्ग यह सब भ्रम है । यही सब कुछ है । आगे कुछ नही आने जाने वाला । यह लोग प्रत्यक्षवादी हैं परोक्ष को नही मानते । यह उनकी भ्रान्ति मात्र हैं प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो मानने पडते है । क्या समुन्द्र के दोनों किनारो को कौन नही मानता चाहे आस्तिक हो चाहे नास्तिक हो सभी मानते हैं । जो एक किनारे को तो माने दूसरे किनारे (साहिल) को न माने तो उसे समझदार नही कह सकते पागल ही कहेगे जो दोनों किनारो को ही न माने वह तो पागलों का सरदार ही कहा जा सकता है । जो यह माने कि यह लोक परलोक सब मिथ्या है स्वप्न है वेदान्त का यह नारा हैं। जो ऐसा समझ लेते हैं कि स्वर्ग नरक या पुण्य पाप का फल नही है वह उस भोले कबूतर की तरह हैं जो कि बिल्ली के आने पर आख बन्द कर लेता है ।

धार्मिक कहलाने वाली तीन समाजें ऐसी है जो कि नास्तिकता का चोला पहने हुए हैं तीनों ही समाज नरक स्वर्ग को नही मानती वे हैं ब्रह्म समाज, देव समाज और आर्य

समाज । ब्रह्म समाज देव समाज, तो ईश्वर को भी नही मानती नरक स्वर्ग तो क्या मानना था । हा आर्य समाज नरक स्वर्ग तो नही मानते ।किन्तु ईश्वर के पीछे जरूर पडे हुए है इसके दिवाने है । पता नही ईश्वर उनका क्या हल चलाता है या चूल्हा चौका करता है देखा नही कुछ करते । ईश्वर की दुहाई तो बहुत देते है ईश्वर बहुत कुछ करता है मगर करता कराता कुछ नही । नरक का अर्थ दु ख विशेप और स्वर्ग का अर्थ सुख विशेप जैन दर्शन और आर्यसमाज दोनो यही मानते है. । जहा दु ख अधिक है वहा नरक है, जहा सुख ज्यादा है वहा स्वर्ग है । यहा तक तो आर्य समाज जैन समाज मे कोई मत भेद नहीं । मत भेद है तो सुख दु ख भोगने के स्थान का है । स्थान विशेष को मानने न मानने का है । आर्य समाज तो क्या और भी बहुत से लोग नही मानते वैसे ईसाई मुसलमान भी स्वर्ग नरक को मानते हैं । मुसलमानो मे नरक के नाम आते हैं । दोजख और जन्नहुम और स्वर्ग के नाम भी आते है जन्नत भीश्त फरदोस खुलद और (वाईबल) मे (Hell) और स्वर्ग के भी दो नाम आते हैं (Heaven and paradies) यह वात दूसरा है कि उनको नरक स्वर्ग का विशेष ज्ञान नही लेकिन मानते जरूर हैं । बहुत से यह मानते हैं कि हमारी यही के जीवन की पारिवारिक समस्याएँ आर्थिक समस्याए, नही सुलझ पाती । हम स्वर्ग नरक के सशय मे क्यो उलझें । नरक स्वर्ग होगा हमने क्या लेना । किन्तु जब तक जीवन है समस्याएँ तो रहेगी । जिन्होंने यहा अपना जीवन स्वर्ग जैसा बना लिया उनको आगे भी स्वर्ग मिलेगा । जिन्होंने अपना जावन द्वेष की अग्नि मे, हिंसा की अग्नि मे जला रखा है । उनको नरक ही मिलना है और क्या मिलेगा । वैसे यहा नरक स्वर्ग तो

नही। नरक स्वर्ग का नमूना यहा जरूर है। नरक की निशानी यह है कि —

"घी पुराना धान नया घर कलिहारी नार।
चौथे मैले कपडे नरक निशानी चार।।"

स्वर्ग की निशानी यह है —

घी नया धान पुराना घर कुलवन्ती नार।
चौथे पुत्र खेले आगन मे स्वर्ग निशानी चार॥

यानि जिसके घर मे पता ही नही कितने महीने सालो का बदबूदार घी है। अनाज उसी वक्त डिपू मे से लाना उसी वक्त खाना। वो भी कभी मिले कभी नही मिले। घर मे औरत ऐसी लडाकी, कर्कश कठोर स्वभाव की, रोटी सुख से नही खाने देती और कपडे ऐसे मैले कुचैले बदबू वाले है कि पास मे बैठा न जाए। या दूसरे घर मे पाच सात लडकिया। सिर पर कर्जा है आमदनी ५ की खर्च १० का है। और जीवन को बीमारीयो ने घेर रखा है जैसे शुगर, बवासीर, दमा, खासी और कैन्सर आदि नरक तो नही नरक जैसा मानसिक शारीरिक दुख भोग रहे हैं। और भी कहावत है —

जिसने नही देखे यम, वह देखे सिपाही और नहग।

स्वर्ग का नमूना यह है कि जिसके घर मे ताजा घी, मक्खन, दूध, मलाई, अनाज के कोठे भरे हैं और पढी लिखी आज्ञाकारी स्नेहमयी सुन्दर स्त्री हैं। और आगन मे सुन्दर लडके लडकियां खेलते हैं। यह स्वर्ग की चार निशानी हैं और भी एअर कडीशन के शानदार बगले हैं कारे है बहारे है दलकश नजारे हैं दूध देने वाली भैंसे हैं बैंक बैलस हैं, शरीर स्वस्थ और सुन्दर है। समाज में मान प्रतिष्ठा है। असली स्वर्ग तो नही लेकिन स्वर्ग जैसा

नजारा है ऐसे दु ख के स्थान नरक और सुख विशेप के स्थान स्वग मे कौन-कौन से कम करके जाते है जीव।

नरक के चार कारण है। महा आरम्भ, महा परिग्रह पञ्चेन्द्रिय जीव का वध और मासाहार। स्वर्ग मे जाने के चार कारण हैं।

साधु और श्रावक धर्मो का पालन करने से अज्ञान पूर्वक तप करने से, अज्ञान कष्ट से, अनिच्छा से शील पालने से।

नरक और स्वग मे जाना दो ही शब्दो मे भगवान कहते है।

पाप करने से नरक और धर्म का पालन करने से स्वर्ग। जैसे वेद व्यास जी ने अठारह पुरानो का सार दो ही शब्दो को कह डाला है।

दूसरो पे उपकार करना पुण्य और दूसरो को दु ख पीडा देना पाप-पाप का फल कडवा है पुण्य का फल मधुर है। इस पुस्तक के लिखने का क्या प्रयोजन था। आज के इन्सान स्वर्ग नरक की बात पर कम विश्वास रखते है। नरक स्वर्ग का विश्वास दिलाने के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। जो लोग पशु हत्या करने और मास खाने मे लगे हुए है। उनको कुछ प्रकाश मिल सके। पशु हत्या करना मास खाना छोड दें। मेरा तो यह विश्वास है कि नास्तिक से नास्तिक करूतम से क्रूर व्यक्ति भी एक बार पुस्तक पढ जाएगा। उसके सामने नरक का रोमाचकारी चित्र जरूर घूम जायेगा। वह जरूर सोचने पर मजबूर होगा कि हिंसा करने और मास खाने से इतना भयकर फल होता है हो सकता है कि मोटी क्रूर हिंसा करनी छोड दे। सूक्ष्म हिंसा तो छूट नही सकती इस जीवन में किसी से भी। क्योंकि जब तक तीनो योगो का स्पन्दन

व्यापार चलता है । हिंसा का तार जुडा ही रहेगा । क्रिया का प्रवाह जारी रहेगा । तेहरवे गुणस्थान तक भले ही वो क्रिया पुण्य रूप सुख रूप क्यो न हो। हिंसा का तार टूटेगा चौहदवें गुण स्थान मे पहुच कर। वहा पर पूर्ण अहिंसा का रूप सामने आता है । इस जीवन मे मोटी हिंसा छूट जाए। यही बहुत कुछ हैं इस पुस्तक का यही उद्देश्य है लिखने का ।

प्रस्तुत पुस्तक मे पहले नरक के नाम स्थान फिर नरक के दुखो का सजीव चित्र खेंचा गया है। जो पढने से पता चलेगा यह पहला डारक पहलू है पुस्तक का इस के बाद फिर स्वर्ग के नाम विमान स्वर्गो के सुखो का उजला पहलू दृष्टिगत होगा पढने वालो को हो सकता है । पढने वालो के मन के सागर मे विचार तिरगें उठने लगेंगी कि हम भी ऐसे अनुपम सुख के स्थान स्वर्ग मे जाने के काम करे । जिसे स्वर्ग के सुख प्राप्त हो सकें। इस पुस्तक मे पाप की आलोचना न करने और करने का कटूक और मधुर फल दिखाया गया है। पहले भवन पति वाण व्यन्तरो के स्थानों और सुखो का हाल लिखा है। आगे ज्योतिषियो का सुखोप भोग के सुख का दृष्टान्त देकर बताया गया है फिर छबीस देवलोको का मनोरम अनुपम सुखो का कथन किया गया है इस प्रकार नरक और स्वर्ग की पुस्तक लिखी गई है। शास्त्रो से सग्रह करके पहले पाठ और अर्थ दोनो लिखे गये हैं बाद मे केवल भावार्थ ही लिखा गया है। पुस्तक अधिक बडी न हो जाये बडे बडे ग्रन्थों को पढने का समय कहा है आज के व्यस्त व्यक्तियो के पास पहले घर मे एक कमाता था सारा कटुम्ब खाता था। अब सारा परिवार कमाता है तब भी पूरा नही पडता है। इसके दो कारण हैं, एक फजूल खर्ची और दूसरे महगाई। ज्योतिषियो के राजा चन्द्रमा के बारे मे

नरक और स्वर्ग

नाम

की पुस्तक के छपाने मे द्रव्य दाताओ का
सूची इस प्रकार है।

२१) दिलबागराय जैन हासी वाले ।
३१) बखशीराम भगवानदास जालधर वाले ।
३४) डा० पवनकुमार जैन धुरीभशोड वाले।
१००) कलावती जैन धर्मपत्नी बाबू सोहनलाल जैन लुधियाना वाले।
१००) चौ० दलीपचद जैन बजाज खरेन्टी वाले चडीगढ़।
१००) ला० मुनशीराम दिवानचद जैन लुधियाना वाले।
१००) ला० वेदप्रकाश जैन नोहरयाबाग लुधियाना।
१००) विद्यादेवी जैन धर्मपत्नी ला० प्यारेलाल नेताराम गुलाब भ्राड लुधियाना।
१००) दानवीर ला० कोटुमल राजकुमार जैन लुधियाना।
१००) सेठ अछरुमल प्रकाशचन्द जैन पटियाला।
१००) ला० ज्ञानचन्द चमनलाल जैन सच्ची दुकान मालेर-कोटला लन्दन से सुरीन्द्रा कुमारी की शादी की खुशी मे।
१००) मदनलाल ईशवरदास जैन मालेरकोटला।

२१) ड्राइंग मास्टर हेमराजजी जैन मालेरकोटला।

२१) ला० वचनामल जैन ओसवाल मालेरकोटला।

५१) चौ० श्रीराम सराफ मालेरकोटला।

१०१) गुण माला जैन धर्मपत्नी बाबु राममूर्ति लोहेवाले मालेरकोटला।

१००) ला० रामधारी जैन लोहे वाले मालेर कोटला।

१००) सीतादेवी जैन धर्म पत्नी बाबू हकूमतराय जैन बैंक मनेजर सुनाम वाले।

१०१) संतोषकुमारी जैन सुपुत्री बाबू निरंजनदास जैन मूनक वाले।

१०५) भक्त वेदप्रकाश जैन सुपत्र देवकीदेवी जैन मालेरकोटला।

जिन सज्जनों ने इस पुस्तक के लिए
दान दिया है मैं उनका
हार्दिक धन्यवाद
करता हूँ।

सेक्रेटरी एस एस जैन-सभा
मालेरकोटला

प्रेरणा दायक

श्री सन्त सेवक
श्री मेहरचन्द जैन
होशियारपुर

नरक और स्वर्ग

(उत्तराध्ययन सूत्र, अ० ३६)

नेरइया सत्तविहा, पुढवीसु सत्तेसु भवे।
रयणाभसक्कराभा, वालुयाभा य आहिया ॥१५६॥

पकाभा धूमाभा, तमा तमतमा तहा ।
इइ नेरइया एए, सत्तहा परिकित्तिया ॥१५७॥

अर्थ—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुप्रभा, पकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा और तमतमाप्रभा इन सात पृथ्वियो मे रहने वाले नैरयिक जीव सात प्रकार के हैं।

लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे उ वियाहिया।
इतो कालविभाग तु, तेसिं वुच्छ चउव्विह ॥१५८॥

अर्थ—ये सभी नारक जीव, लोक के एक विभाग मे रहते है, अब काल की अपेक्षा इनके चार भेद कहता हूँ।

संतइ पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥१५९॥

अर्थ—काल प्रवाह की अपेक्षा नारक आदि-अन्तरहित है और स्थिति की अपेक्षा आदि-अन्त सहित हैं।

सागरोवममेग तु, उक्कोसेण वियाहिया ।
पढमाइ जहन्नेण, दसवाससहस्सिया ॥१६०॥

अर्थ—पहली नारकी मे स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक सागरोपम की है ।

तिण्णेव सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया ।
दुच्चाए जहन्नेणं, एग तु सागरोवम ॥१६१॥

अर्थ—दूसरी नरक मे स्थिति जघन्य एक सागरोपम और उत्कृष्ट तीन सागरोपम की है ।

सत्तेव सागराऊ उक्कोसेण वियाहिया ।
तइयाए जहन्नेण, तिण्णेव सागरोवमा ॥१६२॥

अर्थ—तीसरी नरक मे आयु-स्थिति जघन्य ३ सागर की और उत्कृष्ट सात सागर की ।

दस सागरोवमा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया ।
चउत्थीए जहन्नेण, सत्तेव सागरोवमा ॥१३३॥

अर्थ—चौथी नरक मे स्थिति जघन्य सात सागर, उत्कृष्ट १० सागर की ।

सत्तरससागरा, ऊ उक्कोसेण वियाहिया ।
पचमाए जहन्नेण, दस चेव सागरोवमा ॥१६४॥

अर्थ—पाचवी नरक मे जघन्य १० सागर, उत्कृष्ट १७ सागर, की है ।

बावीससागरा ऊ उक्कोसेण वियाहिया ।
छट्ठीए जहन्नेण, सत्तरस सागरोवमा ॥१६५॥

अर्थ—छठी नरक मे जघन्य १७ सागर, उत्कृष्ट २२ सागर की ।

तेतीससागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया ।
सत्तमाए जहन्नेण, बावीस सागरोवमा ॥१६८॥

अर्थ—सातवी नरक मे जघन्य २२ सागर, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की ।

जा चेव आउठिई, नेरइयाणं वियाहिया ।
सा तेसिं कायठिई, जहन्नुक्कोसया भवे ॥१६९॥

अर्थ—नारक जीवो की जितनी आयु, स्थिति है, उतनी ही जघन्य या उत्कृष्ट काय-स्थिति है ।

अणंतकालमुक्कोसं, अंतोमुहुत्तं जहन्नयं ।
विजढम्मि सए काए, नेरइयाणं तु अन्तरं ॥१७०॥

अर्थ—नारक जीव, स्वकाय छोड कर पुन नारक हो तो इसका अन्तर काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का है।

एएसिं वण्णओ चेव, गंधओ रसफासओ ।
संठाणदेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥१७१॥

अर्थ—इनके वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा हजारो भेद होते है ।

अब पढिये महावैरागी मृगापुत्र की अपनी आपबीती नरको की दुःख भरी कहानी अपने परम पूज्य माता पिता के आगे कही उसकी अपनी जबानी ।

(उत्तराध्ययनसूत्र, अध्ययन १९)

जहा इहं अगणी उण्हो, इत्तो अणंतगुणो तहिं ।
नरएसु वेयणा उण्हा, अस्साया वेइया मए ॥४८॥

तेत्तीससागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया ।
सत्तमाए जहन्नेण, बावीसं सागरोवमा ॥१६८॥

अर्थ—सातवी नरक मे जघन्य २२ सागर, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की।

जा चेव आउठिई, नेरइयाण वियाहिया ।
सा तेसिं कायठिई, जहन्नुक्कोसया भवे ॥१६९॥

अर्थ—नारक जीवो की जितनी आयु, स्थिति है, उतनी ही जघन्य या उत्कृष्ट काय-स्थिति है।

अणतकालमुक्कोस, अन्तोमुहुत्तं जहन्नय ।
विजढम्मि सए काए, नेरइयाण तु अन्तर ॥१७०॥

अर्थ—नारक जीव, स्वकाय छोड कर पुन नारक हो तो इसका अन्तर काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का है।

एएसिं वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ ।
सठाणदेसओ वा वि, विहाणाइ सहस्ससो ॥१७१॥

अर्थ—इनके वर्ण, गध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षाह जारो भेद होते है।

अब पढिये महावैरागी मृगापुत्र की अपनी आपबीती नरको की दु ख भरी कहानी अपने परम पूज्य माता पिता के आगे कहीउ सकी अपनी जवानी।

(उत्तराध्ययनसूत्र, अध्ययन १९)

जहा इह अगणी उण्हो, इत्तो अणतगुणो तहिं ।
नरएसु वेयणा उण्हा, अस्साया वेइया मए ॥४८॥

अर्थ—यहा अग्नि मे जितनी उष्णता है, उससे अनन्त गुणी उष्णता नरको मे है। मैंने उस कष्टदायक वेदना को सहन किया है।

जहा इह इम सीय, इत्तोअणतगुणो, तहि।
नरएसु वेयणा सीया, अस्साया वेइया मए॥४६॥

अर्थ—यहा जैसा शीत है, उससे अनन्त गुणा शीत नरको मे है। उस असाता वेदना को मैंने सहन किया है।

कन्दन्तो कदुकुभोसु, उड्ढपाओ अहोसिरो।
हुयासणे जलन्तम्मि, पक्कपुव्वो अणतसो॥५०॥

अर्थ—मुझे आक्रन्द करते हुए को कुन्दु कुम्भियो मे ऊँचे पैर और नीचे सिर करके पहले अनन्त बार पकाया गया।

महादवग्गिसकासे, मरुम्मि वइरवालुए।
कलववालुयाए य, दड्ढपुव्वो अणतसो।५१॥

अर्थ—महादावाग्नि के समान तथा मरु देश की बालुका के समान वज्र बालुका मे और कदम्ब नदी की बालुका मे मुझे अनन्त बार जलाया गया॥

रसतो कदुकुभीसु, उड्ढ बद्धोअबधवो।
करवत्तकरकयाईहिं, छिन्नपुव्वो अणन्तसो॥५२॥

अर्थ—स्वजनो से रहित आक्रन्द करते हुए मुझे, कुन्दुकुम्भी मे ऊँचा बाधकर, करवत और क्रकचो से पूर्वभवो मे अनन्त बार छेदन भेदन किया॥

अइतिक्खकटगाइण्णे तुगे सिंबलिपायवे।
खेवियं पासबद्धेणं, कड्ढोकड्ढाहिं दुक्कर॥५३॥

अर्थ—अत्यन्त तीखे काटो वाले ऊँचे शाल्मली वृक्ष पर मुझे बन्धन से बाध दिया और काटो पर इधर उधर खीचा। इस प्रकार मैंने कष्टो को सहन किया।

महाजतेषु उच्छू वा, आरसतो सुभेरव
पीडिओ मि सकम्मेहिं, पावकम्मो अणतसो ॥५४॥

अर्थ—अपने अशुभ कर्मो के कारण मुझे पापकर्मों की अत्यन्त रौद्रता से महायन्त्रो मे डालकर इक्षु (गन्ना) की तरह पेरा गया।

कूवतो कोलसुणएहि, सामेहिं सबलेहि य ।
पाडिओ फालिओ छिन्नो, विप्फुरतो अणेगसो ॥५५॥

अर्थ—आक्रन्द करते हुए और इधर उधर भागते हुए मुझे कुत्तो और सूअरो रूपी श्याम और शबल परमाधामियो से नीचे गिराया और फाडा तथा छेदा।

असीहिं अयसिवण्णेहिं, भल्लीहिं पट्टिसेहि य ।
छिन्नो भिन्नो विभिन्नो य, उववण्णो पावकम्मुणा ॥५६॥

अर्थ—मैं पाप कर्मो से नरक मे उत्पन्न हुआ और अलसी के वर्ण जैसी तलवारो, भालो और पट्टीश शस्त्रो से छेदन भेदन किया और टुकडे टुकडे किया गया।

अवसो लोहरहे जुत्तो, जलते समिलाजुए ।
चोइओ तत्त जुत्तेहिं, रोज्मो वा जह पाडिओ ॥५७॥

अर्थ—मुझ परवश पडे हुए को जलते हुए समिला युक्त लोहे के रथ मे जोता, फिर चाबुक और जोतो से मारकर हाँका तथा रोज की तरह भूमि पर गिराया।

हुयासणे जलतम्मि, चियासु महिसो विव ।
दड्ढो पक्को य अवसो, पावकम्मेहिं पाविओ ॥५८॥

अर्थ—पाप कर्म से परवश बने हुए मुझ पापी को अग्नि से जलती हुई चिताओ मे, भैसे की तरह जलाया और पकाया गया ।

बला सडासतुडेहिं, लोहतुडेहिं पक्खिहिं ।
विलुत्तो विलवतोहं, ढकगिद्धेहिं अणतसो ॥५९॥

अर्थ—मुझ रोते हुए को बल पूर्वक सडासी जैसे और लोहे के समान कठोर मुह वाले ढक और गिद्ध पक्षियो द्वारा अनन्त बार छिन्न भिन्न किया गया ।

तण्हाकिलतो धावतो, पत्तो वेयरणि नई ।
जल पाहिं त्तिचिंततो, खुरधाराहिं विवाइओ ॥६०॥

अर्थ—मे प्यास से अत्यन्त पीडित होकर जल पीने की इच्छा से दौडता हुआ वैतरनी नदी पर पहुचा । वहाँ उस्तरे की धारा के समान नदी की धारा से मेरा विनाश हुआ ।

उण्हाभितत्तो सपत्तो, असिपत्त महावण ।
असिपत्तेहिं पडते हिं, छिन्नपुव्वो अणेगसो ॥६१॥

अर्थ—मैं गर्मी से घबराया हुआ असिपत्र महावन मे गया किन्तु तलवार के समान पत्तो के गिरने से अनेक वार छिन्न-भिन्न हुआ ।

मुग्गरेहिं मुसुढीहिं सूलेहिं मूसले हि य ।
गयास भग्गगत्तेहिं, पत्त दुक्ख अणतसो ॥६२॥

अर्थ—मुद्गरो, मुसढियो, त्रिशूलो, मूसलो और गदा से मेरे गात्रो का भेदन किया । मैंने ऐसा दु ख अनन्त बार पाया ।

खुरेहिं तिक्खधाराहिं, छुरियाहिं कप्पणीहि य ।
कप्पिओ फालिओ छिन्नो, उक्कित्तो य अणेगसो ॥६३॥

अर्थ—मैं अनेक बार कतरणियो से कतरा गया । छुरियो से चीरा गया और मेरी चमडी उतार दी गई ।

पासेहिं कूडजालेहिं, मिओ वा अवसो अहं ।
वाहियो बद्ध रुद्धो य, बहुसो चेव विवाइओ ॥६४॥

अर्थ—मृग की तरह परवश पडा हुआ मैं धोखे से पाशो और कूट जालो मे बाँधा गया, रोका गया और मारा गया ।

गलेहिं मगरजालेहिं, मच्छो वा अवसो अहं ।
उल्लिओ फालिओ गहिओ, मारिओ य अणतसो ॥६५॥

अर्थ—मैं परवश होकर वडिश यन्त्र से और मगर जाल से मच्छी की तरह खींचा गया, फाडा, पकडा और मारा गया ।

विदसएहिं जालेहिं, लिप्पाहिं सउणो विव ।
गहिओ लग्गो य बद्धो य, मारिओ य अणतसो ॥६६॥

अर्थ—बाज पक्षियो से, जालो से और लेपो से, पक्षी की तरह मैं अनन्त बार पकडा गया, चिपटाया गया, बाधा गया और मारा गया ।

कुहाडफरसुमाईहिं, वड्ढईहिं दुमो विव ।
कुट्टिओ फालिओ छिन्नो, तच्छिओ य अणतसो ॥६७॥

अर्थ—मैं सुथार रूपी देवो से कुल्हाडे, फरसे आदि से वृक्ष की तरह अनन्त बार फाडा गया, छीला गया और टुकडे-टुकडे कर दिया गया ।

चवेडमुट्ठिमाईहिं, कुमारेहिं अयं विव ।
ताडिओ भिन्नो कुट्टिओ, चुण्णिओ य अणतसो ॥६८॥

अर्थ—जिस प्रकार लोहार लोहे को कूटते हैं। उसी प्रकार मैं ना थप्पड़ मुट्ठी आदि से अनन्त बार पीटा गया कूटा गया, भेदा गया और चूर्ण के समान पीस डाला गया।

तत्ताइ तवलोहाइ, तउयाइ सीसगाणि य।
पाइओ कलकलंताइं, आरसंतो सुभेरव॥६९॥

अर्थ—बहुत जोर से अरडाट करते हुए मुझे कलकल शब्द करता हुआ तप्त ताम्बा, लोहा, रांगा, और शीशा पिलाया गया।

तुहं पियाइ मंसाइ, खंडाइ सोल्लगाणि य।
खाविओ मि समंसाइ, अग्गिवण्णाइ अणेगसो॥७०॥

अर्थ—"तुझे मांस प्रिय था"-ऐसा कहकर मेरे शरीर का मांस काटकर, उसे भूनकर, अग्नि के समान करके मुझे अनेक बार खिलाया।

तुहं पिया सुरा सीहा, मेरओ य महूणि य।
पाइओ मि जलंतीओ, वसाओ रुहिराणि य॥७१॥

अर्थ—तुझे ताड वृक्ष से, गुड से और महुए आदि से बनी हुई मदिरा प्रिय थी"-यों कहकर मुझे जलती हुई चर्बी और रुधिर पिलाया गया।

निच्चं भीएण तत्थेण दुहिएण वहिएण य।
परमा दुहसंबद्धा, वेयणा मए॥७२॥

अर्थ—मैंने सदा भयभीत उद्विग्न, दुःखित और व्यथित बने हुए अत्यन्त दुःखपूर्ण वेदना सहन की।

तिव्वचंडप्पगाढाओ, घोराओ, अइदुस्सहा।
महाब्भयाओ भीमाओ, नरएसु वेदिता मए॥७३॥

अर्थ—मैंने नरको मे प्रचण्ड तीव्र, गाढ, घोर, भीम, अत्यन्त दुस्सह और भयवाली वेदना सहन की है ।

जारिसा मानुसे लोए, ताया दीसति वेयणा ।
इत्तो अणंतगुणिया, नरएसु दुक्खवेयणा ॥७४॥

हे माता, हे पिता ! मनुष्य लोक मे जैसी वेदना दिखाई देती है उससे अनन्त गुणी दु ख रूप वेदना नरको मे है ।

—:o:—

पाँचवां अध्ययन

सुया मे नरए ठाणा, असीलाण च जा गई, ।
बालाण कूरकम्माण, पगाढ़ा जत्थ वेयणा ॥

अर्थ—हे जम्बू ! मैंने नरक स्थानो के विषय मे सुना है और दु शीलो की गति भी सुनी है । नरक मे क्रूरकर्मी अज्ञानियो को तीव्र वेदना होती है ।

तत्थोववाइय ठाण, जहा मेयमणुस्सुय,
आहाकम्मेहिं गच्छतो, सो पच्छा परितप्पई ।

अर्थ—मैंने सुना है कि अपने अशुभ कर्मों के अनुसार नरक के दु खमय स्थान मे जाता हुआ जीव बाद मे पश्चात्ताप करता है ॥

अब नरक की रोमाचकारी महावेदना की भयकर लम्बी कहानी पढिये भगवान् महावीर की वाणी ।

मूल—पुच्छिस्सऽहं केवीलय मेहसिं,
कहं भितावाणरगा पुरत्था

हिंसा और मिथ्या भाषण आदि कर्म करते हैं वे ऐसे प्राणी तीव्र पाप के उदय मे वर्तमान होकर अत्यन्त भयानक एव जहाँ अपने नेत्र से अपना शरीर भी नही देखा जा सकता है तथा अवधि ज्ञान के द्वारा भी दिन मे उल्लूक पक्षी की तरह जहा थोडा-थोडा देखा जाता है। ऐसे भयकर अधकार युक्त नरक मे गिरते है इस विषय मे आगम का कहना भी यह है (किण्हलेसेण भते) अर्थात हे भदन्त कृष्णलेश्यावाला नारकीय जीव कृष्णलेश्या वाले नारकि जीव को अवधिज्ञान के द्वारा चारो तरफ देखता हुआ कितने क्षेत्र तक देखता है। (उ) हे गौतम। बहुत क्षेत्रतक नही जानता तथा बहुत क्षेत्र तक नही देखता। किन्तु थोडे ही क्षेत्र तक जानता है तथा थोडे ही क्षेत्र तक देखता है इत्यादि। तथा वह नरक तीव्र अर्थात् दु सह यानी खैर के अगार की महाराशि से भी अनन्त गुण अधिक ताप से युक्त है। ऐसे बहुत वेदना वाले नरको मे विषय सुख का त्याग न करने वाले गुरु कर्मी जीव पडते हैं। और वे वहा नाना प्रकार की वेदनाओ को प्राप्त करते है। कहा है कि—अच्छाड्डिय विसय सुही। अर्थात् जो आदमी विपय सुख को नही छोडता वह जिसमे आग की जलती हुई शिखा समूह विद्यमान है और जो ससार सागर का प्रधान दु ख का स्थान है। ऐसे नरक मे गिरता है। जिस नरक मे नारकीय जीवो की छाती को परम धार्मिक इस प्रकार पैर से कुचलते हैं कि वे मुख से रुधिर का गण्डूष फैंकते है तथा आरा के द्वारा चीर कर उनके शरीर दो भागो में विभक्त कर दिये जाते है जिस नारक मे भेदन किए हुए प्राणियो के कोलाहल से सब दिशायें परिपूर्ण हो जाती हैं तथा जलते हुए नारकीय जीवो की खोपडी और हड्डिया शब्द करती हुई उछलती हैं। जहा पीडा के कारण नारकीय जीव अत्यन्त चिल्लाते हुए शब्द करते हैं। तथा कडाहो मे भूनकर उनके पाप कर्म का फल दिया जाता हैं। एव शूल से वेधकर उनका शरीर ऊपर उठाया जाता है। जहा भयकर शब्द होता है। भयकर अधकार एव उत्कट दुर्गन्ध जहा विद्यमान है तथा नारकीय जीवो के बाधने का घर और जहा असह्य कष्ट दिया जाता

है। तथा कटे हुए हाथ पैर से मिला हुआ रक्त और चर्वी का दुर्गम प्रवाह है। जहा निर्दयता के साथ नारकीय जीवो का सिर काटकर सिर अलग और धड अलग फेंक दिया जाता है। तथा जलती हुई सडासी के साथ नारकीय जीवो की जीभ उखाड ली जाती है। जहा तीक्ष्ण नोक कांटेदार वृक्षो मे नारकीय जीवो का शरीर रगड कर जजर कर दिया जाता है। इस प्रकार जहा निमेषभर भी प्राणियो को सुख प्राप्त नही होता किन्तु लगातार दु ख होता रहता है। ऐसे भयकर नरको मे नाना प्रकार के प्राणियो का वध करने वाले मिथ्यावादी एव पाप राशि को उत्पन्न करने वाले जीव जाते है

तिव्व तसे पाणिणो थावरे य, जे हिंसती आयसुहपडुच्चा।
जे लूसय होइ अदत्तहारी, ण सिक्खती सेयवियस्सकिंचि॥

जो जीव महामोहनीय कर्म के उदय मे वर्तमान होकर अपने सुख के लिए अतिनिर्दयता के साथ रौद्रपरिणाम से हिंसा मे प्रवृत्त है तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस प्राणी और पृथ्वीकाय आदि स्थावर प्राणियो का हनन करता है। तथा जो नाना प्रकार के पापो से प्राणियो का उपमर्दन उपमर्द करता है एव अदत्ता हारी अर्थात् विना दिये दूसरे का द्रव्य हरण करता है एव अपने कल्याण के लिए सेवन करने योग्य तथा सज्जनो से सेवनीय सयम का थोडा भी सेवन नही करता है। आशय यह है कि पाप के उदय होने से जो काकमास आदि से भी विरत नही होता है।

पागब्भि पाणे बहुण तिवाति, अतिव्वतेघातमुवेति बाले
णिहो णिस गच्छति अतकाले, अहोसिर कट्टु उवेइ दुग्ग॥५॥

टीकार्थ—ढिठाई को प्राग्लभ्य कहते हैं जो पुरुष ढीठ है उसे प्रागल्भी कहते है। बहुत प्राणियो को अत्यन्त घात करने का जिसका स्वभाव है उसे अतिपाती कहते है। आशय यह है कि जो पुरुष प्राणियो के प्राण का नाश करता हुआ भी ढिठाई के कारण कहता है कि वेद मे विधान की

हुई हिंसा हिंसा नही है तथा राजाओ का यह कर्म है कि वे शिकार द्वारा अपना चित्त विनोद करते है अथवा मांस खाने, मद्य पीने आ मैथुन करने मे दोष नही है। क्योकि ये जीवो के स्वभाव सिद्ध है। परन्तु इनसे निवत होने का महान फल है इत्यादि तथा जो क्रूर और कृष्ण सप के समान स्वभाव से ही प्राणियो का घात करता है तथा जो कभी शान्त नही होता है अथवा जो पशुओ का वध और मत्स्य का वध करके अपनी जीविका करता है तथा जिसका मदा वध करने का परिणाम बना रहता है और जो कभी भी शान्त नही होता वह जीव, जिसमे अपने किये हुए कर्म का फल भोगने के लिए प्राणियो का घात स्थान यानी नरक मे जाता है । वह कौन है ? वह अज्ञानी है, वह राग और द्वेष के उदय मे वर्तमान ह वह मरण काल मे नीचे अन्धकार मे जाता है वह अपने किये पाप के कारण नीचे सिर करके भयकर यातना स्थान को प्राप्त होता है। वह नीचे सिर करके नरक मे पडता है।

हण छिदह भिदह्ण दहेति, सद्दे सुणित्ता परहम्मियाण,
ते नारगाओ भयभिन्नसन्ना, कखति कन्नामदिस वयामो।

अब नरक मे रहने वाले प्राणी जो दुख अनुभव करते है उसे दिखाने के लिए शास्त्र कार कहते हैं तिर्यंच और मनुष्य भव छोडकर नरक मे उत्पन्न प्राणी अन्तर मुहुत तक अडा से निकले हुए रोम और पक्ष रहित पक्षो की तरह शरीर उत्पन्न करते हैं। पीछे प्राय प्रयाप्ति भाव को प्राप्त करके वे अतिभयानक परमाधार्मिको का शब्द सुनते हैं जैसे कि इसे मुद्गर आदि से मारो इसे तलवार से छेदन करें इसे शूल आदि के द्वारा वेध करो इस मुर्मुर आदि के द्वारा जलाओ। इस प्रकार कानो को दुख देने वाले अति भयानक शब्दो को सुनकर वे नारकि भय से चचलनेत्र तथा नष्ट चित्तवृति होकर यह चाहते हैं कि हम किस दिशा को चले जाएँ अर्थात् कहा जाने से हम इस महाघोर दारुण दुख से रक्षा पा सकेंगे।

इगालरासिं जलेय सजोति, ततोवम भूमिमणुक्कमता।
ते डज्झमाणा कलुणं थणति, अरहस्सरा तत्थचिरट्टितीया।

अर्थ—जैसे जलती हुई खैर के अगारो की राशि होती है इस अगार राशि के तुल्य नरक की पृथ्वी पर तपते हुए और उसमे जलते हुए नारकि जीव करुण रोदन करते हैं। नरक मे बादर अग्नि नही होती है इस लिए शास्त्रकार ने नरक को बादर अग्नि के सदृश्य कहा है यह उपमा भी दिग्दर्शन मात्र समझना चाहिए क्योंकि नरक के ताप की उपमा यहा कि इस अग्नि मे नही दी जा सकती महान नगर के दाह से भी अधिक ताप से जलते हुए वे नारकि जीव, महाशब्द करते हैं। वे नरक मे बहुत काल तक निवास करते हैं, वे उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम काल तक तथा जघन्य दस हजार वर्ष तक नरक मे निवास करते है।

मूल— जई ते सुया वेयरणी भिदुग्गा,
णिसियो जहाखुर इव तिक्खसोया।
तरति ते वेयरणी भिदुग्गा,
उसुचोइया सत्तिसु हम्ममाणा ॥

टीकार्थ—श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि भगवान ने जिसका कथन किया है उस वैतरनी नामक नदी को शायद तुमने सुना होगा। उस वैतरनी नदी मे खारा गर्म और रक्त के समान जल बहता रहता है। जैसे तेज उस्तरे की धारा बडी तेज होती है उसी तरह उसकी तेज धारा होती है। उस धारा के लगने से नारकीय जीवो के अग कट जाते हैं। इस कारण वह नदी बडी दुर्गम है। उसमे बहते हुए प्राणियो को वह बहुत दुःख उत्पन्न करती है। तप्त अगार के समान अति ऊष्ण नरक भूमि को छोडकर अति तृप्त और प्यासे हुए नारकी जीव अपने ताप को मिटाने के लिए तथा जल मे स्नान करने की इच्छा से अति दुर्गम उस वैतरणी नदी मे कूद कर तैरते हैं वे नारकि कैसे हैं माणो बाणो से प्रेरित किये हुए हैं अथवा भाला से खोदकर चलाये गये हैं अत वे ऐसी थकर वैतरणी नदी मे तैरते हैं।

कीलेहि विज्झति असाहुकम्मा,
नाव उविंते सइविप्पहुणा ।
अन्ने तु सूलाहि तिसूलियाहिं, ।
दीहाहि विध्धूण अहेकरति ।

टीकाथ—वैतरणी नदी के अत्यन्त खारा गर्म तथा दुर्गन्ध जल से अति तप्त वे विचारे नारकि जीव उस नदी मे काटेदार नाव पर जब आने लगते हैं तब उस नाव पर पहले से चढे हुए परमाधार्मिक उन नारकी जीवो के गले मे कीलें चुभोते हैं वे नारकीय जीव कल कल शब्द के साथ वहता हुआ वैतरणी के जल से सज्ञाहीन होकर भी कठभेद पाकर अत्यन्त स्मृति रहित हो जाते हैं। उन्हे अपने कर्तव्य का विवेक सर्वथा नही रहता है। तथा दूसरे नरक पाल नारकि जीवो से क्रीडा करते हुए उन नष्ट सज्ञा वाले विचारे नारकि जीवो को दीर्घशूल और त्रिशूल के द्वारा वेधकर नीचे पृथ्वी पर पटक देते है।

केसिं च वंधित्तु गले सिलाओ,
उदगसि वोलति महालयसि ।
कलवुयावालुय मुम्मुरे य,
लोलति, पच्चति अ तथ्थ अन्ने।

टीकार्थ—परमाधार्मिक, किन्ही नारकि जीवो के गले मे वडी वडी शिलाये वाधकर अगाध जल मे डुबाते हैं पश्चात् फिर उन्हे वहा खीच-कर वैतरणी नदी के कलम्बु का फूल के समान अत्ति तप्त लाल बालुका तथा मुर्मुरग्नि मे इधर उधर इस प्रकार फिराते है जैसे 'चनो' को बालु मे डालकर इधर उधर फेरते हैं। तथा दूसरे परमाधार्मिक, अपने कर्म रूपी जाल मे फसे हुए उन नारकि जीवो को शूल में वेधकर पकाये जाते हूए मास की तरह पकाते हैं।

आसूरिय नाम महाभितावं, अधतम दुप्पतर महत
उड्ढं अहेअ तिरिय दिसासु, समाहिओ जत्थऽगणीझियाइ।

टीकार्थ—जिसमे सूर्य नही रहता ऐसा कुम्भिका के समान आकार वाला बहुत अन्धकार से युक्त एक असूर्यनामक नरक है। अथवा सभी नरको को असूर्य कहते हैं। ऐसे महान् ताप से युक्त तथा अति अन्धकार से परिपूर्ण, दुःख से पार करने योग्य विशाल नरक मे महान् पाप के उदय होने से पापी प्राणी जाते है। उस नरक मे ऊपर-नीचे तथा तिरछे सभी दिशाओ मे रखी हुई आग जलती रहती है। ऐसा पाठ भी है 'समूसिओ' अर्थात् जिस नरक मे बहुत ऊपर तक उठी हुई आग जलती रहती है। ऐसे नरक मे बिचारे पापी प्राणी जाते हैं।

मूलम्—जसो गुहाए जलणेऽति उट्टे,
अविजाणओ डज्झइ लुत्तपण्णो।
सया कलुणं पुण घम्मठाणं।
गाढोवणीयं अतिदुक्खधम्मं।

टीकार्थ—जिस नरक मे गया हुआ प्राणी, गुहा अर्थात् ऊट के समान आकार वाली नरक भूमि मे प्रविष्ट होकर आग मे जलता हुआ वेदना से पीडित होकर अपने पापो को नही जानता है तथा अवधि के विवेक से रहित होकर अत्यन्त जलता रहता है। वह नरक सब काल मे करुणाप्राय है। अथवा वह समस्त गर्मी का स्थान है। वह नरक पाप कर्म करने वाले प्राणियों को प्राप्त होता है। ऐसे स्थान मे पापी जीव जाते हैं। फिर भी उसी स्थान की विशेषता बतलाते है। उस नरक का स्वभाव अत्यन्त दुःख देने का है। आशय यह है कि नेत्र का निमेषमात्र काल तक भी वहा दुःख से विश्राम नही मिलता है जैसा कि कहा है—'अच्छि' इत्यादि। अर्थात् नेत्र का पलक मारने के काल मात्र भी नारकी जीवो को सुख नही होता है। किन्तु निरन्तर नरक मे पकते हुए उनको कष्ट ही भोगना पडता है।

मूलम्—चत्तारि अगणीओ समारभित्ता,
जहिं कूरकम्मा अभितविंतिबालं।

ते तत्थ चिट्ठंतऽभितप्पमाणा,
मच्छा व जीवतु वजोति पत्ता ॥

टीकार्थ—जिस नरक स्थान मे क्रूर कर्म करने वाले नरकपाल चार दिशाओ मे चार अग्निओं को जलाकर पूर्व जन्म मे पाप किये हुए अज्ञानी नारकी जीव को भट्ठी की तरह अत्यन्त ताप देते हुए पकाते हैं। इस प्रकार पीडा पाते हुए वे नारकी जीव अपने कर्म की पाश मे बन्धे हुए होने के कारण महादु खद उसी नरक मे चिरकान तक निवास करते हैं इस विपय मे दृष्टान्त देते हैं:— जैसे जीती हुई मछली अग्नि के निकट प्राप्त होकर परवश होने के कारण अन्यत्र नही जा सकती तथा उसी जगह स्थिर रहती है, उसी तरह नारकी जीव भी वही स्थित रहते हैं मछली ताप को नही सह सकती है। इसलिए आग मे उसे महादु ख होता है। इसीलिए यहा मच्छली का दृष्टा त दिया गया है।

मूलम्—संतच्छणं नाम महाहितावं,
ते नारया जत्थ असाहुकम्मा।
हत्थेहि पायेहि य वधिऊण,
फलगं व तच्छंति कुहाडहत्था ॥

टीकार्थ—जो एक भाव से प्राणियो को काटता है उसे सतक्षण कहते हैं। नाम शब्द सम्भावना अर्थ मे आया है। यह तो सतक्षण नरक है। वह सब प्राणियो को महान् दु ख उत्पन्न करता है। यह सम्भव है। यदि ऐसा है तो क्या ? उत्तर देते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि नरक मे क्रूर कर्म वाले, दया रहित तथा हाथ मे कुठार लिए हुए नरक पाल अपने घर से आकर रक्षक रहित उन नारकी जीवो के हाथ पैर बाध कर काठ के समान कुठार के द्वारा छेदन करते हैं।

मूलम्—रुहिरे पुणो वच्चसमुस्सिअगे,
भिन्नुत्तमगे परिवत्तयता।

पयंति ण णेरइए फुरते,
सजीवमच्छे व अयोकवल्ले ॥

टीकार्थ—वे परमधार्मिक उन जीवो को उनका रक्त गर्म कढाह मे डाल कर पकाते हैं। उन नारकी जीवो की अतडी अथवा अगतल से सूजे हुए हैं, तथा उनका सिर चूर-चूर कर दिया गया है। वे किस तरह पकाते हैं सो कहते हैं जो नारकी उत्तान पडे हैं उनको अवाड्मुख और जो अवाड्मुख हैं उनको उत्तान करते हुए पकाते है। ण' शब्द वाक्यालकार मे आया है। इस प्रकार पकाये जाते हुए नारकी जीव विकल होकर इधर-उधर अपने शरीर को फेंकते रहते हैं और नरकपाल जीती हुई मछली की तरह उन्हे लोहे की कढाही मे ही पकाते हैं।

मूलम्—नो चेव ते तत्थ मसीभवंति,
णभिज्जवी तिव्वभिवेयणाय।
तमाणुभाग अणुवेदयंता,
दुक्खति दुक्खी इह दुक्कडेणं।

टीकार्थ—वे नारकी जीव पूर्वोक्त रूप से बहुत बार पकाये जाते हुए भी उस नरक मे जलकर भस्म नही हो जाते तो वे जैसी तीव्र वेदना को अनुभव करते हैं उसकी उपमा आग मे डाली हुई मछली आदि की वेदना से भी नही दी जा सकती। अत वे वर्णन करने के अयोग्य अनुपम वेदना को अनुभव करते है। अथवा तीव्र वेदना होने पर भी अपने किये हुए कर्मों का फलभोग शेष रहने के कारण वे नारकी जीव मरते नही हैं तथा बहुत काल तक पूर्व वर्णन के अनुसार शीतव, उष्ण जनित पीडा को अनुभव करते हुए तथा परमाधार्मिको के द्वारा उत्पन्न किये हुए दहन छेदन-भेदन, तक्षण, त्रिशूल पर चढना, कुम्भी मे पकाना और शाल्मली वृक्ष पर चढाना आदि एव परस्पर एक दूसरे

के द्वारा उत्पन्न किये हुए अपने कर्मों के फल स्वरूप दु खो को भोगते हुए वे वही रहते हैं। नरक मे रहने वाले जीव अपने किये हुए हिंसा आदि अठारह स्थान रूप पापो के कारण निरन्तर उत्पन्न दु ख से दु खी होते रहते हैं। उन्हे नेत्र के पलक गिराने मात्र काल तक भी दु ख से मुक्ति नही मिलती।

तहिं च ते लोलण सपगाढे,
गाढ सुतत्त अगणि वयति।
न तत्थ साय लहती भिदुग्गे,
अरहियाभितावा तहवी तविंति॥

टीकार्थ—नरक महान् पीडा का स्थान है उसकी विशेषता बताते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि नरक नारकी जीवो के हलचल से भरा हुआ होता है, जिसमे अत्यन्त शीत से पीडित नारकी जीव अपनी शीत दूर करने के लिए अति प्रदीप्त अग्नि के पास जाते है वह नरक की अग्नि बडी दाहक होती है। उसमे वे वेचारे जलने लगते है। अत वहा उनको थोडा भी सुख नही मलता। उस अग्नि मे वे निरन्तर जलते रहते हैं। इसलिए यद्यपि उन्हे महान् ताप होता है तथापि नरकपाल उन पर गरम तेल छिडक कर और ज्यादा जलाते हैं।

से सुच्चई नगरवहे व सद्दे,
दुहोवणीयाणि पयाणि तत्थ।
उदिण्णकम्माण उदिण्णकम्मा,
पुणो पुणो ते सरह दुहेंति॥

टीकार्थ—'से' शब्द अथ शब्द के अर्थ मे आया है इसके पश्चात् भयकर परमाधार्मिको के द्वारा पीडित किये जाते हुए उन नारकी जीवों

का हाहाकार से भरा हुआ भयानक रोदन शब्द नगर के वध के समान सुनाई पडता है। तथा उस नरक मे दुख के साथ उच्चारण किये हुए करुणाप्रधान पद सुनाई पडते हैं। जैसे कि हे माता, हे तात। मैं अनाथ हू। मै तुम्हारी शरणागत हू, तू मेरा रक्षा करो इत्यादि पदो का शब्द उस नरक मे सुनाई पडता है जिसका कटु फल देने वाला कर्म उदय को प्राप्त है ऐसे नारकीय जीवो को मिथ्यात्वहास्य और रति आदि के उदय मे वर्तमान नरकपाल बारबार उत्साह के साथ नाना प्रकार के उपायो से अत्यन्त असह्य दुख देते है।

पाणेहिणं पाव विओजयंति,
त मे पवक्खामि जहातहेणं।
दडेहिं तत्था सरयंति बाला,
सव्वेहिंदडेहिं पुराकएहिं ॥

टीकार्थ—'णं' शब्द वाक्यलकार मे आया है। पाप करने वाले नर पाल नारकि जीवो के अगो को काटकर जुदा-जुदा कर देते हैं। वे ऐसा क्यो करते हैं ? सो इसका कारण सत्य-सत्य बताता हू, विवेक रहित नरकपाल नारकी जीवो को नाना प्रकार का दड कर उनके कर्मों को स्मरण कराते हैं। जैसे कि तुम, बडे हर्ष के साथ प्राणियो का मास काट-काट कर खाता था तथा उनका रस पीता था एव मद्यपान तथा पर स्त्रीसेवन करता था. अब उन्ही कर्मों का फल दुख भोगता हुआ तू क्यो इस प्रकार चिल्ला रहा है ? इस प्रकार नरकपाल नारकी जीवो के द्वारा पूर्व जन्म मे किये हुए दूसरे प्रणियो के सभी वध्दो को स्मरण कर ते हुए उनके समान ही दुख देकर उन्हें पीडा देते हैं।

ते हम्ममाणा णरगे पडति,
पुन्ने दुरुवस्स महाभितावे।
ते तत्थ चिट्ठ दुरुवभक्खी
तुट्टति कम्मोवगया किमीहिं ॥

टीकार्थ—वे बेचारे नारकी जीव, नरकपालो के द्वारा मारे जाते हुए दूसरे अत्यन्त घोर नरक मे जाते हैं। वह नरक कैसा है ? वह विष्ठा, रक्त, मास आदि अपवित्र पदार्थों से भरा है तथा अत्यन्त सताप युक्त है। ऐसे नरक में अपने कर्म पाश मे बधे हुए नारकी जीव अशुचि आदि पदार्थों का भक्षण करते हुए चिरकाल तक निवास करते हैं। तथा वे नरकपाल के द्वारा उत्पन्न किये हुए कीडो के द्वारा और आपस मे एक दूसरे के द्वारा प्रेरित कीडो के द्वारा अपने कर्म के वशीभूत होकर काटे जाते हैं। इस विषय मे आगम कहता है कि 'छट्ठी' इत्यादि अर्थात् नारकी जीव छठी और सातवी नरक भूमि मे अत्यन्त बडे रक्त का कुन्थु रूप बना कर परस्पर एक दूसरे के शरीर को हनन करते हैं।

सया कसिरण पुरण घम्मठाण,
गाठोवणीय अति दुक्खधम्म ।
अंदूसु पक्खिप्प विहत्तु देहं,
वेहेण सीस सेऽभितावयति ॥

टीकार्थ—नारकी जीवो के रहने का स्थान सदा उष्णप्रधान होता है। वहा प्रलय काल की अग्नि से भी ज्यादा वायु आदि गर्म होते हैं। वह नरक का स्थान निधत्त और निकाचित्त अवस्था वाले कर्मों के द्वारा नारक जीवो को प्राप्त हुआ है। फिर भी नरक की विशेषता बतलाते हैं। वे नरक स्थान अत्यन्त दु ख यानी असातावेदनीय स्वभाव वाला है। ऐसे नरक स्थान मे स्थित प्राणियो की देह को तोड-मरोड कर बेडी डाल कर उसके सिर मे छिद्र कर नरकपाल पीडा देते हैं तथा उस जीव के अगो को फैला कर उनमे इस प्रकार कील ठोकते हैं, जैसे चमडे को फैलाकर उसमे कील ठोकते है।

छिंदंति बालस्स खुरेण नक्क,
उटठेवि छिंदंति दुवेविकण्णे ।

जिब्भं विणिक्कस्स विहत्थिमित्त,
तिक्खाहि सूलाहि अभितावयंति ॥

टीकार्थ—वे परमाधार्मिक, पूर्व जन्म के पापो को स्मरण कराकर प्राय सदा वेदना से युक्त निर्विवेकी नारकी जीव की नासिका को उस्तरे से काट लेता है । तथा उनके ओठ और दोनो कान काट लेते हैं तथा मद्य मास और रस के लम्पट और मिथ्या भाषण करने वाले जीव की जिह्वा को एक बीत्ता बाहर निकाल कर उसे तीक्ष्ण शूल के द्वारा वेध करते हुए पीड़ा देते हैं ।

ते तिप्पमाणा तलसंपुडंव,
राइंदियं तत्थथणंति बाला ।
गलंति ते सोणिअपूयमंस,
पज्जोइया खारपइद्धियंगा ॥

टीकार्थ—जिनके नाक, ओठ जिह्वा काट लिये गये हैं ऐसे वे नारकी जीव, रक्त का स्राव करते हुए जिस स्थान मे रात, दिन व्यतीत करते हैं । वहा वे अज्ञानी पवन प्रेरित सूखे ताल-पत्र के समान सदा जोर से रोते रहते हैं । तथा वे आग मे जलाये और अगो मे खार लगाये हुए रात दिन अपने अङ्गो से रक्त पीब और मांस का स्राव करते रहते हैं ।

जइ ते सुता लोहितपूअपाई,
बालागणी तेअगुणा परेणं ।
कुंभी महंताहियपोरसीया ।
समूसिता लोहियपूयपुण्णा ॥

टीकार्थ—फिर सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से भगवान् का वचन कहते हैं—रक्त और पीब इन दोनों को पकाना जिसका स्वभाव है ऐसी कुम्भी नामक नारकभूमि कदाचित् तुमने सुनी होगी । उसी कुम्भी

की विशेपता बताते हुए कहते हैं—नवीन अग्नि का जो तेज अर्थात ताप है वही उस कुम्भी का गुण है अर्थात् वह कुम्भी अत्यन्त ताप को धारण करती है । फिर भी उसी कुम्भी का विशेषण बतलाते हैं—वह कुम्भी बहुत बडी है । वह पुरुप के प्रमाण से भी अधिक प्रमाणवाली है । वह ऊँट के समान आकारवाली ऊची है । वह रक्त और पाब से भरी हुई है । ऐसी वह कुम्भी चारो तरफ आग से जलती हुई है और देखने मे बडी घृणा स्पद है ।

पक्खिप्प तासु पययति वाले,
अट्टस्सरे ते कलुणं रसते ।
तण्हाइया ते तउतबतत्त,
पज्जिज्जमाणाऽट्टतरं रसति ॥

टीकार्थ—नवीन अग्नि के तेज के समान जलती हुई तथा रक्त, पीब और शरीर के अवयव तथा अशुचि पदार्थों से भरी हुई दुर्गन्ध उस कुम्भी मे रक्षकरहित तथा आर्तनादपूर्वक करुण रोदन करते हुए अज्ञानी नारकी जीवो को डाल कर नरक-पाल पकाते हैं । वे नारकी जीव उस प्रकार पीडित किये जाते हुए बुरी तरह रोते हैं । वे प्यास से पीडित होकर जब पानी मागते हैं तब नरकपाल यह स्मरण कराते हुए कि "तुमको मद्य बहुत प्रिय था" तपाया हुआ सीसा और ताबा पिलाते है उन्हे पीते हुए वे बहुत जोर से आर्तनाद करते है ।

अप्पेण अप्पं इह वंचइत्ता,
भवाहमे पुव्वसते सहस्से ।
चिट्ठति तत्था बहुकूरकम्मा,
जहा कड कम्म तहा सि भारे ॥

टीकार्थ—अब शास्त्रकार इस उद्देशक के अर्थ को समाप्त करते हुए कहते हैं—इस मनुष्य भव मे मे जो जीव दूसरे को वञ्चन करने मे

प्रवृत्त रहता है वह वस्तुत अपनी आत्मा को ही वंचित करता है वह दूसरे प्राणी का घात रूप अल्प सुख के लोभ से अपनी आत्मा को वचित करके बहुत भव करता हुआ सैकडो और हजारो वार मछली पकडने वाले मल्लाह आदि तथा मृगवध करने वाले व्याध आदि अधम जाति मे जन्म लेता है। उन जन्मों मे वह विषयलम्पट तथा पुण्य से विमुख होकर महाघोर और अतिदारुण नरक स्थान को प्राप्त करता है। नरक मे रहने वाले क्रूरकर्मी जीव परस्पर एक दूसरे को दु ख उत्पन्न करते हुए चिरकाल तक निवास करते हैं। इसका कारणव ताते हुए शास्त्रकार कहते हैं जिस जीव ने पूर्व जन्म मे जैसे अध्यवसाय से नीच और उससे भी नीच कर्म किये हैं, उसी प्रकार की वेदना उस जीव को प्राप्त होती है। वह वेदना अपने आप भी होती है तथा दूसरे के द्वारा भी होती है और दोनो से भी होती है। जो पूर्व जन्म मे मासाहारी थे, उनको उनका ही मास आग मे पका कर खिलाया जाता है, तथा जो पूर्व जन्म मे मास का रस पीते थे उनको उनका ही पीब और रक्त पिलाया जाता है अथवा उन्हे गलाया हुआ सीसा पिलाया जाता है। जो पूर्व जन्म के मत्स्यघाती और लुब्धक आदि जैसे वे मछली और मृग आदि का घात करते थे उसी तरह काटे जाते हैं और मारे जाते हैं। तथा जो मिथ्याभाषण करते थे, उन्हे मिथ्याभाषण का स्मरण कराकर उनकी जिव्हा काट ली जाती है। जो पूर्व जन्म में दूसरे का द्रव्य हरण करते थे उनके अग और उपाग काट लिए जाते हैं। जो परस्त्री का सेवन करते थे उनका अण्डकोष काट लिया जाता है तथा उन्हे शाल्मलि वृक्ष का आलिगन कराया जाता है। इसी तरह जो महारम्भी और महापरिग्रही एव क्रोध मान माया से युक्त थे उनको उनके जन्मान्तर के क्रोध आदि को स्मरण कराकर उसी तरह का दु ख दिया जाता है। अत शास्त्रकार ने यह ठीक ही कहा है कि जिस ने जैसा कर्म किया है उसके अनुसार ही उसे दु ख का प्राप्वि होती है। 26।

की विशेपता बताते हुए कहते हैं—नवीन अग्नि का जो तेज अर्थात् ताप है वही उस कुम्भी का गुण है अर्थात् वह कुम्भी अत्यन्त ताप को धारण करती है । फिर भी उसी कुम्भी का विशेषण बतलाते है—वह कुम्भी बहुत बडी है। वह पुरुष के प्रमाण से भी अधिक प्रमाणवाली है। वह ऊँट के समान आकारवाली ऊची है। वह रक्त और पाव से भरी हुई है। ऐसी वह कुम्भी चारो तरफ आग से जलती हुई है और देखने मे बडी घृणा स्पद है।

पक्खिप्प तासु पययति बाले,
अट्टस्सरे ते कलुरण रसते ।
तण्हाइया ते तउतबतत्त,
पज्जिज्जमाणाऽट्टतर रसति ।।

टीकार्थ—नवीन अग्नि के तेज के समान जलती हुई तथा रक्त, पीब और शरीर के अवयव तथा अशुचि पदार्थो से भरी हुई दुर्गन्ध उस कुम्भी मे रक्षकरहित तथा आर्तनादपूर्वक करुण रोदन करते हुए अज्ञानी नारकी जीवो को डाल कर नरक-पाल पकाते हैं। वे नारकी जीव उस प्रकार पीडित किये जाते हुए बुरी तरह रोते हैं। वे प्यास से पीडित होकर जब पानी मागते है तब नरकपाल यह स्मरण कराते हुए कि "तुमको मद्य बहुत प्रिय था" तपाया हुआ सीसा और ताबा पिलाते हैं उन्हे पीते हुए वे बहुत जोर से आर्तनाद करते है।

अप्पेण अप्पं इह वंचइत्ता,
भवाहमे पुव्वसते सहस्से ।
चिट्ठति तत्था बहुकूरकम्मा,
जहा कड कम्म तहा सि भारे ।।

टीकार्थ—अब शास्त्रकार इस उद्देशक के अर्थ को समाप्त करते हुए कहते हैं—इस मनुष्य भव मे मे जो जीव दूसरे को बञ्चन करने मे

प्रवृत्त रहता है वह वस्तुत अपनी आत्मा को ही वंचित करता है वह दूसरे प्राणी का घात रूप अल्प सुख के लोभ से अपनी आत्मा को वंचित करके बहुत भव करता हुआ सैकडो और हजारो बार मछली पकडने वाले मल्लाह आदि तथा मृगवध करने वाले व्याध आदि अधम जाति मे जन्म लेता है। उन जन्मों मे वह विषयलम्पट तथा पुण्य से विमुख होकर महाघोर और अतिदारुण नरक स्थान को प्राप्त करता है। नरक मे रहने वाले क्रूरकर्मी जीव परस्पर एक दूसरे को दुख उत्पन्न करते हुए चिरकाल तक निवास करते हैं। इसका कारणब ताते हुए शास्त्रकार कहते हैं जिस जीव ने पूर्व जन्म मे जैसे अध्यवसाय से नीच और उससे भी नीच कर्म किये हैं, उसी प्रकार की वेदना उस जीव को प्राप्त होती है। वह वेदना अपने आप भी होती है तथा दूसरे के द्वारा भी होती है और दोनो से भी होती है। जा पूर्व जन्म में मासाहारी थे, उनको उनका ही मास आग मे पका कर खिलाया जाता है, तथा जो पूर्व जन्म मे मास का रस पीते थे उनको उनका ही पीब और रक्त पिलाया जाता है अथवा उन्हे गलाया हुआ सीसा पिलाया जाता है। जो पूर्व जन्म के मत्स्यघाती और लुब्धक आदि जैसे वे मछली और मृग आदि का घात करते थे उसी तरह काटे जाते हैं और मारे जाते हैं। तथा जो मिथ्याभाषण करते थे, उन्हे मिथ्याभाषण का स्मरण कराकर उनकी जिव्हा काट ली जाती है। जो पूर्व जन्म में दूसरे का द्रव्य हरण करते थे उनके अग और उपाग काट लिए जाते हैं। जो परस्त्री का सेवन करते थे उनका अण्डकोष काट लिया जाता है तथा उन्हे शाल्मलि वृक्ष का आलिंगन कराया जाता है। इसी तरह जो महारम्भी और महापरिग्रही एव क्रोध मान माया से युक्त थे उनको उनके जन्मान्तर के क्रोध आदि को स्मरण कराकर उसी तरह का दुख दिया जाता है। अत शास्त्रकार ने यह ठीक ही कहा है कि जिस ने जैसा कर्म किया है उसके अनुसार ही उसे दुख का प्राप्ति होती है। 26।

समज्जिणिता कलुस अणज्जा,
इठठेहि कतेहि य विप्पहूणा।
ते दुब्भिगन्धे कसिणे य फासे,
कम्मोवगा कुणिमे आवसति॥

टीकार्थ—अनार्य पुरुप अनार्य कर्म का सेवन करने वाले हैं, इस लिए वे हिंसा, झठ और चोरी आदि आस्रवो का सेवन करके खूब अशुभ कर्म की वृद्धि करते हैं, ऐसा करके वे क्रूरकर्मी जीव दुर्गन्ध युक्त नरक मे निवास करते हैं की वे नारकीय जीव कैसे है ? सो बताते हैं। वे इष्ट शब्दादि विषय तथा प्रिय पदार्थों से हीन होकर नरक मे निवास करते हैं अथवा वे जीव, जिन माता, पिता, पुत्र और स्त्री के लिए पाप का उपार्जन करते है, उनसे रहित होकर अकेले सडे हुए मुर्दे से भी ज्यादा बदबूदार तथा जिसका स्पश अत्यन्त उद्वेग जनक है तथा जो मास, चर्बी, रक्त, पीव, फिष्फिश आमि अशुचि पदार्थों से भरा हुआ अत्यन्त घृणास्पद हैं एव हाहाकार के शब्द से जो दिशाओ को वहरा बनाने वाला है ऐसे अति नीच कर्म मे उत्कृष्ट तैतीस सागरोपम काल की आयु से निवास करते हैं।

(उद्देशक २)

अहावर सासयदुक्खधम्म,
त भे पवक्खाभि जहातहेण।
बाला जहा दुक्कडकम्माकारी,
वेदति कम्माइ पुरेकडाइं॥

टीकार्थ—जो बाते पहले बताई जा चुकी हैं उनसे दूसरी बातें अब मैं बताऊंगा। यह आगे से सम्बन्ध मिला लेना चाहिए। जो शाश्वत अर्थात् आयु रहने तक होता है, उसे शाश्वत कहते हैं जो आयु भर दु ख देता है ऐसा जिसका स्वभाव है ऐसे नरक को शाश्वत दु ख धर्म कहते हैं। वह नरक सदा प्राणियो को दु ख देता रहता है। उसमे एक पल भर का भी सुख का लेश भी नही मिलता। ऐसे

नरक को जैसे वह है वैसा ही कहूगा। किसी प्रकार का आरोप अथवा घटा-बढा कर नही। जो पुरुष बाल अर्थात् परमार्थ को नही देखते हैं तथा कर्म के फल का विचार नही करके पाप कर्म करते हैं अथवा बुरे अनुष्ठान के द्वारा ज्ञानावरणीयादि कर्मो का सेवन करते हैं वे पापी जीव, पूर्वजन्मोपार्जित दुःख का फल जिस प्रकार नरक मे भोगते हैं सो मैं कहूगा।

हत्थेहि पाएहि यबंधिऊर्णं,
उदर विकत्तति खुरासिएहि।
गिरिहत्तु बालस्स विहत्तु देह,
बद्ध थिर पिट्ठतो उरद्धति॥

टीकार्थ—पूर्व गाथा मे जो प्रतिज्ञा की गई है उसके अनुसार वर्णन करते हैं। उस प्रकार के कर्म के उदय होने से दूसरे को दुःख देने मे हर्षित होने वाले परमाधार्मिक उन नारकी जीवो का हाथ-पैर बाधकर तीक्ष्ण उस्तुरा और तलवार आदि अनेक प्रकार के शस्त्रो से उनका पेट फाड देते हैं। तथा जो बालक के समान कुछ भी करने मे समर्थ नही है, की ऐसे दूसरे नारकी जीवो के शरीर को लाठी आदि के द्वारा विविध प्रकार से हनन करके पश्चात् उसे पकड कर बलात्कार से उसकी पीठ का चमडा खीच लेते हैं। इसी तरह पार्श्व भाग तथा अग्र भाग का चमडा भी खीच लेते हैं।

बाहू पकत्तति य मूलतो से,
थूल वियास मुहे आडहती।
रहसि जुत्त सरयति बाल,
आरुस्स विज्झति तुदेण पिट्ठे

टीकार्थ—तीन नरक भूमियों मे परमाधार्मिक और दूसरे नारकी जीव तथा नीचे की चार नरक भूमियो मे रहने वाले दूसरे नारकी

जीव नारकीय जीवो की भुजा को जड से काट लेते है तथा मुख फाड कर उसमे तप्त लोह का बडा गोला डालकर जलाते है तथा एकान्त मे उन नारकियो को ले जाकर अपने द्वारा दी जाती हुई वेदना के अनुरूप उनके द्वारा किये हुए दूसरे जन्मो के कर्मो को उन अज्ञानी नारकियो को स्मरण कराते हैं जैसे कि गर्म सीसा पिलाते समय वे कहते है कि तुम खूब मद्य पीते थे तथा उनके शरीर के मास को खिलाते समय कहते है कि तुम खूब मास खाते थे, इस प्रकार दु:ख के अनुरूप उनके कर्म को स्मरण कराते हुए उनको पीडा देते हैं तथा बिना कारण ही क्रोध करके चाबुक आदि के द्वारा परवश नारकीय जीवो को वे पीठ मे ताडन करते हैं।

अयव तत्त जलिय सजोई,
तऊवम भूमिणुक्क मता ।
ते डज्झमाणा कलुणा थणति,
उसुचोईया तत्तजुगेसु जुत्ता ।।

टीकार्थ—जलते हुए लोहे के गोले के समान जलती हुई ज्योति स्वरूप पृथ्वी मे चलते हुए नारकी जीव जलते हुए दीन स्वर से रोदन करते है तथा गरम जुए मे जोते हुए और बैल की तरह चाबुक आदि से मारकर चलने के लिए प्रेरित किये हुए रोदन करते हैं।

बाला बला भूमिमणुक्कमता,
पविजल लोहपह च तत्त ।
जसीऽभिदुग्गसि पवज्जमाणा,
पेसेव दडेहि पुराकरति ।।

टीकार्थ—नरकपाल, निर्विवेकी नारकी जीवो को जलाते हुए लोहमय मार्ग के समान उष्ण तथा रक्त और पीब की अधिकता के

कारण पंकिल भूमि पर उनकी इच्छा न होने पर भी बलात्कार से चलाते हैं। नारकीय जीव उक्त भूमि पर चलते हुए बुरी तरह शब्द करते हैं। अति विषम कुम्भी और शाल्मलि आदि जिस नरक मे परमाधार्मिक जाने के लिए उनको प्रेरित करते हैं उन पर क्रोधित होकर वे नौकर की तरह अथवा बैल की तरह डंडा या चाबुक से मारकर आगे चलाते हैं। वे नारकीय जीव अपनी इच्छा से न तो कही जाने पाते हैं और न रहने पाते हैं।

ते संपगाढंसि पवज्जमाणा,
सिलाहि हम्मंति निपातिणीहिं।
संतावणी नाम चिरट्ठितीया,
संतप्पती जत्थ असाहुकम्मा।

टीकार्थ—वे नारकीय जीव बहुत वेदना वाले असह्य नरक अथवा मार्ग मे गये हुए वहा से हट जाने तथा रहने मे असमर्थ होते हुए असुरों के द्वारा सामने से आने वाली शिलाओ के द्वारा मारे जाते हैं। जो प्राणियो को चारों ओर से ताप देती है उसे संतापनी कहते हैं। वह कुम्भी नरक है उसकी स्थिति चिरकाल तक की है। अर्थात् उस कुम्भी नरक मे गया हुआ प्राणी चिरकाल तक अत्यन्त वेदना भोगता रहता है तथा पूर्व जन्म मे पाप किया हुआ प्राणी उस कुम्भी मे जाकर अत्यन्त ताप भोगता है।

कंदूसु पक्खिप्प पयंति बालं,
ततोवि दड्ढा पुण उप्पयंति।
ते उड्ढकाएहिं पखज्जमाणा,
अवरेहिं खज्जंति सणप्फएहिं॥

टीकार्थ—नरकपाल, निर्विवेकी बिचारे नारकी जीव को गेंद के समान आकार वाले नरक मे डाल कर पकाते हैं। वहा चने की तरह पकते हुए वे जीव वहा से ऊपर उडकर जाते है। ऊपर उड कर गये हुए वे प्राणी वैक्रिय द्रोण काक के द्वारा खाए जाते हैं और वहा से दूसरी तरफ गये हुए वे सिह व्याघ्र आदि नख वाले जानवरो से खाये जाते हैं।

समूसियं नाम विधूमठाण,
ज सोयतत्ता कलुण थणति।
अहोसिरं कटट्ठु विगत्तिऊणं,
अयव सत्थेहि समोसवेंति॥

टीकार्थ—चिता के समान एक धूम रहित अग्नि का स्थान है। यहा नाम शब्द सम्भावना अर्थ में आया है। नरक मे ऐसा पीडा का स्थान होना सम्भव है यह नाम शब्द बतलाता है। उस स्थान को प्राप्त नारकीय जीव शोक से तप्त होकर रोदन करते हैं तथा नरकपाल उनका शिर नीचा करके और देह को लोहे के शस्त्रो से काट कर खड-खड कर देते है।

समूसिया तत्थ विसूणियंगा,
पक्खीहि खज्जति अओमुहेहि।
सजीवणी नाम चिरट्ठितीया,
जसी पया हम्मई पावचेया॥

टीकार्थ—उस नरक मे खभा आदि मे ऊपर भुजा और नीचे मस्तक करके चडालो द्वारा मृत शरीर की तरह लटकाये हुए तथा चमडा उखाडे हुए नारकी जीव, वज्र के चोच वाले काक और गीध आदि पक्षियो से

खाये जाते है इस प्रकार वे नारकीय जीव, नरकपालो के द्वारा अथवा परस्पर एक दूसरे के द्वारा छेदन भेदन किए हुए तथा उछाले हुए मूर्छित होकर वेदना की अधिकता का अनुभव करते हुए भी मरते नही हैं। इसीलिए नरक भूमि सजीवनी औषध के समान जीवन देने वाली कही जाती है। क्योकि नरक मे गया हुआ प्राणी खड-खड किया हुआ भी आयु शेष रहने पर मरता नही है। नरक की आयु उत्कृष्ट तैंतीस सागरोपम काल की कही है। इसलिए वह चिरकाल की स्थिति वाली है। जिस नरक मे गये हुए पापी प्राणी मुद्गर आदि के द्वारा मारे जाते हैं, नरक की पीडा से विफल हुए वे मरना चाहते हुए भी तथा अत्यन्त पीसे हुए भी मरते नही हैं किन्तु पारे के समान मिल जाते है।

तिक्खाहिं सूलाहिं निवाययंति,
वसोगयं सावयं य व लद्ध।
ते सूलविद्धा कलुणं थणंति,
एगंत दुक्खं दुहओ गिलाणा ॥

टीकार्थ—पूर्व जन्म मे पाप किये हुए नारकी जीव को नरकपाल तीखे लोह के शूलो से वेध करते हैं। किसकी तरह ? वश में आये हुए मृग तथा सूअर आदि की तरह, स्वतन्त्रता से पाकर उन्हे पीडा देते हैं। शूल आदि के द्वारा वेध किये हुए भी नारकीय जीव मरते नही हैं किन्तु करुण क्रन्दन करते हैं उन नारकीय जीवो की रक्षा करने मे कोई समर्थ नही है। वे नारकी जीव भीतर और बाहर दोनो ओर से हर्ष रहित होकर सदा दु ख अनुभव करते है।

सयः जलं नाम निहं महंत,
जसी जलतो अगणी अकठ्ठो।

चिट्ठति बद्धो बहुक्रूरकम्मा,
अरहस्सरा केई चिरट्ठितीया।

टीकार्थ—जो उष्ण रूप होने के कारण सदा जलता रहता है ऐसा एक स्थान है। कर्म वशीभूत प्राणी जिसमे मारे जाते हैं उसे निह कहते हैं। वह प्राणियो का घात स्थान है। वह स्थान बहुत विस्तार वाला है, जिसमे बिना काठ के आग जलती है। ऐसे उस स्थान मेपूर्व जन्म अत्यन्त क्रूर कर्म किये है वे प्राणी अपने पाप का फल भोगने के लिए बधे हुए निवास करते हैं। वे प्राणी कैसे है ? जोर-जोर से रोते रहते है और चिरकाल तक निवास करते है।

चिया महतीउ समारभित्ता,
छुब्भति ते त कलुण रसत।
आवट्टती तत्थ असाहुकम्मा,
सप्पी जहा पडिय जोइमज्झे॥

टीकार्थ—नरकपाल विशाल चिता बना कर करुण रोदन करते हुए नारकी जीव को उसमे डाल देते है। वह पापी उस चिता मे जा कर द्रव हो जाता है। जैसे आग मे डाला हुआ घृत द्रव हो जाता है। इसी तरह वह भी द्रव हो जाता है। परन्तु नरक भाव के प्रताप से प्राणरहित नही होता है।

सदा कसिण पुण घम्मठाण,
गाढोवणीय, अइदुक्खधम्म।
हत्थेहि पाएहि य बधिऊण,
सत्तुव्व डडेहि समारभति॥

टीकार्थ—हमेशा सब भाग मे उष्ण एक दूसरा गर्म स्थान है। जो

दृढ अर्थात् निधत्त निकाचित अवस्था वाले कर्मों से प्राप्त होता है तथा जो स्वभाव से ही अत्यन्त दु ख देने वाला है। ऐसे यातना स्थान मे माण रहित नारकी जीव को हाथ पर बाध कर नरकपाल डाल देते हैं और वहा उस दशा मे पडे हुए उनको शत्रु की तरह डण्डो से मारते हैं।

भंजति बालस्स वहेण पुट्ठी,
सीसंपि भिंदति अओघणेहिं।
ते भिन्नदेहा फलगं व तच्छा
तत्ताहि आराहि णियोजयति॥

टीकार्थ—नरकपाल, बेचारे नारकी जीव की पीठ पीडा देने वाले लाठी आदि के प्रहार से मार कर तोड देते हैं तथा लोहे के घन से मार कर उनका सिर चूर-चूर कर देते हैं। अपि शब्द से दूसरे भी उनके अग तथा उपागो को घन से मार कर चूर-चूर कर देते हैं। इस प्रकार जिनके अग और उपाग चूर-चूर कर दिये गये हैं ऐसे नारकीय जीव शरीर के दोनों भागों मे आरा के द्वारा चीर कर पतले किये जाते हैं। फिर गर्म आरा से पीडित किये जाते हुए वे सीसा पीने आदि कार्यों मे प्रवृत्त किये जाते हैं।

अभिजुंजिया रुद्द असाहुकम्मा,
उसुचोइया हत्थिवहं वहंति।
एगं दुरुहित्तु दुवे ततो वा,
आरुस्स विज्झति ककाणओ से॥

टीकार्थ—नरकपाल, नारकी जीवो को दूसरे नारकी जीवो के हनन करने आदि कर्मों मे लगा कर अथवा पूर्व जन्म में उनके द्वारा

किये हुए प्राणियो के घात आदि कार्यो का स्मरण कराकर जन्मान्तर मे अशुभ कर्म किये हुए नारकी जीवो को बाणो से मार कर हाथी की तरह भारवहन कराते हैं। इसी तरह उस नारकी से भी भारी भार-वहन कराते हैं जैसे हाथी पर चढकर उससे भार वहन कराते हैं। इसी तरह उस नारकी से भी सवारी ढोने का काम लेते हैं। अथवा जैसे हाथी भार वहन करता है, इसी तरह उस नारकी से भी भार वहन कराते है। हाथी की तरह भार-वहन करना जो यहा कहा है, वह उपलक्षण मात्र है। इस तरह ऊट की तरह भार-वहन करना भी समझ लेना चाहिए। नरकपाल नारकीय जीवो से किस प्रकार भार वहन कराते है, सो शास्त्रकार दिखाते हैं। उस नारकी के ऊपर एक, दो या तीन व्यक्तियो को बैठा कर उनका उससे वहन कराते है। अत्यन्त भार होने के कारण जब वे वहन नही करते है तो वे क्रोधित हो कर चाबुक आदि के द्वारा उनको मारते हैं तथा उनके मर्म स्थान का वेध करते हैं।

बाला बला भूमिमणुक्कमता,
पविज्जल कटइल महत।
विवद्धतप्पेहि विवण्णचित्ते,
समीरिया कोट्टबलि करिति ॥

टीकार्थ—बालक के समान पराधीन नारकी जीव रुधिर आदि से पिच्छिल तथा कण्टकाकीर्ण पृथ्वी पर चलते हुए मन्द गति से चलने पर बलात्कार से तेज चलाये जाते हैं। तथा दूसरे मूर्छित नारकीय जीव को अनेक प्रकार से बाधकर पाप कर्म से प्रेरित नरक-पाल खड खड काट कर नगर बलि के समान इधर-उधर फैक देते हैं, अथवा उन्हे नगर की बलि कहते हैं।

वेतालिए नाम महाभितावे,
एगायते पव्वयमतलिक्खे ।
हम्मति तत्था बहुकूरकम्मा,
पर सहस्साण मुहुत्तगाण ।।

टीकार्थ—नाम शब्द सम्भावना अर्थ मे आया है। वह यह बताता है कि यह बात हो सकती है। जैसे कि महान् ताप से युक्त अर्थात् महान दुःख देना जिसका प्रधान कार्य है ऐसे आकाश मे एक शिला के द्वारा बनाया हुआ, दीर्घ, परमाधार्मिको से रचित एक पर्वत है। वह पर्वत अन्धकार रूप है। इसलिए हाथ के स्पर्श से उस पर चढते हुए पूर्व जन्म मे पाप किये हुए नारकी जीव हजार मुहूर्तों से अधिक काल तक परमाधार्मिको के द्वारा मारे जाते है। यहा सहस्र शब्द उप-लक्षण है। इसलिए चिरकाल तक वे मारे जाते हैं, यह समझना चाहिए।

संबाहिया दुक्कडिणो थणति,
अहो यराओ परितप्पमाणा।
एगतकूडे नरए महंते,
कूडेण तत्था विसमे हता उ ।।

टीकार्थ—एकदम से पीडित किये हुए महापापी जीव रात दिन दुःख से पीडित होकर करुण रोदन करते रहते हैं। जिसमे एकान्त रूप से दुःख की उत्पत्ति का स्थान है, ऐसे विस्तृत नरक मे पडे हुए प्राणी गले में फासी डालकर अथवा पत्थरो के समूह से उस विषम स्थान में मारे जाते हुए केवल रोदन ही किया करते हैं।

भजति ण पुव्वमरी सरोस,
समुग्गरे ते मुसले गहेतु ।
ते भिन्नदेहा रुहिर वमता,
ओमुद्धगा धरणितले पडति ॥

टीकार्थ—दूसरे जन्म के वैरी के समान परमाधार्मिक, अथवा दूसरे जन्म के अपकारी नारकी जीव दूसरे नारकी जीवो के अगो को क्रोध सहित मुद्गर और मुसल लेकर गाढ प्रहार से तोड देते हैं। रक्षक रहित वे नारकी जीव, शस्त्र के प्रहार से चूर्णित शरीर होकर रुधिर वमन करते हुए अधोमुख पृथ्वी पर गिर जाते हैं।

अणासिया नाम महासियाला,
पागब्भिणो तत्थ सयासकोवा ।
खज्जति तत्था बहुकूरकम्मा,
अदूरए सकलियाहि बद्धा ॥

टीकार्थ—नरकपालो के द्वारा बनाये गए विशाल शरीर वाले भूखे बड़े ढीठ रौद्ररूप निर्भय गीदड उस नरक मे होते हैं। नाम शब्द सम्भावना अर्थ मे आया है। यह नरक मे सम्भव है यह वह बताता है। वे गीदड हमेशा क्रोधित रहते हैं। उन गीदडो के द्वारा उस नरक मे रहने वाले एक दूसरे के समीपवर्ती, तथा लोहे की जजीर मे बधे हुए पूर्व जन्म के पापी जीव खाये जाते हैं।

सयाजला नाम नदी भिदुग्गा,
पविज्जल लोहविलीणतत्ता ।
जसी भिदुग्गसि पवज्जमाणा,
एगायऽताणुक्कमणं करेंति ॥

टीकार्थ—जिसमे सब समय जल भरा रहता है उसे सदाजला कहते हैं, अथवा जिसका सदाजला नाम है ऐसी नरक की एक नदी है। वह बडी विषम अर्थात् कष्टदायिनी है। उसका जल अत्यन्त उष्ण और क्षार पीब तथा रक्त से मलिन रहता है। अथवा रक्त से भरी हुई होने के कारण वह बडी पिच्छल है। अथवा वह विस्तृत गम्भीर जल वाली है अथवा वह प्रदीपजला यानी अत्युष्ण जल वाली है। यह शास्त्रकार दिखलाते हैं। आग से तपा हुआ अत एव द्रव को प्राप्त जो लोह उसके समान ताप वाली वह नदी है। अर्थात् अत्यन्त ताप से तप कर गले हुए लोह के समान उसका जल गर्म रहता है। ऐसी सदाजला नामक अति विषम नदी मे पडे हुए नारकी जीव अकेले रक्षक रहित तैरते हैं।

एयाइ फासाइ फुसंति बाल
निरन्तरं तत्थ चिरट्ठितीय ।
ण हम्ममाणस्स उ होइ ताणं,
एगोसय पच्चणु होइ दुक्ख ॥

टीकार्थ—अब शास्त्रकार उद्देशक को समाप्त करते हुए फिर भी नारकीय जीवों का दुख बतलाने के लिए कहते हैं। पहले के दो

उद्देशो मे जिनका वर्णन किया है वे दुख विशेष परमाधार्मिको के द्वारा किये हुए अथवा परस्पर के द्वारा किये हुए अथवा स्वभाव से किये हुए जो अति कटु हैं ऐसे अति दुःसह रूप रस गध स्पर्श औरशब्द शरण रहित नारकी जीव को सदा पीडित करते रहते है। पलक गिराने मात्र काल तक भी उनको दुख से छुट्टी नही मिलती। वे नारकीय जीव चिरकाल तक उस नरक मे निवास करते हैं। क्योकि रत्नप्रभा नामक पृथ्वी मे उत्कृष्ट सागरोपम काल की स्थिति है। और दूसरी शकर प्रभा के उत्कृष्ट तीन सागरोपम काल की स्थिति है। बालुका मे सात, पङ्क मे दश, धूमप्रभा मे सत्रह, तम प्रभा मे बाईस एव महातम प्रभा सातवी पृथ्वी मे तैतीस सागरोपम काल की उत्कृष्ट स्थिति है। इन पृथ्वी मे गये हुए और कर्म के द्वारा उत्कृष्ट स्थिति पाये हुए तथा दूसरे के द्वारा मारे जाते हुए अपने किये हुए कर्म का फल भोगने वाले नारकीय जीव की कोई भी रक्षा नही कर सकना। क्योंकि नरक दुख भोगते हुए लक्ष्मण का उस दुख से रक्षा करने के लिए उद्यत होकर भी सीतेन्द्र रक्षा नही कर सके, ऐसा सुना जाता है। इस प्रकार प्राणी अकेला अर्थात् जिन लोगों के लिए उसने पाप का उपार्जन किया था उनसे रहित होकर अपने कर्म के फल स्वरूप दुख भोगता है। कोई भी उसके दुख मे भाग नही लेता, वह कहता है कि— मैंने अपने परिवार के लिए अत्यन्त दारुण कर्म किये। उस कम के बदले मे अकेला दुख भोग रहा हू। परन्तु उसका फल भोगने वाले मुझको छोड गये आदि।

ज जारिस पुव्वमकासि कम्म,
तमेव आगच्छति सपराए।
एगतदुख भवमज्जणित्ता,
वेदति दुक्खी तमणत दुक्ख॥

टीकार्थ—प्राणियो ने पूर्व जन्म मे जैसी स्थिति वाला तथा जैसा प्रभाव वाला जो कर्म किया है, वह वैसा ही अर्थात् जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट स्थिति वाला उसी तरह ससार मे प्राणियो को प्राप्त होता है। भाव यह है कि तीव्र मद और मध्यम जैसे बन्ध के अध्यवसायो से जो कर्म बाधा गया है, वह तीव्र मद और मध्यम ही विपाक उत्पन्न करता हुआ उदय को प्राप्त होता है। जिस प्राणी ने सुख के लेश से भी रहित एकान्त रूप से जिसमे दु ख ही होता है। ऐसे नरकभव के कारण स्वरूप कर्मों का अनुष्ठान किया है, वे एकान्त दु खी होकर पूर्वोक्त असाता वेदनीय रूप दु ख जो अनन्त और किसी से भी शान्त करने योग्य नही तथा प्रतीकार रहित है, उसे भोगते हैं।

एताणि सोच्चा णरगाणि धीरे,
न हिंसए किंचण सव्वलोए।
एगंतदिट्ठी अपरिग्गहे उ,
बुज्झिज्ज लोयस्स वस न गच्छे।

टीकार्थ—फिर भी शास्त्रकार इस उद्देशक की समाप्ति के व्याज से उपदेश देते है—जिनका वर्णन पहले किया गया है। ऐसे नरको को अर्थात् नरक मे होने वाले दु खो को सुन कर बुद्धि से सुशोभित बुद्धिमान पुरुष यह कार्य करे। वह कार्य शास्त्रकार दिखलाते हैं—त्रस और स्थावर भेद वाले समस्त प्राणी रूप लोक मे किसी भी प्राणी की हिंसा न करे तथा जीवादि तत्वो में निश्चल दृष्टि रखता हुआ अर्थात् अविचल सम्यक्त्व को धारण करता हुए एव जिसे लोग सुख के लिए चारो ओर से ग्रहण करते हैं, ऐसे परिग्रह को वर्जित करता हुआ तथा तु शब्द से अथवा आदि और

अन्त के ग्रहण से मृषावाद, अदत्तादान और मैथुन को भी त्यागता हुआ पुरुष अशुभ कर्म करने वाले अथवा अशुभ कर्म का फल भोगने वाले जीवो को अथवा कषायो को स्वरूपत जानकर उनके वश मे न जाए।

एव तिरिक्खे मणुया सुरेसु,
चतुरत्तऽणत तयणु व्वाग ।
स सव्वमेय इति वेइत्ता,
कखेज्ज काल धुयमायरेज्ज त्तिवेमि ॥

टीकार्थ—जो दु ख विशेष पहले गये है, वे दूसरी जगह भी होते हैं—यह बताने के लिए शास्त्रकार कहते हैं—अशुभ कर्म करने वाले प्राणियो को तिर्यंच, मनुष्य और अमरभव मे भी चतुर्गतिक तथा और उसके अनुरूप विपाक प्राप्त होता है। इन सब बातो को पूर्वोक्त रीति से बुद्धिमान पुरुष जानकर सयम का आचरण करता हुआ मृत्यु काल की प्रतीक्षा करे। भाव यह हैं कि चतुर्गतिक ससार में पडे हुए जीवो को केवल दु ख मिलता हैं, इसलिए बुद्धिमान पुरुष मरण पर्यन्त मोक्ष या सयम के अनुष्ठान मे तत्पर रहे। इति शब्द समाप्ति अर्थ का द्योतक है।

दशाश्रुत स्कन्द सूत्र

जे नरगा अतोवट्टा बाहि चउरसा अहे खुरप्प सठाण-सठिया, निच्चधकार-तमसा ववगय-गह-चदसूर-णक्खत्त-जोइस-प्पहा, भेद-वसा-मस रुहि-पूयपडल-चिक्खल-लितापुलेव-पालता, असुइविसा, परमदुब्भिगघा, काउय—अगीण—वण्णाभा, कक्खड—फासा, दुरहि-यासा, असुभा नरगा, असुभा नरये वेयणा, नो चेतन नरए नेरइता निद्दायनि वा पयलायति वा सति वा धिति वा मति वा उवलभयति, तेसा तत्थ उज्जल विगल पगाढ कक्कस कडुय चडे दुग्ख दुग्ग निक्ख

तिव्व दुक्खहियस नरएस्सु नेरइया नरय—वेयण पच्चणुवभवमाणा विहरंति।

टीकार्थ—इस सूत्र मे नरक व नरक के दु खो का दिग्दर्शन कराया गया है, जैसे—नरक का भीतरी भाग गोलाकार और बहिर्भाग चतुष्-कोण है। नरको की भूमि क्षुर (उस्तरा) के समान तीक्ष्ण है। वहा ज्योतिश्चक्र के न होने से निरन्तर अन्धकार रहता है। परमाधर्मी देव नारकियो को दु ख देने के लिए अनेक अनिष्ट पदार्थों को वैक्रिय (विकुर्वणा) करते है। जैसे—भेद (चर्बी), वसा मास, रुधिर और पीक आदि की विकुर्वणा कर उनसे भूमि-तल का लेप किया जाता है। कथित पदार्थों की उत्कट गध से सब नरक व्याप्त रहते हैं। कृष्णाग्नि की प्रभा के समान वहा के सब पदार्थ तप्त रहते हैं। नारकी जीव सदैव दु सह वेदना का अनुभव करते हैं। उनकी निद्रा, प्रचला (बैठे-बैठे निद्रा लेना), स्मृति, रति, बुद्धि, धृति आदि सब नष्ट हो जाते हैं। इससे ये सदैव उज्ज्वल, निर्मल, विपुल, प्रगाढ, कर्कश, कटुक, चण्ड, रौद्र, रूक्ष, दुर्गम, अति दु खद तीव्र वेदना का अनुभव करते हुए विचरते हैं। तात्पर्य यह है कि नरक मे निमेष मात्र के लिए भी सुख नही होता। सदैव उत्कट से उत्कट दु ख का अनुभव वहा करना पडता है। यह सब दु ख पूर्व कर्मों के उन बुरे कर्मों का फल होता है जिनको आत्मा—नास्तिक मत का अनुयायी होकर चलता था।

प्रश्न व्याकरण सूत्र

(आश्रव द्वार)

नरक मे जिस प्रकार का दु ख नारकी भोगते है सो कहते हैं, वहा नरक क्षेत्र और क्षेत्रो से बडे है। वहा वज्ररत्न की भिति विस्तीर्ण और सन्धि रहित है, कठोर भूमितल है, कर्कश स्पर्श है, विषम—ऊचा नीचा स्थान है, वहा चारक गो जैसे उत्पात के स्थान हैं, वहा भित के ऊपर के भाग मे नैरयिक के उत्पत्ति स्थान रूप मे बिल है, वे सदैव उष्ण, तप्त, अशुभ दुर्गंधमय, अवश्य चिता उत्पन्न करने वाले, बीभत्स, अमनोज्ञ दर्शनीय, सदैव हिम के पडल जैसे शीतल स्थान हैं। वे स्थान कृष्ण वर्ण वाले, काली कातिवाले रौद्र, भयकर, महागम्भीर, देखने से ही रोम खडे होवे वैसे, अदर्शनीय और उत्पन्न हुए पीछे पूर्ण स्थिति भोगे बिना नही निकल सके वैसे हैं। वहा के जीव सदैव व्याधि, रोग व वृद्धावस्था से पीडित रहते हैं। वहा के स्थान सदैव अन्धकार होने से तिमिस्र गुफा के समान चारो ओर भयकर उचाट उत्पन्न करने वाले हैं। वहा नरक में चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र व तारा आदि ज्योतिषि नही हैं। नरक स्थान मेद, चरबी, मास इत्यादि समूह से परिपूर्ण है, आम रुधिर से मिश्रित है। दुर्गन्छा वाले अत्यन्त चिकने रस से व्याप्त हैं, सडा हुआ, बिगड कर विद्रप दुर्गंधमय कर्दम वहा रहा हुआ है। वहा नरक मे कुम्हार की

भट्टी जैसी जाज्वल्यमान अग्नि तथा मोमर रूप (राख से ढकी हुई) अग्नि है वहा वैक्रय किये खड्ग, छुरा, करवत इत्यादि शस्त्र अति ही तीक्ष्ण हैं, वृश्चिक की पूछ जैसा वक्र और विषमय कटक समान है, सडासादि शस्त्र से खीच कर नैरयिको को नीचे पटकते हैं। उन को नरक का स्पर्श अति दुख निवारक नही है, अत्यन्त दुखप्रद परिताप वाले पूर्वकृत कर्म प्राप्त होने से निरन्तर वेदना भोगते हुवे रहते हैं। वहा परमाधर्मी देव परिताप उत्पन्न करते हैं। वे अनेक प्रकार के विकराल रूप बनाते हैं वैसे ही शस्त्र कुशस्त्र का वैक्रेय बना कर विविध प्रकार के दुख देते हैं। इस से वह नैरयिक अति आकुल व्याकुल हो रहे हैं। नरक मे उत्पन्न हुए पीछे अन्तर्मुहूर्त मे उन को वैक्रिय लब्धि की प्राप्ति होती है। इस से वे अपना शरीर बनाते हैं वह शरीर हुडक सस्थान वाले होते हैं बीभत्स दुर्गंधा उत्पन्न करे वैसे होते हैं उन को स्वत को ही भयकर दीखते हैं उन मे हड्डी, स्नायु, नाडियो जाल इत्यादि कुछ भी नही है। अशुभ दुख सहन करने मे शक्तिमन्त होते हैं, वहा आहारादि पाचो प्रयाप्ति पूर्ण बाधे पीछे वहा के दुखो का अनुभव पूर्णपने करते हैं जैसे वहा की अशुभ उज्ज्वल वेदना होती है। वह कहते है उस नरक की जमीन का उत्कृष्ट खरखरा अग्नि समान तप्त दुख-दायक पाव के स्पर्श मात्र से मस्तक पर्यंत वेदना होवे वैसा (बिच्छु के समान) स्पर्श है, ऐसी घोर दारुण वेदना वहा के जीव अनुभवते हैं, यहा के जीव तो वहा तत्काल ही मृत्यु प्राप्त हो जावे ऐसा विषम स्थान है। शिष्य प्रश्न करता है कि वहा के जीव कैसे वेदना अनुभव

करते हैं। (उत्तर) वहा लोहमय कुभी ऊट की गर्दन, तिजोरी के डण्डे, सीदड, और डव्वे जैसी है इन मे नैरयिक जीवो को चावल जैसे पकाते है, शाक जैसे राधते हैं, कडाई मे तलते हैं, भट्टी मे भुजते है, तिल की तरह घाणी मे पीलते हैं, मुद्गर से कूटते हैं, शिला पर पछाडते हैं, शाल्मली वृक्ष नीचे वैठा कर लोहमय कटक जैसे पत्र से छेदन करते हैं, लोहमय कटक की लता से भेद कर इधर उधर खीचते है कुहाडे से लक्कड जैसे फाडते है। चक्की मे दाने की तरह पीसते हैं, हाथ पग्व ग्रीवा सब एकत्रित कर बाधते हैं, लकडी के सैकडो प्रहार से कूटते है चावुक कोरड से ताडन करते हैं क्षार से गालते हैं बिलात्कार से शरीर बिलूरते है, वृक्ष पर उल्टे लटकाते हैं, शूली मे पिरोते हैं। वहा के यमदेव ऐसा कहते हैं कि तुम ने शास्त्र के अर्थ विपरीत करके लोगो को ठगा, अथवा लोगो को उल्टा मार्ग बताया, ऐसा कह कर उन की जिव्हा का छेदन करते हैं, और लोहमय कटक वाले पथ पर चलाते हैं, अरे पापिष्ट! यह तेरे स्वय कृत कर्म हैं इसे अवश्यमेव भोगना होगा, यो कह कर उनको विछूडते है, चोर की तरह भूमि मे खडडा कर गाढते हैं, नरक की महाग्नि मे जलाते है, अत्यन्त गाढा प्रहार करते हैं, तद्रूप वेदना है वह वेदना वेदते महाभय के उत्पादक, कर्कश, कठिन, असाता वेदनीय कर्म के उदय रूप तथा शारीरिक और मानसिक यथोचित कर्मो के अनुसार दुख भोगते रहते हैं, उनको ऐसी दुसह वेदना पापकर्म के उदय से आई हुई है। बहुत पल्योपम तथा सागरोपम पर्यन्त इस प्रकार प्रकट दुख भोगते ही रहते है, वे परमाधर्मी

से त्रास पाये हुये आर्त स्वर से आक्रन्द करते हुए और भय भ्रान्त बने हुए चिल्लाते हैं, कि अहो शक्तिमान ! स्वामिन ! भ्रात, तात ! तुम जयवत रहो ! मैं मर रहा हूं मुझे छोड दो, मैं दुर्बल हूं. व्याधि से पीडित बना हुआ हूं थोडी देर के लिए मुझे छोडो, यो दारुण रौद्र स्वर से चिल्लाते हैं, अरे मुझे तो न मारो अहो थोडी देर ठहरो, मुझ श्वास लेने दो विश्राम लेने दो मुहूर्त भर, अरे, इतनी मेरे पर दया करो, मेरे जैसे दीन पर कोप मत करो मेरे श्वास का रुन्धन हुआ जा रहा है, मुझे थोडी देर के लिए छोड दो, मैं मर रहा हूं, मैं बडा दुखी हूं और भी नरक के दुख कहते हैं मुझे प्यास लग रही है मुझे पानी पिलाओ, ऐसा जब बोलते है तब यमदेव कहते हैं कि यह निर्मल शीतल पानी ले लो—यो कह कर तप्त किया हुआ व अग्नि से गाला हुआ सीसे का रस उसकी अजली मे डालते हैं। वे पानी के भ्रम से उसे लेते हैं परन्तु जाज्वल्यमान सीसे का रस देखते ही भयभीत हो जाते हैं सब अगोपाग धूजने लगते हैं। आखो से अश्रु झरते हैं और कहते हैं कि मुझे अब तृषा नही है मुझे पानी नही पीना है यो करुणाजनक विलाप करता हुआ दशोदिशि मे भागता फिरता है वहा उसे दुख से छुडाने वाला कोई नही है वह अनाथ अशरण बन कर विशेष भागता है जैसे सिंह को देख कर भयभीत बना हुआ मृग वन मे भागता है इस प्रकार भागते हुए को वे यम बलात्कार से पकडते हैं निर्दयी बन कर लोह दड से उसका मुख फाड कर कलकलाट करता (उकलता) ऊष्ण सीसे का रस उसके मुख मे डालते हैं वह नैरयिक ऐसा अत्यत दुख से त्रासित बन कर विलाप करता है तब परमाधर्मी हसते हैं चिढाते हैं! सीसे के उष्ण रस से प्रज्वलित बने हुए नैरयिक जीव करुणा–

जनक स्वर से रुदन करते है और घायल हुए कबूतर जैसे तडफते है यो आलाप विलाप व दयाजनक आक्रन्द करते हैं तब निर्दयी परमाधर्मी उनकी तर्जना ताडना करते हैं, अति भयकर शब्द से उनको त्राम उत्पन्न करते हैं इस तरह दु ख से पीडित व आकुल व्याकुल बने हुए नैरयिक मे से कितनेक का व्यक्त वचन और कितनेक का अव्यक्त वचन सुन कर वे परमाधर्मी पुन कुपित होते हैं और लकडी आदि के प्रहार बडे जोर से करते है, खड्ग से छेदन करते हैं, भाले से भेदते हैं, चक्षुओ को बाहिर निकाल देते है वाह प्रमुख उपाग काटते है कृत विकृत करते हैं। पुन मारते है, विशेष प्रकार से गलहत्या देकर धक्का मुक्की लगाकर निकालते हैं। फिर खीच कर लाते है, उन्हे उठाते है नीचे पटकते हैं और कहते हैं कि अरे दुष्ट तू यह वचन किस को सुनाता है ? तू तेरे पाप कर्म के प्रभाव से ही दु खित होता है, तूने कैसे कर्म किये है उनका स्मरण कर। इस तरह उन के पूवकृत कर्मो का स्मरण कराते हैं, कृत कर्म कह सुनाते है अरे दुष्ट ! तू अकृत्य करने वाला है ऐसा कह कर उन की निर्भत्सना करते हैं इस प्रकार नैरयिको के दीन वचन से परमाधर्मी के तर्जनकारी वचन से नरक मे सदैव हाहाकार मचता है, वह हाहाकार ही महात्रास करने वाला है यथा दृष्टान्त जैसे किसी नगर मे चारो ओर दाव लगने से वहा रहे हुए मनुष्य का कोलाहल शब्द होता है वैसे नरक मे सदैव कोलाहल मचा रहता है। यह अत्यन्त अनिष्ट होता है इस प्रकार के शब्द नरक मे सुनाई देते हैं।

वहा नरक मे खड्ग समान वन है इस मे प्रवेश करने से ही

नैरयिक चिल्लाते हैं । उन के शरीर खड-खड हो जाते हैं, सूई के अग्र जैसा तीक्ष्ण वन है तेजाब अथवा क्षार आदि की भरी हुई बावडिया हैं इस मे प्रवेश करते ही नैरयिक गल जाते हैं, वैतरणी नदी है, कलबुक पुष्प समान तप्त बालु के वन हैं, इस मे प्रवेश करने से ही नैरयिक भुजा जाते हैं। भरोटे गोखरू के वन, तीक्ष्ण कटक के वन, ऐसे वन है वहा पर तप्त किया हुआ लोहमय रथ मे नैरयिको को जोत कर तप्त किये हुए विषम मार्ग मे चलाते हैं और जिस प्रकार शस्त्र से दुख देते हैं, सो कहते हैं—अब शिष्य प्रश्न करता है कि तीसरी नरक नीचे कैसा शस्त्र है। उत्तर-पुद्गल करवत, त्रिशूल, गदा, मूशल, भाला, बाण, शूल लकडी, भिडमाल, पट्टा चिमटा दुधारी, खड्ग, धनुष्य, तीर, करनक, कतरणी वसोला, फरसी, कुहाडी, ये सब अतीव तीक्ष्ण निर्मल, भल-भलाट करते हुए अनेक प्रकार के खराब शस्त्र का वैक्रेय बना कर और उससे सज्ज बन कर पूर्वभव के तीव्र वैरभाव से चकसाते हुए नैरयिक सम्मुख बन कर महती वेदना की उदीरना करते हैं एकेक को मारते हैं यम के प्रहार से मस्तक फल जैसे टूटते हैं, और जैसे बढई लकडी तरासता है, वैसे ही उन के अगोपाग छेदित करते हैं, उस पर अत्यन्त ऊष्ण क्षार जैसा पानी का सिंचन करते हैं, इस दुख से वे अत्यन्त दुखित होते हैं। उन के शरीर मे ज्वाला होती है भाला के अग्र से शरीर भेदाने से सम्पूर्ण शरीर छिद्र मय बन जाता है वे दीन नैरयिक भूमि पर पड कर जर्जरित होते हैं, और उन के सब अगोपाग के रुधिर निकलता है वहा नरक मे चित्ता, श्वान, शृगाल, काक, बिल्ली, अष्टपद, चित्रा, व्याघ्र, शार्दूल, सिंह, मदोन्मत्त और क्षुधा से पीडित भोजन से सदैव

रहित, घोर रौद्र क्रिया करने वाले विकराल रूप बनाने वाल पशु अपने पाव मे उन के शरीर ले कर दृढ तीक्ष्ण दाढो से काटते है अति तीक्ष्ण नखो से शरीर फाडते हैं शरीर का चर्म उधेडते हैं शरीर को दशो दिशा मे बिखेरते हैं उन के शरीर बन्धन इस से शिथिल हो जाते हैं वे शरीर और बुद्धि से विकल बन जाते हैं वैसे शरीर को काक, ढ क, गृद्ध सामली, रोधक, महावायस इत्यादि पक्षी अपनी तीक्ष्ण नख से कुचर कर चमडी निकलाते हैं और मास आदि तोड कर मुख मे से जिव्हा निकाल कर और आखे फोड कर खा जाते हैं, इस प्रकार दु ख से आकुल व्याकुल बने हुए नरक जीव भट्टी मे जैसे चने ऊचे उछलते हैं, फिर नीचे गिरते हैं, और इधर उधर परिभ्रमण करते है, पूर्व कर्मोदय से उन के चित्त मे ज्वलन होने से अपने कृतकर्मो की निन्दा करते हैं कि मैं ने बहुत बुरा किया, यो पाप का पश्चात्ताप करते हैं इस तरह रत्न प्रभादि नरक मे उक्त प्रकार के प्राणतिपात रूप पाप का आचरण कर और उम से चिक्कने कर्म का बन्ध कर परमाधर्मी कृत और परस्पर कृत, और क्षेत्र जन्य वेदना से अति ही पीडित बन कर पाप के फल अनुभवते हैं

जीवाभिगम सूत्र

प्र०— नारकी किसे कहते हैं ?

उ०— नारकीय के सात भेद कहे हैं, जिन के नाम प्रथम पृथ्वी के नारकीय, दूसरी पृथ्वी के नारकीय तीसरी पृथ्वी के नारकीय, चौथी पृथ्वी के नारकीय, पाचवी पृथ्वी के नारकीय छठी पृथ्वी के नारकीय, सातवी पृथ्वी के नारकीय ।

प्र०— अहो भगवन ! प्रथम पृथ्वी का क्या नाम व क्या गोत्र हैं ।

उ०— अहो गौतम ! प्रथम पृथ्वी का नाम घम्मा व गोत्र रत्न॰ प्रभा है।

प्र०—अहो भगवन ! दूसरी पृथ्वी का क्या नाम वगोत्र है ?

उ०— अहो गौतम ! दूसरी पृथ्वी का वशा नाम व शर्करप्रभा गोत्र है। इस भांति से सब का कहना, तीसरी पृथ्वी का नाम शीला व बालु प्रभा गोत्र है। चौथी का अजना नाम व पकप्रभा गोत्र है। पाचवी पृथ्वी का रिठटा नाम व धूमप्रभा गोत्र है। छठी पृथ्वी का मघा नाम व तम प्रभा गोत्र है, सातवी पृथ्वी माघवती नाम व तमतमा गोत्र है।

प्र० – अहो भगवन् ! इस रत्न प्रभा पृथ्वी का पिण्ड कितनी मोटाई मे है ?

उ०— अहो गौतम ! एक लाख ४० हजार योजन का मोटा है। ऐसे प्रश्नोत्तर आगे भी जानना, अर्थात् शर्करप्रभा पृथ्वी का एक लाख ३२ हजार योजन का जाडपना है। बालुक प्रभा का एक लाख अठाईस हजार योजन का जाडपना है। पकप्रभा का एक लाख बीस हजार योजन का जाडपना है। धूम्रप्रभा का एक लाख अठारह हजार योजन का जाडापन है। तम प्रभा का एक लाख सोलह हजार योजन का जाडपना है। और सातवी तमस्तम प्रभा का एक लाख आठ हजार योजन का पृथ्वी पिण्ड है।

प्र०— अहो भगवन ! रत्नप्रभा पृथ्वी के कितने भेद हैं ?

उ०— अहो गोतम ! रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन भेद कहे है। खरकाड अर्थात् कठिन काड यह जो अपन रहते हैं सो। अच्छा

सुन्दर पृथ्वी का भूमि भाग है । यही खरकाड है, तत्पश्चात् दूसरा पंकबहुल काड है, अर्थात् इस मे कीचड व कचरा बहुत होता है। तीसरा अपबहुल्य काड, अर्थात् इस मे पानी की बहुलता बहुत है ।

प्र०—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के खरकाण्ड के कितने, भेद कहे है ?

उ०—अहो गौतम ! इस के सोलह भेद कहे है । तद्यथा—रत्न काण्ड, वज्र काण्ड, वैडूर्य काण्ड लोहिताक्ष काण्ड, मसारगल्ल काण्ड, सौगन्धिक काण्ड, ज्योति रत्न काड, अजन काण्ड, अजन पुलाक काड रजत काड, जातरूप काड, अक काण्ड और रिष्ट काड, ये सोलह भेद खर काड के हुए ।

प्र०—रत्नप्रभा पृथ्वी मे पहला रत्न काड कितने प्रकार का है ?

उ०—अहो गौतम ! रत्न काड का एक ही आकार कहा है, यो रिष्ट काड पर्यन्त सब का जानना ।

प्र०—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के पक बहुल काड के कितने भेद हैं ?

उ०—अहो गौतम ! वह एक ही प्रकार का है ।

प्र०—अहो भगवन ! अपबहुल काड के कितने भेद कहे हैं ?

उ०—अहो गौतम ! उस का एक ही भेद कहा है ।

प्र०—अहो भगवन ! शर्करप्रभा पृथ्वी के कितने भेद कहे हैं ?

उ०—अहो गौतम ! शर्करप्रभा पृथ्वी एक प्रकार की है, यो नीचे की सातवी पृथ्वी तक जानना ।

प्र०—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी मे कितने नरकावास कहे हैं ?

उ०—अहो गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी मे तीस लाख नरकावास कहे हैं । यो शर्करप्रभा मे पचीस लाख, बालुकप्रभा मे १५ लाख, पकप्रभा मे दस लाख, धूम्रप्रभा मे तीन लाख, तम प्रभा मे एक लाख, नरकावास मे पाच कम, और तमस्तम प्रभा में पाच नरकावास हैं । ये अनुत्तर, महालय व महानरकावास है । इन के नाम—काल, महा काल, रौरव, महारौरव और अप्रतिष्ठान प्रत्येक पृथ्वी नीचे घनोदधि आदि का सद्भाव है या नही इस का प्रश्न करते हैं ।

प्र०—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी नीचे पिण्ड भूत पानी का समूह रूप घनोदधि, पिण्ड भूत वायु का समूह रूप घनवात, विरल परिणाम को प्राप्त वायु के समूह रूप तनुवात और शुद्ध आकाश रूप अवकाशान्तर हैं क्या ?

उ०—हा गौतम ! ऐसे ही है, यों सातवी पृथ्वी तक जानना ।

प्र०—अहो भगवन ! रत्नप्रभा पृथ्वी सम्बन्धी जो खरकाण्ड है, उस का जाडपना कितना है ?

उ०—अहो गौतम ! इस का जाडपना १६ हजार योजन का है ।

प्र—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का रत्न काड कितना जाडा है ?

उ०—अहो गौतम ! एक हजार योजन का जाडपना है । यों रिष्ट पर्यंत कहना ।

सुन्दर पृथ्वी का भूमि भाग है । यही खरकाड है, तत्पश्चात् दूसरा पकबहुल काड है, अर्थात् इस मे कीचड व कचरा बहुत होता है। तीसरा अपबहुल्य काड, अर्थात् इस मे पानी की बहुलता बहुत है ।

प्र०—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के खरकाण्ड के कितने, भेद कहे है ?

उ०—अहो गौतम ! इस के सोलह भेद कहे हैं। तद्यथा—रत्न काण्ड, वज्र काण्ड, वैडूय काण्ड लोहिताक्ष काण्ड, मसारगल्ल काण्ड, सौगन्धिक काण्ड, ज्योति रत्न काड, अजन काण्ड, अजन पुलाक काड रजत काड, जातरूप काड, अक काण्ड और रिष्ट काड, ये सोलह भेद खर काड के हुए।

प्र०—रत्नप्रभा पृथ्वी में पहला रत्न काड कितने प्रकार का है ?

उ०—अहो गौतम ! रत्न काड का एक ही आकार कहा है, यो रिष्ट काड पर्यन्त सब का जानना ।

प्र०—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के पक बहुल काड के कितने भेद हैं ?

उ०—अहो गौतम ! वह एक ही प्रकार का है।

प्र०—अहो भगवन ! अपबहुल काड के कितने भेद कहे हैं ?

उ०—अहो गौतम ! उस का एक ही भेद कहा है ।

प्र०—अहो भगवन ! शर्करप्रभा पृथ्वी के कितने भेद कहे हैं ?

उ०—अहो गौतम ! शर्करप्रभा पृथ्वी एक प्रकार की है, यो नीचे की सातवी पृथ्वी तक जानना।

प्र०—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी मे कितने नरकावास कहे हैं ?

उ०—अहो गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी मे तीस लाख नरकावास कहे हैं। यों शर्करप्रभा मे पचीस लाख, वालुकप्रभा में १५ लाख, पकप्रभा में दस लाख, धूम्रप्रभा मे तीन लाख, तम प्रभा मे एक लाख, नरकावास मे पाच कम, और तमस्तम प्रभा में पाच नरकावास हैं। ये अनुत्तर, महालय व महानरकावास है। इन के नाम—काल, महा काल, रौरव, महारौरव और अप्रतिष्ठान प्रत्येक पृथ्वी नीचे घनोदधि आदि का सद्भाव है या नही इस का प्रश्न करते हैं।

प्र०—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी नीचे पिण्ड भूत पानी का समूह रूप घनोदधि, पिण्ड भूत वायु का समूह रूप घनवात, विरल परिणाम को प्राप्त वायु के समूह रूप तनुवात और शुद्ध आकाश रूप अवकाशान्तर हैं क्या ?

उ०—हा गौतम ! ऐसे ही है, यों सातवी पृथ्वी तक जानना।

प्र०—अहो भगवन ! रत्नप्रभा पृथ्वी सम्बन्धी जो खरकाण्ड है, उस का जाडपना कितना है ?

उ०—अहो गौतम ! इस का जाडपना १६ हजार योजन का है।

प्र—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का रत्न काड कितना जाडा है ?

उ०—अहो गौतम ! एक हजार योजन का जाडपना है। यों रिष्ट पर्यंत कहना।

प्र०—अहो भगवन ! रत्नप्रभा पृथ्वी के पकबहुल काड की कितनी मोटाई है ?

उ०—अहो गौतम ! इसका चौरासी हजार योजन का जाडपना है।

प्र०—अहो भगवन् ! अपबहुलय काड की जाडाई कितनी हैं ?

उ०—अहो गौतम ! ४० हजार योजन का जाडपना है।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का घनोदधि कितना जाडा है ?

उ०—अहो गौतम ! २० हजार योजन का घनोदधि जाडा है।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का घनवात कितना जाडा है ?

उ०—अहो गौतम ! असख्यात हजार योजन का जाडा है। ऐसे ही तनुवात व आकाशान्तर का जानना ।

प्र०—अहो भगवन् ! शर्करप्रभा पृथ्वी का घनोदधि कितना जाडा है।

उ०—अहो गौतम ! बीस हजार योजन का जाडा है।

प्र०—अहो भगवन् ! शर्करप्रभा पृथ्वी का घनवात कितना जाडा कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! असस्यात हजार योजन का है। ऐसे ही तनुवात व आकाशातर का जानना और ऐसे ही तमस्तम पृथ्वी पर्यन्त कहना।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का पिंड एक लाख ४० हजार योजन का है। उसके विभाग करते हुए उनके द्रव्य

किस वर्ण से काले, नीले, पीले, लाल व शुक्ल गध से सुरभि गध वाले व दुरभि गध वाले हैं। रस से तिक्त, कटुक, कषाय, अबिल व मधुर हैं। स्पर्श से कर्कश मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, व रूक्ष स्पर्श वाले हैं। सस्थान से और परिमडल वर्तुल, त्र्यस, चौरस व, लबगोल है और क्या वे परस्पर बधे हुए, परस्पर स्पर्श हुए, परस्पर अवगाहे हुए, परस्पर स्नेह से लगे हुए व परस्पर सबध करके क्या रहे हुए है ?

उ०—हा गौतम! वैसे ही हैं। ऐसे ही खर काण्ड १६ हजार योजन का हैं। उसका प्रश्न करना और उसके द्रव्य भी वैसे ही यावत् परस्पर बधे हुए हैं। ऐसे ही रिष्ट काण्ड पर्यन्त कहना। इसी तरह रत्नप्रभा पृथ्वी का चौरासी हजार योजन का पकबहुल काड का जानना और ४० हजार योजन का अपबहुल काड का जानना। रत्नप्रभा पृथ्वी का २० हजार योजन का घनोदधि असख्यात हजार योजन का घनवात, तनुवात व आकाशातर जानना।

प्र०—अहो भगवन! शर्कर प्रभा पृथ्वी का एक लाख २६ हजार योजन का पृथ्वी पिंड है। उसके विभाग करते हुए उनके द्रव्य वर्ण से काले, नीले पीले, लाल व सफेद यावत् परस्पर सबध करके क्या रहे हुए हैं ?

उ०—हा गौतम! वैसे ही रहे हुए हैं। ऐसे ही शर्करप्रभा पृथ्वी के २० हजार योजन का घनोदधि, असख्यात हजार योजन का घनवात, तनुवात व आकाशातर का जानना और ऐसे ही सातवी तमस्तम पृथ्वी पर्यत कहना।

प्र०—अहो भगवन! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का सस्थान कैसा है ?

उ०—अहो गौतम ! इसका सस्थान झालर के आकार का है। अर्थात् विस्तीर्ण वलयाकार है ।

प्र०—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का खर काण्ड का सस्थान कौन सा है ?

उ०—अहो गौतम ! झालर का सस्थान है।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का सस्थान कैसा है ?

उ०—अहो गौतम ! झालर का है। ऐसे हो रिष्ट पर्यन्त सोलह प्रकार के रत्नो का है । पकबहुल, अपवहुल काण्ड का, घनोदधि घनवात, तनुवात, व आकाशान्तर सबका झालर का सस्थान जानना।

प्र०—अहो भगवन् ! शर्करप्रभा पृथ्वी का क्या सस्थान कहा है ?

उ०—झालर का सस्थान कहा है। ऐसे ही शर्करप्रभा पृथ्वी के घनोदधि यावत् आकाशातर पर्यन्त कहना । जैसे शर्करप्रभा की वक्तव्यता कही, वैसे ही सातवी तमस्तम प्रभा पर्यन्त सब का कहना ।

प्र०—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के पूर्व दिशा के अन्त से कितना दूर लोक का अन्त कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! बारह योजन जावे तब अलोक रहा हुआ है। ऐसे ही दक्षिण, पश्चिम व उत्तर दिशा से अलोक दूर जानना।

प्र०—अहो भगवन ! शर्करप्रभा पृथ्वी के पूर्व दिशा के चरिमांत से कितने दूर लोकान्त कहा है।

उ०—एक योजन के तीन भाग करे, वैसा एक भाग कम तेरह योजन लोकान्त कहा है। ऐसे ही चारो दिशा का जानना।

प्र०—अहो भगवन् । बालुकप्रभा की पूर्व दिशा से लोकान्त कितना दूर कहा है।

उ०—अहो गौतम ! तेरह योजन व एक योजन का तीसरा भाग इतना दूर लोकान्त रहा है। ऐसे ही बालुप्रभा नारकी की शेष तीनो दिशा का जानना । पकप्रभा की चारो दिशाओ से चौदह योजन पर लोकान्त रहा हुआ है । धूमप्रभा की चारो दिशाओ से पन्द्रह योजन मे एक योजन का तीसरा भाग कम का लोकात रहा हुआ है। तम प्रभा की चारो दिशाओ से पन्द्रह योजन व एक योजन का तीसरा भाग लोकान्त रहा हुआ है। और सातवी तमस्तम प्रभा से सोलह योजन व एक 'योजन का लोकात रहा हुआ है।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा की पूर्व दिशा के चरमात के कितने भेद हैं ?

उ०—अहो गौतम ! इसके तीन भेद कहे हैं, घनोदधि वलय, घनवात वलय व तनुवात वलय।

प्र०—अहो भगवन ! रत्नप्रभा पृथ्वी की दक्षिण दिशा के चरमात के कितने भेद कहे हैं ?

उ०—अहो गौतम ! तीन भेद कहे हैं। घनोदधि, घनवात व तनुवात। ऐसे ही सब पृथ्वी की चारों दिशाओ मे तीन-२ वलय रहे हुए है। यो सातवी पृथ्वी का जानना।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधि की जाडाई कितनी कही है।

उ०—अहो गौतम ! छ योजन की जाडाई कही गई है।

प्र०—अहो भगवन ! शर्करप्रभा पृथ्वी के घनोदधि वलय की कितनी जाडाई कही है ?

उ०—अहो गौतम ! छ योजन व एक योजन का तीसरा भाग की जाडाई कही है। बालुकप्रभा की पृच्छा ? सात योजन व तीसरा भाग अधिक की तम प्रभा का तीसरा भाग कम आठ योजन की व तमस्तम प्रभा की घनोदधि की आठ योजन की जाडाई है।

प्र०—अहो भगवन् ! इम रत्नप्रभा पृथ्वी के घनवात वलय की कितनी जडाई कही है ?

उ०—अहो गौतम ! चार योजन की जाडाई है। शर्करप्रभा की पृच्छा, पाच यीजन मे एक कोश कम की जाडाई कही है। ऐसे ही बालुकप्रभा की पाच योजन की, पकप्रभा की पाच योजन व एक कोश, धूमप्रभा की पाच योजन दो कोश, तम प्रभा की एक कोश कम छ योजन और तमस्तम प्रभा की छ योजन की जाडाई कही है।

प्र०—अहो भगवन् ! रत्नप्रभा के तनुवात बलयाकार की कितनी जाडाई कही है।

उ०—अहो गौतम ! रत्नप्रभा की छ कोश की जाडाई कही है। ऐसे शकरप्रभा के तनुवात को छ कोश तीसरा भाग, बालुक प्रभा मे तीमरा भाग कम सात कोश, पकप्रभा के तनुवात की सात कोश की जाडाई, धूमप्रभा मे सात कोश व तीसरा भाग, तम प्रभा मे तीमरा भाग कम आठ कोश और तमस्तम प्रभा मे आठ कोश की जाडाई जानना।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधि वलय छ

योजन का जाडा है। उसको क्षेत्र छेद से छेद देने से उनके द्रव्यो से वर्ण काले यावत परस्पर सबन्ध वाले क्या हैं ?

उ०—हा गौतम ! वैसे ही हैं ?

यो सातवी नरक तक सब का कहना, इसमे जहा-जहा जितना जाडपना है उतना जानना।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का धनवात साढे चार योजन का जाडा है। उसका छेद करने से उसके द्रव्य वर्ण से काले वण वाले यावत् परस्पर सबन्ध वाले हैं क्या ?

उ०—हा गौतम ! वैसे ही हैं। यो सातवी नरक के धनवात का कहना, परन्तु जितना २ जाडपना है उनको इतना जाडपना कहना। ऐसे ही तनुवात वलय का सातवी पृथ्वी तक कहना।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधि का सस्थान कैसा है ?

उ०—अहो गौतम ! वर्तुल वलयाकार सस्थान है। यह घनोदधि रत्नप्रभा पृथ्वी के चारों तरफ घेर कर रहा हुआ है। ऐसे ही सातो पृथ्वी के घनोदधि का जानना।

प्र०—इस रत्नप्रभा पृथ्वी का घनवात का सस्थान कौन सा है ?

उ०—अहो गौतम ! वर्तुल वलयाकार रहा हुआ है। इससे रत्न प्रभा पृथ्वी का घनोदधि चारो तरफ घेराया हुआ रहा है। यो सातो पृथ्वी के घनवात का जानना।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का तनुवात वलय का क्या सस्थान कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! वर्तुल वलयाकार सस्थान कहा है। इससे रत्न प्रभा पृथ्वी का घनवात चारो तरफ से घेराया हुआ है। यो सातो पृथ्वी के तनुवात का जानना।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा, की लम्बाई-चौडाई कितना कही है ?

उ०—अहो गौतम ! असख्यात योजन की लबाई चौडाई कही है।

प्र०—अहो भगवन् ! इसकी परिधि कितनी कही है ?

उ०—अहो गौतम ! असख्यात योजन की परिधि कही है। सातवी पृथ्वी तक जानना।

प्र०—यह रत्नप्रभा पृथ्वी अन्त मे, मध्य मे आदि सब स्थान जाडाई मे क्या समान है ?

उ०—हा गौतम ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी अन्त मे, मध्य मे वगैरह सब स्थान जाडाई मे समान है। ऐसे ही सातो पृथ्वी का जानना।

प्र०—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पथ्वी मे सब जीवो सामान्यपना से काल के अनुक्रम से पहले उत्पन्न हुए अथवा सब जीवो समकाल मे उत्पन्न हुए ?

उ०—अहो गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी मे काल के अनुक्रम से जीव उत्पन्न हुए। परन्तु समकाल मे सब जीव उत्पन्न नही हुए। क्योकि सब जीव एक ही काल मे रत्नप्रभा नारकी मे उत्पन्न हो जायें तो अन्य देवनारकी के भेद का अभाव होवे। यो सातवी नारकी तक जानना।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का सब जीव ने काल के अनुक्रम से पहिले परित्याग किया अथवा समकाल मे क्या परित्याग किया ?

उ०—अहो गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का कालक्रम से सब जीवो ने परित्याग किया। परन्तु एक समय मे सब जीवो ने परित्याग नही किया। ऐसे ही सातवी पृथ्वी तक जानना।

प्र०—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी मे कालानुक्रम से क्या सब पुद्‌गलो ने प्रवेश किया अथवा सम काल मे सब पुद्‌गलो ने प्रवेश किया ?

उ०—अहो गौतम ! कालानुक्रम से रत्नप्रभा पृथ्वी मे पुदगलो ने प्रवेश किया ? । परन्तु एक काल में सब पुद्‌गलो ने प्रवेश नही किया। यो सातवी पृथ्वी तक कहना।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्न प्रभा पृथ्वी का कालानुक्रम से सब पुदगलो ने क्या त्याग किया अथवा एक काल मे सब पुद्‌गलो ने त्याग किया ?

उ०—अहो गौतम ! इस रत्नप्रभा का कालानुक्रम से पहिले सब पुद्‌गलो ने त्याग किया। परन्तु एक समय मे सब पुद्‌गलो का त्याग किया नही, यूँ सातवी पृथ्वी तक जानना।

प्र०—अहो भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी क्या शाश्वत है या आशाश्वत है ?

उ०—अहो गौतम ! स्यात् शाश्वत है स्यात् आशाश्वत है।

प्र०—अहो भगवन् ! ऐसे कैसे होवे ?

उ०—अहो गौतम ! द्रव्य आदि शाश्वत हैं और वर्ण, गंध, रस व स्पर्श पर्यंव आदि आशाश्वत हैं इससे अहो गौतम ऐसा कहा गया है कि रत्नप्रभा पृथ्वी स्यात् शाश्वत व स्यात् आशाश्वत् है। यूं सातवी पृथ्वी तक कहना है।

प्र०—अहो भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी काल से कितनी है ?

उ०—अहो गौतम ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी अतीत काल मे नही थी वैसा नही। वर्तमान काल मे नही है वैसा नही और भविष्य काल मे नही होगी वैसा भी नही, परन्तु यह अतीत काल मे थी, वर्तमान काल मे है और भविष्य काल मे होगी, यह ध्रुव, नित्य, शाश्वत, अक्षय, अव्यय अवस्थित है। यो सातवी पृथ्वी तक कहना है।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरिमात से नीचे के चरिमात तक अवाध से कितना अन्तर कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन का अन्तर कहा है।

प्र०—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरिमात से खरकाण्ड के नीचे के परिमात तक कितना अन्तर कहा ह ?

उ०—अहो गौतम ! सोलह हजार योजन का अन्तर कहा है।

प्र०—अहो भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरिमात से रत्न काण्ड के नीचे के चरिमात तक मे कितना अन्तर कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! एक हजार योजन का अन्तर कहा है।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरिमात से वज्र रत्न काण्ड के ऊपर के चरिमात तक कितना अन्तर कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! एक हजार योजन का अन्तर कहा है ।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा के पृथ्वी नीचे के चरिमात से वज्र रत्न काण्ड के नीचे के चरिमात से कितना अन्तर कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! यो हजार योजन का अन्नर कहा है । यो रिष्ट पर्यन्त सब कहना । रिष्ट के ऊपर के चरिमात तक मे पन्द्रह हजार योजन, नीचे के चरिमात मे सोलह हजार योजन का अन्तर कहा है ।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरिमात तक मे अबाधा से कितना अन्तर कहा ?

उ०—अहो गौतम ! सोलह हजार योजन का अन्तर कहा है । इसके नीचे के चरिमात तक मे एक लाख का अबाधा से अन्तर कहा है । अपबहुल काण्ड के ऊपर के चरमात तक मे एक लाख योजन का अन्तर कहा है और इसके नीचे के चरमात तक एक लाख अस्सी हजार योजन का अन्तर कहा है । घनोदधि के ऊपर के चरमात तक दो लाख योजन का अन्तर कहा है । रत्नप्रभा पृथ्वी के उपर के चरमात से घनवात के उपर के चरमात तक एक लाख योजन का अन्तर होता है और इसके नीचे के चरमात तक असख्यात लाख योजन का अन्तर जानना । रत्नप्रभा पृथ्वी के चरमात से तनुवात के ऊपर के असख्यात लाख योजन का अन्तर है, और नीचे के चरमात तक भी असख्यात लाख योजन का अन्तर है ।

उ०—अहो गौतम ! द्रव्य आदि शाश्वत हैं और वर्ण, गंध, रस व स्पर्श पर्यव आदि आशाश्वत हैं इससे अहो गौतम ऐसा कहा गया है कि रत्नप्रभा पृथ्वी स्यात् शाश्वत व स्यात आशाश्वत् है। यू सातवी पृथ्वी तक कहना है।

प्र०—अहो भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी काल से कितनी है ?

उ०—अहो गौतम ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी अतीत काल मे नही थी वैसा नही। वर्तमान काल मे नही हे वैसा नही और भविष्य काल मे नही होगी वैसा भी नही, परन्तु यह अतीत काल मे थी, वर्तमान काल मे है और भविष्य काल मे होगी, यह ध्रुव, नित्य, शाश्वत, अक्षय, अव्यय अवस्थित है। यो सातवी पृथ्वी तक कहना है।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरिमात से नीचे के चरिमात तक अवाध से कितना अन्तर कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन का अन्तर कहा है।

प्र०—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरिमात से खरकाण्ड के नीचे के परिमात तक कितना अन्तर कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! सोलह हजार योजन का अन्तर कहा है।

प्र०—अहो भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरिमात से रत्न काण्ड के नीचे के चरिमात तक मे कितना अन्तर कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! एक हजार योजन का अन्तर कहा है।

प्र०—अहो भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरिमात से वज्र रत्न काण्ड के ऊपर के चरिमात तक कितना अन्तर कहा है?

उ०—अहो गौतम! एक हजार योजन का अन्तर कहा है।

प्र०—अहो भगवन्! इस रत्नप्रभा के पृथ्वी नीचे के चरिमात से वज्र रत्न काण्ड के नीचे के चरिमात से कितना अन्तर कहा है?

उ०—अहो गौतम! यो हजार योजन का अन्तर कहा है। यो रिष्ट पर्यन्त सब कहना। रिष्ट के ऊपर के चरिमात तक मे पन्द्रह हजार योजन, नीचे के चरिमात मे सोलह हजार योजन का अन्तर कहा है।

प्र०—अहो भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरिमात तक मे अबाधा से कितना अन्तर कहा?

उ०—अहो गौतम! सोलह हजार योजन का अन्तर कहा है। इसके नीचे के चरिमात तक मे एक लाख का अबाधा से अन्तर कहा है। अपबहुल काण्ड के ऊपर के चरमात तक में एक लाख योजन का अन्तर कहा है और इसके नीचे के चरमात तक एक लाख अस्सी हजार योजन का अन्तर कहा है। घनोदधि के ऊपर के चरमात तक दो लाख योजन का अन्तर कहा है। रत्नप्रभा पृथ्वी के उपर के चरमात से घनवात के उपर के चरमात तक एक लाख योजन का अन्तर होता है और इसके नीचे के चरमात तक असख्यात लाख योजन का अन्तर जानना। रत्नप्रभा पृथ्वी के चरमात से तनुवात के ऊपर के असख्यात लाख योजन का अन्तर है, और नीचे के चरमात तक भी असख्यात लाख योजन का अन्तर है।

ऐसे ही आकाशातर का जानना।

प्र०—अहो भगवन ! शर्करप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमात से ना। के चरमात तक कितना अन्तर है ?

उ०—अहो गौतम ! एक लाख बत्तीस हजार योजन का अन्तर कहा है।

प्र०—अहो भगवन ! शर्करप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमात से घनोदधि के नीचे के चरमात तक कितना अन्तर कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! एक लाख बावन हजार योजन का अन्तर है। घनवात व आकाशातर का असख्यात लाख योजन का अन्तर है। यो सातवी तमस्तम प्रभा पृथ्वी तक जानना, परन्तु पृथ्वी की जितनी जाडाई होवे उसमे घनोदधि अपनी-अपनी बुद्धि से भी लाना।

इस तरह बालुप्रभा का एक लाख अडतालीस हजार योजन का अन्तर है। पकप्रभा का एक लाख चालीस हजार योजन का अन्तर, धूमप्रभा का एक लाख अडतीस हजार योजन का अन्तर, तम प्रभा का एक लाख छतीस हजार योजन का अन्तर तमस्तम प्रभा का एक लाख और अठ्ठाईस हजार योजन का अन्तर जानना।

प्र०—अहो भगवन् ! सातवी पृथ्वी के ऊपर के चरमात से उसके आकाशातर के नीचे के चरमात तक मे अबाधा से कितना अन्तर कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! असख्यात हजार योजन का अबाधा से अन्तर कहा है।

प्र०—अहो भगवन ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी दूसरी शर्करप्रभा पृथ्वी की अपेक्षा जाडाई से क्या तुल्य, विशेषाधिक व सख्यातगुनी है और विस्तार मे भी क्या तुल्य, विशेष, हीन या सख्यातगुण हीन है ?

उ०—अहो गौतम ! शर्करप्रभा पृथ्वी की अपेक्षा रत्नप्रभा पृथ्वी जाडाई मे तुल्य नही है, विशेषाधिक है और सख्यातगुनी नही है और विस्तार मे तुल्य नही है, विशेषहीन है, व सख्यातगुण हीन नही है ऐसे ही तीसरी की अपेक्षा दूसरी का कहना चौथी की अपेक्षा तीसरी का कहना, छठी की अपेक्षा पाचवी का कहना, और सातवी की अपेक्षा छठी का कहना। यह नारकी का पहला उद्देश्य सपूण हुआ।

प्र०—अहो भगवन् ! पृथ्विया कितनी कही हैं ?

उ०—अहो गौतम ! सात पृथ्विया कही है। तद्यथा रत्नप्रभा यावत् सातवी तमस्तम प्रभा।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का पिण्ड एक लाख अस्सी हजार योजन का है। उसमे से ऊपर कितना अवगाहा हुआ है, नीचे कितना बचा हुआ है, बीच मे कितना रहा हुआ है और नरकवास कहे हैं ?

उ०—अहो गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का पिण्ड एक लाख अस्सी हजार योजन का है। उसमे से एक हजार योजन ऊपर छोड कर एक योजन नीचे छोडकर शेष एक लाख अठत्तर हजार योजन की बीच मे पाताल है। इसमे तीस लाख नरकावास कहे हैं। वे नरकावास अन्दर से वर्तुलाकार, बाहर से

चौकोन यावत नरक मे अशुभ वेदना कही। सब पाठ को अपेक्षा अवालिकागत गोल त्रिकोन चौरस व पुष्पावकीर्ण अर्थात् विविध प्रकार से सस्थानवाले हैं नीचे का पृथ्वीतल क्षुर जैसा कठोर है। वहा सदैव अधकार है, मात्र तीर्थंकर के जन्म व दीक्षा काल मे प्रकाश होता है। तीर्थंकर के कल्याण समय मे प्रकाश होता है। वहा चन्द्र सूर्यादि ज्योतिषी का प्रकाश नही है। रुधिर, मास, राध वगैरह के कीचड से नरक का भूमी तल लीपा हुआ है। नरकवास बहुत बीभत्स है, अत्यन्त दुर्गन्धमय है। मृत पशु के कलेवर से भी अधिक दुर्गन्धमय है। काली अग्नि की ज्वालाए निकलती हैं धगधगती कपोत वर्ण जैसे अग्नि की काति हुई है। वहा का गन्ध, रस व स्पर्श अति दु सह व अशुभ है, यह आसाता वेदना सब नरक मे कही हुई है, सब पृथ्वी मे एक हजार ऊपर व एक हजार नीचे उनके जाडपने मे से निकालकर शेष रहे सो पोलार समझना और पहले कहे सो नरकावास जानना। यो नीचे की सातवी पृथ्वी मे बडा स्थान वाले नरकावास हैं। सब मे प्रश्नोतर रत्नप्रभा जैसे ही करना यावत् सातवी पथ्वी मे कपोत वर्ण जैसा अग्नि जानना।

प्र०—अहो भगवन्! इस रत्नप्रभा पथ्वी मे रहे हुए तीस लाख नरकावास का कौन सा सस्थान कहा है?

उ०—अहो गौतम! नरकावास दो प्रकार के कहे हैं (क) आविलकागत, अर्थात श्रेणी मे रहे हुए और आवलिका से बाहिर उसमे आठो दिशी से श्रेणी मे रहे हुए नरकावास के तीन भेद कहे हैं।

(१) वर्तुलाकार (२) त्रिकून, (३) चौकून और जो आवलिका से बाहिर आठों दिशा से पृथक रहे, उन के संस्थान विविध प्रकार के कहे हैं। जिनके नाम कहते हैं, अपकोष्ठ लोहे का गोला जैसे, पाक स्थान, रसोई गृह के आकार से, कडाई बडा कडाइया स्थाली, पकाने की हंडी पिहडग (जिसमें बहुत मनुष्यो के लिए धान्य पकाया जावे) काला कुटज, मुरज, मृदग, नदीमुख सुघोष पडह, भेरी, झलरी, कुडवक व घरिया इत्यादि अनेक प्रकार के संस्थान वाले हैं। यो छठी तम प्रभा पृथ्वी पर्यन्त कहना।

प्र०—तमस्तम प्रभा पृथ्वी में नरकावास के संस्थान कौन से कहे है ?

उ०—अहो गौतम ! दो प्रकार के कहे हैं। वर्तुलाकार व त्रिकूनाकार हैं। सातवी पृथ्वी में पाँच नरकावास आवलिकागत है जिसमें-अप्रतिष्ठान नरकावास गोल है और शेष चार नरकावास त्रिकोन आकार वाले हैं। अब नरकावास का जाडापना कहते हैं।

प्र०—अहो भगवन ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास का जाडापना कितना कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! तीन हजार योजन का जाडपना कहा है। उस मे एक हजार योजन नीचे की पीठिका है। एक हजार योजना की पोलार है और एक हजार योजन ऊपर का मुख संकुचित है, यो सब मिला कर तीन हजार योजन का जानना। ऐसे ही सातवी पृथ्वी तक के नरकावास का जानना।

प्र०—अहो भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वी में नरकावास, लम्बाई, चौडाई व परिधि मे कितने कहे हैं ?

उ०—अहो गौतम! कितनेक सख्यात योजन के लम्बे चौडे हैं कितनेक असख्यात योजन के लम्बे चौडे हैं। जो सख्यात योजन के लम्बे चौडे हैं, उनकी परिधि सख्यात योजन की है और जो असख्यात योजन के लम्बे चौडे हैं, उनकी परिधि असख्यात योजन की है। यो तम पृथ्वी पर्यन्त कहना सातवी पृथ्वी की पृच्छा। अहो गौतम! इस के दो भेद कहे हैं। कितनेक सख्यात योजन के विस्तार वाले हैं और कितनेक असख्यात योजन के विस्तार वाले हैं। उस में सख्यात योजन का विस्तार व सख्यात योजन की परिधि वाला अप्रतिष्ठान नरकावास है, उसकी लम्बाई चौडाई एक लाख योजन की है और तीन लाख सोलह हजार दो सो सतावीस योजन तीन गाउ है एक सौ अठाइस धनुष्य, साढे तेरह अगुल से कुछ अधिक की परिधि है और जो असख्यात योजन के विस्तार वाले चार नरकावास हैं वे असख्यात योजन के लम्बे चौडे हैं और असख्यात योजन की परिधि है।

प्र०—अहो भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावास कैसे वर्ण वाले कहे हैं ?

उ०—काले, कालाभास वाले, गम्भीर लोमहर्ष वाले भयकर, त्रास उत्पन्न करने वाले व परम कृष्ण वर्ण वाले कहे हैं। यो सातवी नरक तक सब का कहना।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में नरकावास कैसी गन्ध वाले कहे हैं ?

उ०—जैसे सर्प का मृत कलेवर, गाय का, कुत्ते का, मार्जार, का मनुष्य का, भैंस का, चूहे का, घोडे का, विगद का, हाथी का, सिंह का, व्याघ्र का, चीते का मृत कलेवर जो कि बहुत काल से पड़ा हुआ हो, विनष्ट हो जिसका मांस सड़ कर बिगड गया हो जिस में बहुत कीडे पड गये हों अशुचि वमन के क्लेश परिणाम का कारन वाला बीभत्स जैसी देखने में आवे दुर्गन्ध वैसी नारकी की दुर्गन्ध है, क्या यह अर्थ योग्य नही है। अहो गौतम ! नरकावास में इस से भी अधिक अनिष्ट अकत यावत् अमनामकारी दुर्गन्ध है। यो सातवी पृथ्वी तक कहना। अब स्पर्श का प्रश्न करते हैं।

प्र०—अहो भगवन् ! नरकावास का स्पर्श कैसा कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! जैसे असिपत्र, क्षुरपत्र, कदब वीरिका, भाले की अनी, तीर का अग्रभाग, सूलि का अग्रभाग सूई के समूह का अग्रभाग कवच की फली का अग्रभाग, वृश्चिक का काटा, धूम्र रहित अग्नि, अग्नि की ज्वाला, अग्नि के कन, अग्नि से भिन्न २ बनी हुई ज्वाला, जला हुआ कोयला और शुद्धाग्नि इस प्रकार का क्या नरक का स्पर्श है। अहो गौतम ! इससे भी अनिष्टतर यावत् अमनामतर स्पर्श नरकावास का कहा है। पहिले नरकावास का विस्तार बतलाया था इसके विशेष विवरण के लिए उपमा से जानने के लिए प्रश्न करते हैं।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में नरकावास कितने बडे कहे हैं ?

उ०—अहो गौतम ! सब द्वीप समुद्र के मध्य में रहा हुआ सब से छोटा तेल से तला हुआ पूडे समान तथा चक्र जैसा गोल अथवा कमल की कर्णिका अथवा प्रतिपूर्ण चन्द्र के आकार जैसा गोल एक लक्ष योजन का लम्बा चौडा यावत् तीन लक्ष योजन से कुछ अधिक परिधि वाला यह जम्बूद्वीप है। ऐसे जम्बूद्वीप मे कोई महर्धिक यावत् महानुभाव देवता तीन चुटकी बजावे उतने समय में इक्कीस वार परिभ्रमण करके आ जावे ऐसी त्वरित, चपल, प्रचण्ड शीघ्र तथा उद्धत जयवत दिव्य देव गति से जाते हुए जघन्य एक दिन दो दिन तीन दिन उत्कृष्ट छ मास में कितनेक नरकवास उलघन कर सकते हैं और कितनेक का उलघन नहीं कर सकते । अहो गौतम ! नरकावास इतने बडे कहे हैं यो सातवी पृथ्वी तक जानना । उसमें कितनेक नरकावास का उलघन करते हैं और कितेतक का उलघन नही करते । अप्रतिष्ठान नरकावास एक लक्ष योजन का है उसका उलघन कर सकते हैं परन्तु जो चार नरकावास असख्यात योजन के हैं, उसका उलघन नही कर सकते ।

प्र०—अहो भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वी मे नरकावास किस वस्तु मय है ?

उ०—अहो गौतम ! सब वज्र रत्नमय है उसमें बहुत खर बादर पृथ्वी काया के जीव पुद्गल आते हैं और जाते हैं परन्तु उनका सस्थान एक ही रूप में सदैव रहता है, इस लिए द्रव्य से

शाश्वत है वर्ण, गंध, रस, व स्पर्श पर्यव से आशाश्वत है यो सातवीं पृथ्वी तक जानना ।

प्र०—अहो भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वी में नारकी कहा से उत्पन्न होते हैं ?

क्या असज्ञी में से उत्पन्न होते हैं ? परिसर्प अर्थात् गोधा, नकुलादि मे से उत्पन्न होते हैं पक्षी मे से आकर उत्पन्न होते हैं। चतुष्पद में से आकार उत्पन्न होते हैं स्त्री में से आकार उत्पन्न होते हैं मत्स्य में से उत्पन्न होते है अथवा मनुष्य में से उत्पन्न होते हैं ?

उ०—असज्ञी से यावत् मत्स्य व मनुष्य में से उत्पन्न होते हैं इसका खुलासा निम्नोक्त गाथा से कहते हैं। असज्ञी पचेन्द्रिय पहली नरक में जावे, सरिसर्प गोधा, नकुल प्रमुख दूसरी नरक तक जाते हैं। पक्षी तीसरी तक जाते हैं। सिंह व्याघ्र चतुष्पद आदि चौथी नरक तक जाते हैं। उरपरिसर्प पांचवी नरक तक जाते है। स्त्री छठी नरक तक जाती है। और मत्स्य व मनुष्य सातवी नरक में जाते हैं यावत् सातवीं पृथ्वी में असज्ञी तिर्यंच पचेंद्रिय यावत् स्त्री उत्पन्न नही होते हैं परन्तु मत्स्य व मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

प्र०—अहो भगवन् ! एक समय मे रत्नप्रभा पृथ्वी में कितने नारकी उत्पन्न होते हैं ?

उ०—अहो गौतम ! जघन्य एक दो तीन उत्कृष्ट सख्यात असख्यात उत्पन्न होते हैं ऐसे ही सातवी पृथ्वी तक जानना ।

प्र०—अहो भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकी असख्यात कहे हैं उसमें से समय २ एक २ कर निकालते कितने समय में सब नारकी खाली हो जावे ?

उ०—अहो गौतम ! नारकी असख्यात कहे हैं । उसमें से प्रति समय एक-एक नारकी जीव निकालते असख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणी पर्यन्त निकाले तथापि नरकावास नारकी जीवो से खाली होवे नहीं व होवे गे भी नही, यों सातवी पृथ्वी तक जानना

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में नारकी शरीर की अवगाहना कितनी बडी कही है ?

उ०—अहो गौतम ! उसके शरीर की अवगाहना दो प्रकार की कही हैं । भवधारणीय व उत्तर वैक्रिय उसमें जो भवधारणीय अवगाहना है वह जघन्य अ गुल का असख्यातवा भाग उत्कृष्ट सात धनुष्य तीन हाथ व छ अ गुल का है और उत्तर वैक्रिय जघन्य अगुल का सख्यातवा भाग उत्कृष्ट पन्नरह धनुष्य व अढाई हाथ की है। शर्करप्रभा पृथ्वी की भवधारणीय शरीर की अवगाहना जघन्य अ गुल का असख्यातवा भाग उत्कृष्ट पन्नरह धनुष्य अढाई हाथ की है और उत्तर वैक्रिय जघन्य अ गुल का स ख्यातवा भाग उत्कृष्ट एकतीस धनुष्य एक हाथ तीसरी वालुप्रभा की भव धारनिय शरीर की अवगाहना जघन्य अ गुल का असख्यातवा भाग उत्कृष्ट एकतीस धनुष्य एक हाथ उत्तर वैक्रिय जघन्य अ गुल का स ख्यातवा भाग उत्कृष्ट बासठ धनुष्य दो हाथ, ऐसे ही सातवीं नरक पर्यन्त सब की भवधारनीय जघन्य अ गुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट पकप्रभा की भवधारनीय ६२ धनुष्य दो हाथ उत्तर वैक्रय, १२५ धनुष्य, धूमप्रभा की भव धारनीय १२५ धनुष्य उत्तर वैक्रय ५०० धनुष्य, तमस्तम

प्रभा की भवधारनीय ५०० धनुष्य व उत्तर वैक्रय १००० धनुष्य की, अब पाथडे की संख्या कहते हैं। पहले नरक के १३ दूसरी में ११ तीसरी में ६ चौथी में ७ पाचवीं में ५ छटी मे तीन सातवी में एक पाथडा है। यू सब मिलाकर ४६ पाथडे हुए। इनमें सब की भवधारणीय अवगाहना जघन्य अंगुल का असख्यातवा भाग उत्तर वैक्रय जघन्य अगुल का सख्यातवां भाग इसमें पहली नरक पाथडे की उत्कृष्ट अवगाहना तीन हाथ की। इसके आगे प्रत्येक पाथडे ५६ बढाते जाना जिससे दूसरे पाथडे में एक धनुष्य एक हाथ साडे ८ अगुल की तीसरे पाथडे में एक धनुष्य तीन हाथ व १७ अगुल की चौथे पाथडे मे दो धनुष्य दो हाथ डेड अगूल की पाचवें पाथडे में तीन धनुष्य दश अगूल की छठे पाथडे मे तीन धनुष्य दो हाथ १८ ॥ अगूल की सातवें पाथडे मे चार धनुष्य एक हाथ व तीन अगुल की आठवें पाथडे में चार धनुष्य तीन हाथ व ११ ॥ अगुल की नवमें पाथडे में पाच धनुष्य एक हाथ बीस अगुल दशवे पाथडे में ६ धनुष्य ४ ॥ अगुल की ग्यारवे पाथडे में ६ धनुष्य २ हाथ १३ अगुल की बाहरवे पाथडे मे ७ धनुष्य २१ ॥ अगुल और तेरवे पाथडे में ७ धनुष्य तीन हाथ ६ अगुल की यह उत्कृष्ठ भवधारणीय अवगाहना हुई उत्तर वैक्रय स्थान से दुगनी जानना। इसी तरह नरक में आगे पाथडे के नारकी की अवगाहना जानना। जिस नरक में जितनी अवगाहना का अधिकपना होवे उसका उस नरक के पाथडे से भाग देना जो भाग आवे, वह प्रत्येक पाथडे में बढ़ाना।

प्र०—अहो भगवन् ! नारकी के शरीर का सघयन क्या कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! छ सघयन में से एक भी नही हैं क्योंकि उनके शरीर मे हड्डियो, शिरा व स्नायु नही हैं परन्तु जो पुद्गल अनिष्ट, अकातकारी यावत अमनोज्ञ होते हैं वे रूप से भयकर शरीरपने परिणमते हैं । यों सातवी पृथ्वी तक जानना ।

प्र०—अहो भगवन् ! नारकी को कौन सा सस्थान कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! सस्थान के दो भेद कहे हैं भवधारणीय व उत्तर वैक्रिय, दोनो शरीर का हुण्ड सस्थान कहा है । यों सातवी पृथ्वी तक कहना ।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में रहे हुए नारकी का कैसा वण कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! काला कालाभय यावत परम कृष्ण वर्ण कहा हैं । यो सातों पृथ्वी के नरको तक जानना ।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकी के शरीर का कैसी गन्ध कही है ?

उ०—अहो गौतम ! जैसे मृत सर्प का कलेवर इत्यादि जैसा पहले नरक स्थान की गन्ध कही है वैसा हो जानना । यो सातों पृथ्वी के नारकी का जानना ।

प्र०—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकी का कैसा स्पर्श कहा है ?

उ०—अहो गौतम ! फटी हुई कान्ति रहित अति कठिन दग्ध छाया व बहुत छिद्रावली चमडी उन नेरियो की कही है।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकी कैसे पुद्गल उच्छवासपने ग्रहण करते हैं ?

उ०—अहो गौतम ! जो अनिष्ट, यावत् अमनाम पुद्गल हैं उनको उच्छवासपने ग्रहन करते हैं यो सातो पृथ्वी के नारकी के उच्छवास का कहना। ऐसे ही आहार का कहना ।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकी को कितना लेश्याए कही ?

उ०—अहो गौतम ! एक कापोत लेश्या, ऐसे ही शर्करप्रभा में एक कापोत लेश्या जानना । बालुकप्रभा का प्रश्न—उत्तर दो लेश्या, कपोत लेश्या व नील लेश्या उसमें कपोत लेश्या वाले अधिक और नील लेश्या वाले थोड़े, पंकप्रभा में एक, नील लेश्या धूमप्रभा में दो लेश्या कृष्ण व नील लेश्या उसमे कृष्ण लेश्या वाले थोडे है और नील लेश्या वाले अधिक, तम प्रभा में एक कृष्ण लेश्या, औरतमस्तमः प्रभा मे एक परम कृष्ण लेश्या वाले जानना ।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में नारकी क्या समदृष्टि हैं मिथ्यादृष्टि हैं या समिथ्यादृष्टि है ?

उ०—अहो गौतम ! समदृष्टि भी हैं, मिथ्या दृष्टि भी है और सम-मिथ्या दृष्टि भी है । यो सातवी पृथ्वी तक कहना ।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में क्या नारक ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

उ०—अहो गौतम ! ज्ञानी व अज्ञानी दोनो ही हैं । जो ज्ञानी हैं उन को नियमा से तीन ज्ञान होते हैं । तद्यथा आभिनिबोधिक ज्ञानी श्रुतज्ञानी व अवधि ज्ञानी हैं और जो अज्ञानी हैं उनमें से कितनेक को दो अज्ञान है मति अज्ञान व श्रुत अज्ञान, असज्ञी पचेन्द्रिय मर कर उत्पन्न होते हैं । उस आश्रिय जानना और कितनेक को मति श्रुत अज्ञान व विभग ज्ञान होता है। शेष सब ज्ञानी या अज्ञानी हैं। यो सातवी पृथ्वी का कहना ।

प्र०—अहो भगवन ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में नारकी क्या मनयोगी, वचनयोगी व कायायोगी है ?

उ०—अहो गौतम ! मनयोगी, वचनयोगी कायायोगी या तीन योग हैं, यो सातवी पृथ्वी तक कहना।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी मे नारकी क्या साकारोपयुक्त या अनाकारोपयुक्त हैं ?

उ०—अहो गौतम ! साकारोपयुक्त व अनाकारोप्पयुक्त दोनों ही है यों सातो नरकों का जानना ।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा नरक मे अवधि ज्ञान वाले नारकी कितना क्षेत्र जानते व देखते हैं ?

उ०—अहो गौतम ! जघन्य ३ गाऊ उत्कृष्ट ४ गाऊ शर्करप्रभा के नारकी जघन्य तीन गाऊ उत्कृष्ट साढे तीन गाऊ बालुक प्रभा के जघन्य अढाई गाऊ उत्कृष्ट तीन गाऊ पकप्रभा के नारकी जघन्य दो गाऊ उत्कृष्ट अढाई गाऊ और तमस्तमः-प्रभा के नारकी जघन्य आधा गाऊ उत्कृष्ट एक गाऊ ।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकी को कितनी समुद्घात कही है।

उ०—अहो गौतम ! चार समुद्घात कही हैं जिनका नाम वेदना, कषाय मारणांतिक व वैक्रय यो सातवी पृथ्वी तक जानना।

प्र०—अहो भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकी कैसी क्षुधा पिपासा अनुभवते हुए विचरते है ?

उ०—अहो गौतम ! असत्य कल्पना से सब समुद्र का पानी अथवा सब पुद्गल उन के मुख में डाल देने से वे तृप्त नहीं होते हैं तृषा रहित नही होते । अहो गौतम ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकी ऐसी क्षुधा पिपासा का अनुभव करते हैं, यो सातवीं पृथ्वी तक जानना । अब वैक्रिय शरीर की वक्तव्यता कहते है ।

प्र०—अहो भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकी क्या एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं ?

उ०—अहो गौतम ! एक रूप की विकुर्वणा करने में भी समर्थ हैं और अनेक रूप की विकुवंणा करनेमे भी समर्थन है जब एक रूप की विकुर्वना करते है तब एक बड़ा मुद्गर, मुसडी, करवत, खड्ग, शक्ति, हल, गदा, मूशल, चक्र, बाण, भाला, तोमर, त्रिशूल लकुट, भिडीमाल के रूप बनाने में समर्थ हैं और बहुत रूप वैक्रय करते हुये बहुत मुद्गर यावत् भिडिवाल के रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं वे सख्यात रूप बना सकते हैं। परन्तु असंख्यात नही बना सकते अपने शरीर के साथ सम्बन्ध वाले बना सकते हैं। परन्तु सम्बन्ध बिना के नही बना सकते है। अपने रूप जैसे

बनावें परन्तु असदृश रूप बनावे नही ऐसे रूप की विकुर्वणा करके परस्पर काया की घात करते हुए वेदना की उदीरणा करे, उज्जवल, विपुल, प्रगाढ, कर्कश, कटुक, कठोर, निष्ठुर, चण्ड, तीव्र दु खकारी, विषम व अतुल्य सहन नही हो सके ऐसी वेदना अनुभवते हुये विचरते है। ऐसे ही पाचवी धूमप्रभा तक जानना छठी व सातवी पृथ्वी में नारकी लाल कुथु रूप वज्रमय, चोचवाले गोमय के कीडे समान रूप की विकुर्वणा करके परस्पर एक दूसरे में प्रवेश करे, निकले आरोहण करे घोडे जैसे के समान आक्रमण करे। एक-एक के शरीर का भक्षण करते हुए पूर्वोक्त उज्ज्वल यावत नही सहन हो सके ऐसी वेदना भोगवते हुये विचरते है।

प्र०—अहो भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वी में नारकी क्या शीत वेदना वेदते है या शीतोष्ण वेदना वेदते हैं?

उ०—अहो गौतम! शीत व शीतोष्ण वेदना नही वेदते हैं उष्ण वेदना वेदते हैं। ऐसे ही शर्करप्रभा तथा बालुकप्रभा का जानना। पकप्रभा की पृच्छा, अहो गौतम! शीत वेदना या उष्ण वेदना यों दो प्रकार की वेदते हैं। परन्तु शीतोष्ण वेदना नही वेदते। इसमें उष्ण वेदना वेदने वाले बहुत हैं और शीत वेदना वेदने वाले थोडे हैं। धूमप्रभा की पृच्छा, अहो गौतम! शीत व ऊष्ण वेदना वेदते है। परन्तु शीतोष्ण वेदना नही वेदते हैं। इसमे शीत वेदना वेदने वाले बहुत जीव हैं उष्ण वेदना वाले थोडे जीव हैं। तम प्रभा की पृच्छा? अहो गौतम! शीत वेदना वेदते हैं परन्तु उष्ण व शीतोष्ण वेदना नही वेदते,

ऐसे ही सातवी पृथ्वी मे कहना । परन्तु इस मे शीत वेदना का कहना ।

प्र०—अहो भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकी कैसा नरक भव का अनुभव करते हैं ?

उ०—अहो गौतम ! वे वहा सदैव भयभीत बने हुये निरन्तर शका शील, स्वत ही त्रास पाते हुये परमाधामी से निरन्तर त्रास पाये हुये निरन्तर उद्वेग वाले निरन्तर उपद्रव वाले किंचिन्मात्र सुख को नही प्राप्त करते हुये अशुद्ध, अतुल, अनुबद्ध भव का अनुभव करते हुये विचरते है ऐसे ही सातवी नरक पर्यन्त जानना । सातवी पृथ्वी मे अनुत्तर महान महा आसय वाले पाच नरकावास कहे हैं । जिनके नाम काल, महाकाल रोरुय, महा रोरुय अप्रिष्ठान इन पाच नरकावास में पाच महान पुरुषो, अनुत्तर प्राणीहिंसा करने वाले क्रूर अध्यवसाय से काल के अवसर में काल करके उत्पन्न हुये है जिनके नाम—(१) जमदग्नि का पुत्र राम, जिसको परशुराम कहते है । (२) छाया पुत्र दाडाल, वसुराया उपरिचर, आठवा सम्भूम चक्रवर्ती (५) बारहवा ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती चूलनी माता का पुत्र ये पाचो महा कृष्ण वर्ण वाले यावत् परम कृष्ण वर्ण वाले नारका पने उत्पन्न हुए । वे वहा उज्ज्वल यावत नही सहन कर सके वैसी वेदना का अनुभव करते हैं ।

प्र०—अहो भगवन ! नारकी कैसी उष्ण वेदना वेदते है ?

उ०—अहो गौतम ! जैसे कोई तरुण बलवत युवान, अल्प, रोगवाला हाथ का अग्रभाग जिसका स्थिर है हाथ, पाव, पीठ, पार्श्व व जाघ जिसकी दृढ है अतिशय गोल, सकन्धवाला चमडे के

गोटिके घण मुख्यादिक्र से घडे हुये गात्रो वाला अन्तरिक उत्साह वीर्य से युक्त दृढ हृदय वाला, वेताड वृक्ष का युगल होवे वैसा समान सरल, लम्बे पुष्ट दो हाथो वाला अति शीघ्र गति व परिश्रम मे समर्थ, किसी वस्तु को मर्दन करने में समर्थ, बहुत र कला मे निपुण विलम्ब रहित कार्य का करने वाला, अच्छी तरह क्रिया का करने वाला अनुसधान करने में निपुण ऐसा लोहकार का पुत्र एक छोटे घडे जैसा लोहे के गोला अग्नि में तपाकर उसे घन से कूट कर वारवार बनावें यो एक दिन दो दिन यावत् पन्द्रह दिन तक उस गोले को अग्नि में तपाकर घन से घडे पीछे उसे अच्छी तरह ठन्डा किये बाद उसे सडासी से पकड कर ऊष्ण वेदना वाले नारकी के शरीर में रखे, रखते समय ऐसा विचार करें कि मात्र मेषोन्मेष (पलक) में उस गोले को शरीर में से निकाल लू गा । परन्तु इतने मे उस गोले को उस शरीर की अग्नि से मक्खन जैसा गलता पिघलता हुआ भस्म होता हुआ देखे परन्तु उसे ऐसा ही नीकाल सके नही नरक में ऐसी उष्ण, वेदना कही है। यह दृष्टान्त असद्भाव कल्पित है। इसके विशेष खलासा के लिए दूसरा दृष्टान्त कहते हैं। जैसे साठ वर्ष की वय वाला तरुण प्रथम शरत्काल में अथवा चरिम व ग्रीष्म ऋतु मे उष्णता से तप्त बना हुआ तृषा से पीडित बना हुआ दावाग्नि की ज्वाला से हणाया हुआ आतुर अथवा दुर्बल व थका हुआ मदोन्मत्त, सू डादड से पानी पीने का इच्छित ऐसा हस्ती एक चार कोने वाली विषमपना रहित अनुक्रम से नीची गई, अच्छा, गभीर व शीतल जलवाला पानी से ढके हुये कमल पत्रो वा कमल नाल वाली बहुत सूर्य विकासीं, चद्र विकासी वैसे ही अन्य कमल सुगधिक कमल श्वेत कमल,

लाल कमल, शाम कमल, सो पखुडियो का कमल, केसर प्रधान कमल भ्रमर जाति ने भावें ऐसे कमल वाली स्वच्छ स्फटिक समान निर्मल पानी से परिपूर्ण अतिशय मत्स्य कच्छ से भरी हुई अनेक पक्षियो के समूह व उसके युगल से गु जायमान बनी हुई बावडो को देख कर उसमें बैठें उसमें अपनी दाह तृषा शात करें। वहा रहे हुए क्षुल्लक प्रमुख तृण विशेष उससे अपनी क्षुधा शात करें जलपान से परिताप भी शात करें क्षुधा तृषा शात होने से सुख पूर्वक निद्रा लेवे प्रचला करें और उससे शरीर स्वस्थ करें, ऊहापोह करने रूप मति प्राप्त करें बाह्य व अतर से शीतल होवे निर्वृति से साता सुख की प्राप्ति करे अग्नि से उत्पन्न हुआ जो दाह उस रहित बन सुख भोगता हुआ विचरे अहो गौतम ! ऐसे ही असद्भाव कल्पना से उष्ण वेदना भोगते हुओ नरक के नेरियो को नरक से निकाल कर इस मनुष्य लोक में लोह को गालने का महा भुषा नामक पात्र, ताम्बा गालने कर पात्र, सीसा गालने का पात्र, चादी गालने का पात्र, स्वंण गलाने का पात्र कुभकार का निभाडा (भट्ठा) हो ईटे पकाने का स्थान कुमहार की अग्नि, तुषा की अग्नि, इंट पकाने की अग्नि, कवेलु पकाने की अग्नि, लोहर तपाने की अग्नि, इक्षुरस का गुड बनाने की अग्नि हुडी की अग्नि सौंडक की अग्नि नडाग्नि, तिल की अग्नि, तीलसरों की अग्नि इत्यादि सब ज्योति भूत बनी हुई किंशुक पुष्प समान रक्त बनी हुई हजारों झाले जिसमें से नीकलती हो वैसे हजारो ज्वालाए नीकालती

हुई हजारो अगार फैलाती हुई ऐसी धगधगायमान अग्नि देख कर उसमे नरक के जीव प्रवेश करें तो वे जीवो वहाँ ऊष्णता, तृषा, क्षुधा, ज्वर, दाद, शात करे और इससे वहा निन्द्रा लेवें। साता प्राप्त करें रति, धृति, मति प्राप्त करें। उसको शीत शीतभूत मानते हुए सुख पूर्वक रहे अहो गौतम इससे भी अनिष्टतर उष्ण वेदना नारकी के जीव वेदते हैं।

प्र०—अहो भगवन्! शीत वेदना वेदते हुए नारकी कैसी शीत वेदना वेदते हैं?

उ०—अहो गौतम जैसे कोई युवावस्था वाला, बलवत यावत सब कला में निपुण लोहकार एक लोहे का गोला को अग्नि में में डाल कर कूटे, एक दिन, दो दिन या तीन दिन यावत एक मास पर्यंत कूटे फिर उसे लोहे की सडासी से पकड कर शीत वेदना वाले नारकी के शरीर पर इस विचार से रखे कि मेषोन्मेष मात्र मे पीछा ले लू गा परन्तु वह तत्काल बिखर जाने से उसे पीछा लेने को समर्थ नही हो सकता अथवा जैसे साठ वर्ष वाला हस्ती यावत वावडी के पास जाकर सुख पूर्वक रहे वैसे ही शीत वेदनावाले नारकी को वहा से उठाकर इस मनुष्य लोक में हिम, हिम का समूह हिम के पडल तुषार, तुषारपु ज, हिम के कूठ हिम कूट के समूह में प्रवेश करावे तो वहा उसकी शीत तृषा क्षुधा ज्वर शात होवे इससे वहा सुख पूर्वक निन्द्रा लेवे यावत् ऊष्ण

भूत बनकर सुख भोगता हुआ विचरे "अहो गौतम ! इससे भी अनिष्ट तर शीत वेदना नारकी के जीव भोगते हुए विचरते हैं ।

अहो भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वी दूसरी शर्करप्रभा से मोटाई में बडी है क्या ? चौडाई मे छोटी है क्या ? हा गौतम ! वैसा ही है । क्योंकि रत्नप्रभा पृथ्वी का एक लाख अस्सी हजार योजन का पिंड है और शर्करप्रभा का एक लाख बत्तीस हजार योजन का पृथ्वी पिंड है और रत्नप्रभा पृथ्वी एक रज्जू की लम्बी चौडी है और शर्करप्रभा पृथ्वी दो रज्जु की लम्बी चौडी है इस अनुक्रम से छटी पृथ्वी तक कहना यावत् सातवीं पृथ्वीकी अपेक्षा छटी पृथ्वी लम्बाई चौडाई मे सब से छोटी है ।

प्र०—अहो भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावास में एक एक नरकावास सब प्राण, भूत, जीव, सत्त्व पृथ्वीकाया पने यावत् वनस्पति काया पने क्या पहले उत्पन्न हुए हैं ?

उ०—हा गौतम ! अनेक बार व अनन्त बार जीव उत्पन्न हुए हैं यो सातवी पृथ्वी काया पने यावत् वनस्पति काया पने का जानना ! और अब सातवी नरक मे जो उत्पन्न होते हैं । उनका कथन करते हैं । जैसे वासुदेव, जलचर मत्स्य, माण्डलिक राजा, आदि जो कि महा आरंभ करने वाले हैं । अर्थात् कसाई आदि ऐसे पुरुष सातवी नरक में जाते है । सब नारकी स्थिति में जीव असाता से उत्पन्न होते हैं और असाता से नरक भव का

त्याग करते हैं। कोइक नारकी जीव अपने पूर्व भव के परिचित देवके प्रसगसे सुख पावे अथवा समदृष्टि होवे तो, अध्यावासाय से भी सुख की प्राप्ति करें, अथवा कर्म के अनुभव से अर्थात् तीर्थंकर के जन्म दीक्षा, केवल ज्ञान इत्यादि कल्याण में प्रकाश होने से नारकी सुख का अनुभव करते है। नेरीये के मृत्युकाल मे तेजस और कार्माण शरीर बिना जो वैक्रय शरीर है वह सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से बिखर कर हजारो भेद रूपवन बिखर जाता है। नारकी जघन्य एक गाउ उत्कृष्ट पाच सो गाउ ऊंचें उछलते हैं। नारकी दु ख से भयभीत बने हुये है वह सहस्रागम वेदना सहित है। नरक के जीवो को चक्षु चमकावे जितना भी सुख नही है वे दु ख मे ही रहे हुये अहर्निश पचते रहते है। अती शीत, अति ऊष्णतता अति तृषा, अति क्षुधा, अति भय, ये सब प्रकार के दु ख नारकी जीवो को सदैव बने रहते हैं। अब उत्तर वैक्रय का काल मान कहते हैं नेरिय का वैक्रय किया हुआ अतमु हुर्त तक रहता है। तिर्यंच व मनुष्य का वैक्रय किया हुआ चार अतर्मुहुर्त तक रहता है। और देवता का किया हुआ वैक्रय पन्द्रह दिन तक रहता है।

उत्तराध्यन सूत्र

स्वर्ग

देवा चउविहा वुत्ता, ते मे कित्तयओ सुण।
भोमिज्ज वाणमन्तर, जोइस वेमाणिया तहा ॥

अर्थ—देवो के चार भेद हैं—भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, और वैमानिक।

दसहा उ भवणवासी, अट्ठहा वणचारिणो।
पचविहा जोइसिया, दुविहा वेमाणिया तहा ॥

अर्थ—दस प्रकार के भवनपति, आठ प्रकार के व्यन्तर, पाच प्रकार के ज्योतिषी और दो प्रकार के वैमानिक देव हैं।

असुरा नाग सुवण्णा, विज्जू अग्गी य आहिया।
दीवोदही दिसावाया, थणिया भवणवासिणो ॥

अर्थ—असुर कुमार, नाग कुमार, सुवर्णकुमार विद्युत कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधि कुमार, दिशाकुमार, वायुकुमार, और स्तनितकुमार—ये दस प्रकार के भवनपति देव हैं।

पिसाय भूया जक्खाय, रक्खसा किन्नरा य किंपुरिसा।
महोरगा य गन्धव्वा, अट्ठविहा वाणमन्तरा ॥

अर्थ—पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग और गन्धर्व-ये आठ प्रकार के "वाणव्यन्तर" देव हैं ।

चन्दा सूरा य नक्खत्ता, गहा तारागणा तहा ।
ठिया विचारिणो चेव, पचहा जोइसालया ॥

अर्थ—चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह और तारागण ये पाच प्रकार के ज्योतिषी देव, मनुष्य लोक में चलते रहते हैं और मनुष्य लोक के बाहिर स्थिर हैं ।

वेमाणिया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिय ।
कप्पोवगा य बोधव्वा, कप्पाइया तहेव य ।

वैमानिक देव दो प्रकार के है— कल्पोत्पन्न और कल्पातीत ।

कप्पोवगा य बारसहा सोहम्मिसाणगा तहा ।
सणंकुमारमाहिंदा, बभलोगा य लतगा ।
महासुक्का सहस्सारा, आणया पाणया तहा ।
आरणा अच्चुया चेव इइ कप्पोवगा सुरा ॥

अर्थ—कल्पोत्पन्न वैमानिक देव बारह प्रकार के हैं, यथा–सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत आरणक और अच्युत ।

कप्पाइया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया ।
गोविज्जाऽणुत्तरा चेव, गे विज्जा नवहा तहिं ॥

अर्थ—कल्पातीत देव दो प्रकार के कहे है—ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानवासी । ग्रैवेयक के नौ प्रकार हैं।

हेट्ठिमा हेट्ठिमा चेव, हेट्ठिमा मज्झिमा तहा।
हेट्ठिमा उवरिमा चेव, मज्झिमा हेट्ठिमा तहा ।
मज्झिमा मज्झिमा चेव, मज्झिमा उवरिमा तहा।
उवरिमा हेट्ठिमा चेव, उवरिमा मज्झिमा तहा ।
उवरिमा उवरिमा चेव, इइ गोविज्जगा सुरा ।

अर्थ—१. नीचे की त्रिक के नीचे के देवलोक, २ नीचे की त्रिक के मध्य के देवलोक, ३ नीचे की त्रिक के ऊपर के देवलोक, ४ मध्य की त्रिक के नीचे के देवलोक, ५ मध्य की त्रिक के मध्य के देवलोक, ६ मध्य की त्रिक के ऊपर के देवलोक, ७. ऊपर की त्रिक के नीचे के देवलोक, ८ ऊपर की त्रिक के मध्य के देवलोक, ९ और ऊपर की त्रिक के ऊपर के देवलोक—ये नौ भेद ग्रैवेयक देवों के हैं।

विजया वेजयंता य, जयता अपराजिया ।
सव्वट्ठसिद्धगा चेव, पचहाणुत्तरा सुरा ।
इइ वेमाणिया एए, णेगहा एवमायओ ।

अर्थ—विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध, ये पाच प्रकार अनुत्तरविमान वासी देवो के हैं। इस प्रकार

वैमानिक देवो के अनेक प्रकार हैं।

लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे वि वियाहिया ।
इत्तो कालविभाग तु तेसिं वोच्छ चउव्विह ॥

अर्थ—ये सभी देव, लोक के एक भाग मे रहते हैं। काल की अपेक्षा इन के चार भेद हैं।

सतइ पप्पणाईया, अपज्जवसिया विय ।
ठिइ पडुच्च साईया सपज्जवसिया विय ॥

अर्थ—प्रवाह की अपेक्षा अनादि अपर्यवसित और स्थिति की अपेक्षा सादि सपर्यवसित हैं।

साहिय सागर इक्क, उक्कोसेण ठिई भवे ।
भोमेज्जाण जहन्नेणं, दसवाससहस्तिया ॥

अर्थ—भवनपतियो की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक सागरोपम की हैं।

पलिओवममेग तु उक्कोसेण ठिई भवे ।
वतराण जहन्नेण, दसवाससहस्सिया ॥

अर्थ—व्यन्तरो की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट एक पल्योपम की है।

पलिओवममेग तु, वासलक्खेण साहिय ।
पलिओवम अट्ठभागो, जोइसेसु जहन्निया ॥

अर्थ—ज्योतिषी देवो की स्थिति ज० पल्योपम के आठवे भाग और उ० लाख वर्ष अधिक पल्योपम है।

दो चेव सागराइ, उक्कोसेण वियाहिया ।
सोहम्मम्मि जहन्नेण, एग च पलिओवग ॥

अर्थ—सौधर्म देवो की स्थिति ज० एक पल्योपम की और उ० दो सागरोपम की है।

सागरा साहिया दुन्नि, उक्कोसेण वियाहिया।
ईसाणम्मि जहन्नेण, साहिय पलिओवम ॥

अर्थ—ईशान देवो की स्थिति ज० एक पल्योपम से कुछ अधिक और उ० दो सागरोपम से अधिक है।

सागराणि य सत्तेव, उक्कोसेण ठिई भवे ।
सणकुमारे जहन्नेण, दुन्नि ऊ सागरोवमा ॥

अर्थ—सनत्कुमार देवो की स्थिति ज० दो सागरोपम और उ० सात सागरोपम की है।

साहिया सागरा सत्त, उक्कोसेण ठिई भवे ।
माहिंदम्मि जहन्नेण, साहिया दोन्नि सागरा ॥

अर्थ—माहेन्द्र देवो की स्थिति ज० दो सागरोपम से अधिक और उ० सात सागरोपम से अधिक है।

दस चेव सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
बम्भलोए जहन्नेणं, सत्त उ सागरोवमा॥

अर्थ—ब्रह्मलोक के देवो की ज० ७ सागरोपम उ० १० सागरोपम।

चउद्दस उ सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
लतगम्मि जहन्नेण दस उ सागरोवमा॥

अर्थ—लान्तक देवो की ज० १० सा० उ० १४ सा०।

सत्तरस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
महासुक्के जहन्नेण, चउद्दस सागरोवमा॥

अर्थ—महाशुक्र देवो की ज० १४ सा० उ० १७ सा०।

अट्ठारस सागराई, उक्कोसेण ठिई भवे।
सहस्सारे जहन्नेण, सत्तरस सागरोवमा॥

अर्थ—सहस्रार देवो की ज० १७ सा० उ० १८ सा०।

सागरा अउणवीस तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
आणयम्मि जहन्नेण, अट्ठारस सागरोवमा॥

अर्थ—आणत देवो की ज० १८ सा० उ० १९ सा०।

वीस तु सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
पाणयम्मि जहन्नेण, सागरा अउणवीसई॥

अर्थ—प्राणत देवो की ज० १९ सा० उ० २० सा०।

सागरा इक्कवीस तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
आरणम्मि जहन्नेणं, वीसइ सागरोवमा ॥

अर्थ—आरण देवो की ज० २० सा० उ० २१ सा०।

बावीस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
अच्चुयम्मि जहन्नेण, सागरा इक्कवीसई ॥

अर्थ—अच्युत देवो की ज० २१ सा० उ० २२ सा०।

तेवीस सागराइं उक्कोसेण ठिई भवे।
पढमम्मि जहन्नेण, बावीस सागरोवमा ॥

अर्थ—प्रथम ग्रैवेयक के देवलोक के देवो की स्थिति ज० २२ सागरोपम की और उ० २३ सागरोपम की है।

चउवीस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
विइयम्मि जहन्नेण, तेवीस सागरोवमा ॥

अर्थ—दूसरे ग्रैवेयक के देवो की ज० २३ सा० उ० २४ सा०।

पणवीस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
तइयम्मि जहन्नेण, चउवीस सागरोवमा ॥

अर्थ—तीसरे ग्रैवेयक के देवो की ज० २४ सा० उ० २५ सा० की।

छव्वीस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
चउत्थम्मि जहन्नेण, सागरा पणवीसइ ॥

अर्थ—चौथे ग्रैवेयक के देवों की ज० २५ सा०, उ० २६ सा० की।

सागरा सत्तवीस तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
पचमम्मि जहन्नेण सागरा उ छवीसई ।

अर्थ—पाचवें ग्रैवेयक के देवों की ज० २६ सा० उ० २७ सा० की।

सागरा अट्ठवीस तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
छट्ठम्मि जहन्नेण, सागरा सत्तवीसई ॥

अर्थ—छठे ग्रैवेयक के देवो की ज० २७ सा० उ० २८ सा० की।

सागरा अउणतीस तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
सत्तमम्मि जहन्नेण, सागरा अट्ठवीसई ॥

अर्थ—सातवें ग्रै० के देवो की ज० २८ सा०, उ० २९ सा० की।

तीस तु सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
अट्ठमम्मि जहन्नेण, सागरा अउणतीसइ ॥

अर्थ—आठवें ग्रै० के देवो की ज० २९ सा० उ० ३० सा० की।

सागरा इक्कतीस तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
नवमम्मि जहन्नेण तीसई सागरोपमा ॥

अर्थ—नौवें ग्रै० के देवो की ज० ३० सा० उ० ३१ सागर की।

तैत्तीस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
चउसपि विजयाईसु, जहन्ना एक्कतीसई।

अर्थ—विजयादि चार अनुत्तर विमानो की स्थिति ज० ३१ सा० उ० ३३ सागरोपम की है।

अजहन्नमणुक्कोस, तेत्तीस सागरोवमा।
महाविमाणसव्वट्ठे, ठिई एसा वियाहिया॥

अर्थ—सर्वार्थसिद्ध महाविमान के देवो की स्थिति जघन्य और उत्कृष्टता से रहित मात्र तैतीस सागरोपम की है।

जा चेव उ आउठिई, देवाण तु वियाहिया।
सा तेसिं कायठिई, जहन्नुक्कोसिया भवे।

अर्थ—देवो की जो आयु स्थिति है, वही भव स्थिति है।

अणतकालमुक्कोस, अन्तोमुहुत्तं जहन्नय।
विजढम्मि सए काए, देवाण हुज्ज अतरं॥

अर्थ—पुन देवकाय प्राप्त करने का अन्तर ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० अनन्त काल का होता है।

अनतकालमुक्कोस, वासपुहुत्त जहन्नयं।
आणयाईण देवाण, गेविज्जाण तु अतर॥

छब्बीस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे ।
चउत्थम्मि जहन्नेण, सागरा पणवीसइ ॥

अर्थ—चौथे ग्रैवेयक के देवों की ज० २५ सा०, उ० २६ सा० की ।

सागरा सत्तवीस तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।
पचमम्मि जहन्नेण, सागरा उ छवीसई ॥

अर्थ—पाचवे ग्रैवेयक के देवो की ज० २६ सा० उ० २७ सा० की ।

सागरा अट्ठवीस तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।
छट्ठम्मि जहन्नेण, सागरा सत्तवीसई ॥

अर्थ—छठे ग्रैवेयक के देवो की ज० २७ सा० उ० २८ सा० की ।

सागरा अउणतीस तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।
सत्तमम्मि जहन्नेण, सागरा अट्ठवीसई ॥

अर्थ—सातवें ग्रै० के देवो की ज० २८ सा०, उ० २९ सा० की ।

तीस तु सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे ।
अट्ठमम्मि जहन्नेण, सागरा अउणतीसइ ॥

अर्थ—आठवें ग्रै० के देवो की ज० २९ सा० उ० ३० सा० की ।

सागरा इक्कतीस तु, उक्कोसेण ठिई भवे ।
नवमम्भि जहन्नेण तीसई सागरोपमा ॥

अर्थ—नौवें ग्रै० के देवो की ज० ३० सा० ,उ० ३१ सागर की।

तैंत्तीस सागराइ, उक्कोसेण ठिई भवे।
चउसपि विजयाईसु, जहन्ना एक्कतीसई।

अर्थ—विजयादि चार अनुत्तर विमानो की स्थिति ज० ३१ सा० उ० ३३ सागरोपम की है।

अजहन्नमणुक्कोस, तेत्तीस सागरोवमा।
महाविमाणसव्वट्ठे, ठिई एसा वियाहिया॥

अर्थ—सर्वार्थसिद्ध महाविमान के देवो की स्थिति जघन्य और उत्कृष्टता से रहित मात्र तैंतीस सागरोपम की है।

जा चेव उ आउठिई, देवाण तु वियाहिया।
सा तेसिं कायठिई, जहन्नुक्कोसिया भवे।

अर्थ—देवो की जो आयु स्थिति है, वही भव स्थिति है।

अणतकालमुक्कोस, अन्तोमुहुत्तं जहन्नय।
विजढम्मि सए काए, देवाण हुज्ज अतरं॥

अर्थ—पुन देवकाय प्राप्त करने का अन्तर ज० अन्तर्मुहूर्त और उ० अनन्त काल का होता है।

अनतकालमुक्कोस, वासपुहुत्तं जहन्नयं।
आणयाईण देवाण, गेविज्जाणं तु अतर॥

अर्थ—आनत आदि देवो का अन्तर काल ज० दो से लगा कर नौ वर्ष, और अनन्तकाल का है।

सखेज्ज सागरूक्कोस, वासपुहुत्तं जहन्नय ।
अणुत्तराण देवाणं अतरेय वियाहिय ॥

अर्थ—अनुत्तर विमानवासी देवो का अन्तर काल ज० दो से लगाकर नौ वर्ष उ० सख्यात सागरोपम का होता है।

एएसि वण्णओ चेव, गधओ रसफासओ ।
सठाणादेसओ व वि, विहाणाइ सहस्सो ॥

अर्थ—इन देवो के वर्ण गध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा हजारो प्रकार होते हैं।

अध्ययन-तृतीय

विसालिसेहिं सीलेहिं, जक्खा उत्तरउत्तरा।
महासुक्का व दिप्पता, मण्णंता अपुणच्चवं ॥

अर्थ—उत्कृष्ट आचार का पालन करने से जीव, उत्तरोत्तर विमानवासी देव होते हैं और सूर्य चन्द्र की तरह प्रकाशमान होते हुए वे मानते है कि हम यहा से नही चवेंगे।

अप्पिया देवकामाण, कामरूवविउव्विणो।
उड्ढं कप्पेसु चिट्ठति पुव्वा वाससयावहु ॥

अर्थ—देव सबधी काम भोगो को प्राप्त हुए और इच्छानुसार रूप बनाने की शक्ति वाले ये देव सैकडो पूर्व वर्षों तक विमानों मे रहते हैं ।

उत्तराइ विमोहाइ जुइमताणु पुव्वसो ।
समाइण्णाइ जक्खेहिं, आवासाइ जससिणो ॥

अर्थ—देवो के आवास उत्तरोत्तर ऊपर रहे हुए हैं, वे आवास स्वल्प मोहवाले द्युतिमान यशस्वी देवो से युक्त हैं ।

दीहाउया इड्ढिमता, समिद्धा कामरूविणो ।
अहुणोववण्णसकासा, भुज्जो अच्चिमालिप्पभा ॥

अर्थ—वे देव, दीर्घ आयुवाले, ऋद्धिमन्त, तेजस्वी, इच्छानुसार रूप बनाने वाले नवीन वर्ण के समान और अनेक सूर्यों जैसी दीप्ति वाले होते हैं ।

देवताओं का अपार अनुपम सुख

जहा कुसग्गे उदग समुद्देण सम मिणे ।
एवं माणुस्सगा कामा, देव कामाण अंतिए ॥
कुसग्गमेत्ता इमे कामा, सन्निरुद्धमि आउए ।
कस्स हेउ पुराकाउ जोगक्खेम न सविदे ॥

अर्थ—जैसे कुशाग्र पर रहा हुआ पानी का बिन्दु समुद्र के पानी से असख्यातवा भाग हीन है, वैसे ही देवताओ के काम भोग के आगे मनुष्यो के काम भोग असख्यातगुने हीन है । कुशाग्र पर

रहे हुए पानी के बिन्दु के समान मनुष्य के काम भोग हैं। तो अतिशय अल्प आयुतम होने पर भी विषय कषाम मे लुब्ध बन कर किस कारण से अज्ञानी मनुष्य जोग और क्षेम नही जानते।

चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र

ता सूरिय चन्दमाण जोतिसिंद जोतिसरायाणो केरिसए कामभोगे पच्चणुभवमाणा विहरति ? गोयमा ! से जहा णामए कतिपुरिसे पढम जोवणट्ठा बलत्थए ॥ पढम जोव्वणट्ठाण बलत्थाए ठाणत्थ चेव भारियत्ताए।

अहो भगवन् ! ज्योतिषी के इन्द्र व ज्योतिषी के राजा चद्र, सूर्य कैसे काम भोग भोगते हुये विचर रहे हैं ? अहो गौतम ! प्रथम यौवनावस्था मे प्राप्त हुआ कोई पुरुष प्रथम यौवनावस्था वाली भार्या के साथ विवाह करके तुरन्त ही धनकी प्राप्ति के लिए प्रदेश गया। वहा सोलह वर्ष पर्यन्त।

सद्धि अचिर विवाह कज्जे अत्थगवेसणताए सोलस-वास विप्पवासिते सेण ततो लद्दट्ठे कत्तिकज्जे अणहे समए पुण विसय णिण्ह हव्वमागते णहाए जाव सरीरे विभूसिए मणुण्ण थालि पाकसिद्ध अट्ठारस वजणाउलं भोयण भुत्ते समाणे तसि तारिस गसि वासघरंसि

अब्भितराओ सचित कम्मे वाहिरउ दूम्मित घट्ठमट्ठे विचितउल्लोय विल्लगतिलेमणिरयण पणासियंधयारे वहुसम-रमणिज्जंभूमिभागे पंचवण्णरस सुरभिमूक्क पुप्फ पुंजोवयारे कलिते कालागरुपवर कुरुदक्क तुतकधूव मघमघात गधूता-भिरामे सुगंधवरगंधिए गधिवट्टिभूए तासि तारिसंगसि सयणिज्जंसि सालिंगण ।

सब अर्थसाधन में विजयवत हुआ किसी प्रकार का विघ्न नही आया इस तरह करके अपने घर आया । आकर स्नान किया, मगलीक कार्य किया, सव अलकार से विभूपित हुआ मनोज्ञ थाल मे पक्वान व अठारह प्रकार के शाक सहित भोजन किया। फिर पुन्यवत के योग्य अन्दर विविध प्रकार के चित्रो वाला बाहिर स्वच्छ करके अनेक प्रकार के चित्रो वाला ऊपर कपडे की छत बाला रत्नजडित भूतल वाला उज्वल उद्योत वाला बहुत रमणीय भूमि भाग मे पचवर्ण रस सहित सुगधित पुष्पो का ढग वाला, कृष्णवर्ण सुगन्धि द्रव्य व कुदरुकादिक धूप से मघमघायमान सुगधित पदार्थो सहित रहने के घर मे पुण्यवन प्राणियो के योग्य ।

वट्टीभूए उभओवि वोयणे दूहओ उणए मज्भयण गभीरए गगापुलिण वालुता उद्दालि सलिसए उवचिते पुग्गलपट्टपडिच्छयणे तिरतिया ताणे रत्ते सुत्तसवुडे सुरम्मे आयणिगसुय वरणवणितुलफासे सुगंधवर कुसुमणतसयणो-वकारिंकसिए तारिसयाए भारियाए सद्धि सिगारागार चारुवेसाए सगय जाव जोवणविलास कलियाए अणुरत्ताए अविरत्ताए मणोणुकुलाए सद्धि इट्ठे सद्दफरस रूवगंधे

पंचविहे माणुसए कामभोगे पच्चभवमाणा विहरेज्जा तिसेणं पुरिसे वितस्सकाल समयसि केरियस साता सोक्खं पच्चजेभवमाणे विहरति ? एतेण समाणाउसो ! तस्सण पुरिसस्स ।

अर्थ—चारो तरफ समान, दोनो बाजु गाल मसूरियें, दोनों बाजु कुच्छ ऊचा, मध्य भाग गभीर, गगा नदी की बालु पानी मे स्वच्छ दिखती है वैसे ही स्वच्छ चादर से चारो तरफ अच्छी तरह ढका हुआ, सुरम्य, वूर वनस्पति समान कोमल सुगधित प्रधान पुष्प समान शैय्या मे श्रृगार के घर समान पावत यौवनव विलासवती व मन को अनुकूल भार्या की साथ इष्ट शब्द रूप गध, रस व स्पर्श यो पाच प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी कामभोग भोगता हुआ विचरता होवे उस पुरुष का समय कैसा सुख होवे । अहो आयुष्यवत श्रमणे ? उस पुरुष के काम भोग से वाणव्यतर के काम भोग अनन्तगुने विशिष्ठतर है ।

कामभोगेहितो वाणमतराण देवाण एतो अणतगुण-विसट्ठतरगाचेव कामभोगा वाणभताण देवाण कामभोगो-हिंतो असुरिंद वज्जियाण भवनवासिण देवाण एतो अणत गुण विसिट्ठत्तरगा चेव कामभोगा असुरिंदवज्जियांण भवन जाव भोगहिंतो असुरकुमाराण एतो अणतगुणा असुरकुमार देवाण कामभोगोहिंतो गहगणणक्खत्ततारारुवाण जोईसियाणदेवाण एतो अणतगुणा विसिट्ठत्तरगाचेव कामभोगा गहगणगक्खवत्त जाव काम भोगोंहितो ता चदिम सरियाण जोतसिंदा जोतिसरण्णा एरिसे कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरति ?

भावार्थ—वाणव्यन्तर के काम भोगो से असुरेन्द्र को छोडकर शेप भवनवासी देवो के कामभोग अनन्त गुणे विशिष्ठतर हैं, अन्य भवनवासी के कामभोगो से असुर कुमार के कामभोग अनतगुने विशिष्ठतर हैं, ग्रह, नक्षत्र व ताराओ के कामभोगो से ज्योतिषी का राजा, ज्योतिषी का इन्द्र चन्द्र सूर्य के कामभोग अनतगुने विशिष्ठतर भोगते हुए विचरते हैं।

आश्चर्यकारी शक्ति

सूत्र :—अत्थिणं भंते ? अव्वाबाहा देवा ? हंता अत्थि ॥ से केणट्ठेणं ? एव वुच्चइ-अव्वाबाहा देवा ? अव्वाबाहा देवा गोयमा ?

पभूण एगमेगे अव्वाबाहे देवे एगमेगस्स पुरिसस्स एगमेगंसि अच्छिपत्तंसि दिव्वं देविढि, दिवजुतिं, दिव्वं बत्तसइविहं नट्टविहिं उवदेसत्तएणो चेवणं तस्स पुरिसस्स किंचि आवाहवा वावाहंवा उप्पाएइ छविच्छेदंवा करे, एसुहुमं चणं उवदसेज्जा ॥ से तेणट्ठेणं जाव अव्वाबाहा ॥

भावार्थ—अहो भगवन् ! क्या अव्याबाध देव हैं ? हा गोतम ! अव्याबाध देव है, लोकातिक देव मध्यगत अव्याबाध देव कहे हैं, अहो भगवन् ! अव्याबाध देव क्यो कहे ? अहो गोतम ! एक अव्याबाध देव एक-एक पुरुष की भूमर (आखकी पलक) पर दिव्य

देवर्द्धि दिव्य देव द्युति दिव्य देवानुभाव, और दिव्य बत्तीस प्रकार के नाटक करने मे समर्थ है। परन्तु उस को किंचिन्मात्र भी बाधा विबाधा, उत्पात व चर्मच्छेद नही करता हैं, इस प्रकार सूक्ष्म क्रिया करने मे कुशल होने से अव्याबाध देव कहे गये हैं।

सूत्र—पभूण भंते । सक्के देविंदे देवराय पुरिसस्स सीसं सापाणिणा असिणा छिंदित्ता कमडलुं पक्खिवित्तए । हंता पभू ॥ से कहमिदाणिं पकरेइ । गोयमा । छिंदिया छिंदिया चणवा पक्खिवेऽवा, भिंदिय भिंदिया चण वा पक्खिवेज्जा, तओ पच्छा खिप्पामेव पडिसघाएज्जा, णो चेवणं तस्स पुरिसस्स किंचिवि आबाहंवा वाबाहं वा उप्पाएज्जा, छविं छेद पुण करेति, एसुहुम चण पक्खियेज्जा ।

अहो भगवन् । शक्र देवेन्द्र अपने हस्त मे रहा हुए खड्ग से पुरुष का मस्तक छेदकर कमडल मे डालने को क्या समर्थ है। हा गौतम । वह समर्थ है, अहो भगवन् ? वह कैसे करे ? अहो गौतम । क्षुरप्रादिक के कुष्माण्डादिक समान छोटे छोटे टुकडे कर के छेदन करे, फाड करके भेदन करे कुटकर चूर्ण करे और पीछे उस को एक कमडल मे भरे परन्तु उस मनुष्य को किंचिन्मात्र भी बाधा, विबाधा व चर्म छेद नही होता है, क्यों कि वह इतनी सूक्ष्म क्रिया करने मे बहुत कुशल होता है।

सूत्र— अत्थिणं भंते । जभया देवा । हंता अत्थि ॥ से केणट्ठेण भंते । एव वुच्चइ-जभया देवा जभया देवा ? गोयमा

जंभगाणं देवा णिच्चं पमुदित पक्कीलिया कुदप्परतिमोहण सीला। जेण ते देवे कुद्धे पासेज्जा, सेण महतं अजसं पाउणेज्जा, जेणं ते देवे तुट्ठे पासेज्जा सेण महत जस पाउणेज्जा से तेणट्ठेण गोयमा जंभगा देवा॥

भावार्थ—अहो भगवन्! क्या जृंभक देव है? हा गौतम? हैं अहो भगवन् किस कारन से ऐसा कहा गया है कि जृंभक देव है? अहो गौतम? जृंभक देव नित्य प्रमुदित, हर्षवत, क्रीडा सहित, केली सहित, व मोहन स्वभाव वाले हैं जिसको वे क्रुद्ध होकर देखें उसका बहुत अनर्थ करें और जिसको तुष्ठ होकर देखे उसको यश प्राप्त करावे अहो गौतम! इन कारन से जृंभक देव कहे गये हैं।

कई विह णं भंते! जंभगा देवा पण्णत्ता! गोयमा! दस विहा पण्णत्ता! तजहा अण्णजंभगा पाण जंभगा वत्थजंभगा लेण जंभगा सयण जंभगा, पुप्फ जंभगा, फल जंभगापुप्फफल जंभगा, विज्जा जंभगा, अवियत्त जंभगा।

अहो भगवन्? जृंभक देव के कितने भेद कहे हैं। अहो गौतम जृंभक देन के दश भेद कहे हैं अन्न जृंभक, पान जृंभक वस्त्र जृंभक, लयन जृंभक, शयन जृंभक, पुष्प जृंभक, फल, जृंभक, पुष्पफल जृंभक, विद्या जृंभक, और अवियत्त जृंभक।

जभगाण भंते ! देवा कहिं वसहिं उवेंति ? गोयमा ! सव्वेसु चेव दीहवेयड्ढेसु चित्तविचित्त जमग-पव्वएसु कचणपव्वएसुय एत्थणं जभगा देवा वसहिं उवेंति ॥

अहो भगवन् ? जृंभक देव कहां रहते हैं । अहो गौतम ? सब वैताढ्य पर्वत पर, चित्र विचित्र नाम के यमक पर्वत पर और कचनगिरि पर्वत पर जृंभक देव रहते है ।

सूत्र—जभगाण भंते देवाणं केवइय कालट्ठिई पण्णत्ता ! गोयमा ! एगपलिओवम ठिई ।

अहो भगवन् ? जृंभक देवताओं की कितनी स्थिति कही ? अहो गौतम ? अहो गौतम ? एक एक पल्योपम की स्थिति कही है, अहो भगवन् ? आप के वचन सत्य हैं।

सूत्र—तओ ठाणाइं देवे पीहेज्जा त० माणुस्सग भवं आरिए खेत्ते जम्मं सुकुलपच्चायाइ ॥

अर्थ—देवता भी तीन वस्तु प्राप्त करने की इच्छा करते हैं । मनुष्य जन्म, आर्य क्षेत्र और उत्तम कुल मे जन्म ।

सूत्र—तिहिं ठाणेहिं देवे परितप्पेज्जा त० अहोण मए संते वले सते वीरिए सते पुरिसक्कार परक्कमे खेमसि सुभिक्खसि आयरिय उवज्झाएहिं विज्जमाणेहिं कल्लसरीरेणं णोवहुएसुए अहोए अहोणं मए इहलोग पडिवद्धेण परलोगं-परमुहेण विसयतिसिएण णो दोहे सामन्नपरियाए अणुपा-लिए । अहोणं मए इड्ढिरससाय गुरूएण भोगासंसगिद्धेण णोविसुद्धे चरित्ते फासिए ।

अर्थ—देवलोक के देवता तीन कारण से पश्चाताप करते हैं ? अहो मैं बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम व दृढ शरीर को धारन करने वाला होकर वैसे ही सर्वथा क्षेम कुशलवन्त बनकर, सुख से आहारादिक प्राप्त कर और आचार्य उपाध्याय का ससर्ग होने पर भी मैंने बहुत शास्त्राभ्यास किया नही ? अहो इस लोक सबंधि विषयादिक के प्रतिबध से अतृप्तपने परलोक से पराङ्गमुख रह कर विषय तृष्णा से बहुत कालतक सयम नहीं पाल सका । अहो ऋद्धि, रस और साता गर्व मे भोग की आशा मे रह कर शुद्ध चरित्र पाला नही ।

सूत्र—इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देवे चइस्सामीति जाणइ विमाणाभरणाइ णिप्पभाई पसित्ता कप्परूक्खग मिलायमाण पासित्ता, अप्पणो तेयलेस्स परिहायमाण जाणित्ता, इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देवे उव्वेगमागच्छेज्जा त० अहोण मए इमाओ एयारूवाओ दिव्वाओ देवड्ढीओ,

दिव्वाओ देवजुईओ, दिव्वाओ देवाणुभावाओ पत्ताओ लद्धाओ अभिसमण्णागयाओ चीवयव्व भविस्सइ ! अहोण मए याउओयं पिउसुक्क त तदुभयसिट्ठ तप्पढम-याएआहारो आहारेयव्वो मविस्सइ । अहोण मए कलम-लजत्राज्ञाए असुईए उव्वेय णित्ताए भीमाए गब्भवसहीए वसियव्व भविस्सइ । इच्चेएहिं तिहि ठाणेहिं ।

अर्थ—तीन कारण से देवता जाने कि मैं यहा से चवूगा ! (१) अपने विमान आभरण को कान्ति रहित देख कर, (२) कल्पवृक्ष को म्लान देख कर (३) और अपनी तेजो—लेश्या (शरीर दीप्ति) हीन देख कर, इन तीन कारणो से देवता अपना चवन जानते है और चवन-नजीक आया जान कर वे देवता तीन कारण से पश्चाताप करते हैं । (१) अहो यह दिव्य देवता की ऋद्धि द्युति, और प्रभाव मैं पाया हुआ हू, इन सब को छोड कर यहां से चवना पडेगा ! (२) वहा उत्पन्न होते माता का रूधिर और पिता का शुक्र का आहार मुझे करना पडेगा ! (३) और मलमूत्र मे अशुचि के कीचड मे नवमासाधिक काल रहना पडेगा।

सूत्र—तिंसट्ठिया विमाणा प० त० वट्टा, तसा, चउरसा । तत्थण जे ते वट्टविमाणा तेण पुक्खरकण्णिया सठाण सठिया सव्वओ समता पागारपरिक्खित्ता एगदुवारा प० ॥ तत्थण जे ते तसविमाणा ते सिंघाडगसठाणसठिया दुहओ पागारपरिक्खित्ता एगओ वेइयापरिक्खित्ता तिदुवारा प०

तत्थरण जे ते चउरसविमाणातेणं अक्खाडगसंठाणसंठिया सव्वओ समंता वेइया परिक्खित्ता, चउदुवारा पन्नत्ता ॥ तिपइट्ठिया विमाणा प० त० घणोदहिपइट्ठिया, घणवाय-पइट्ठिया उवासंतरपइट्ठिया । तिविहा विमाणा प० त० अवट्ठिया, वेउव्विया, परिजाणिया ॥

अर्थ—भगवन्त ने विमान तीन सठान वाले बतलाये हैं । गोल तीखूने और चौखूने, उस मे जो वर्तुलाकार विमान हैं वे पुष्कर कार्णिका के आकार वाले हैं । चारों तरफ कोट है, और एक द्वार है । जो विमान तीखूने हैं वे सीघाडे के आकार वाले हैं उस को दो तरफ कोट हैं । और एक तरफ वेदिका है और तीन द्वार है । और चौकोने विमान हैं वे अखाडे जैसे आकार वाले है । चारो तरफ वेदिका है और चार द्वार हैं । तीन वस्तु के आधार से, विमान रहे हुए हैं । पहिले दूसरे देव लोक के विमान घनोदधि के आधार से रहे हुए है, तीसरा चौथा देवलोक के विमान घनवात के आधार से रहें है । पाचवा, छट्ठा, सातवा और आठवां देवलोक के विमान घनोदधि घनवात् के आधार से और नववां दशवा अग्यारवा और बारवा देवलोक के यावत् सर्वार्थसिद्ध के विमान आकाश के आधार से रहे हैं । और भी तीन प्रकार के विमान कहे हैं । देवताओ को सदैव रहने के लिए शाश्वते विमान जो हैं सो अवस्थित, (२) परिचारणा करने के लिये जो विमान बनाए सो वैक्रेय और प्रयोजन से जाने-आने को जो विमान बनाये सो परियान ।

दिव्वाओ देवजुईओ, दिव्वाओ देवाणुभावाओ पत्ताओ लद्धाओ अभिसमण्णागयाओ चीवयव्व भविस्सइ। अहोणं मए याउओयं पिउसुक्क त तदुभयसिद्ठ तप्पढम-याएआहारो आहारेयव्वो भविस्सइ । अहोण मए कलम-लजगाज़ाए असुईए उव्वेयणिज्जाए भीमाए गब्भवसहीए वसियव्व भविस्सइ । इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं।

अर्थ—तीन कारण से देवता जाने कि मैं यहा से चवूगा। (१) अपने विमान आभरण को कान्ति रहित देख कर, (२) कल्पवृक्ष को म्लान देख कर (३) और अपनी तेजो—लेश्या (शरीर दीप्ति) हीन देख कर, इन तीन कारणो से देवता अपना चवन जानते हैं और चवन-नजीक आया जान कर वे देवता तीन कारण से पश्चाताप करते हैं । (१) अहो यह दिव्य देवता की ऋद्धि द्युति, और प्रभाव मैं पाया हुआ हू, इन सब को छोड कर यहां से चवना पडेगा। (२) वहा उत्पन्न होते माता का रुधिर और पिता का शुक का आहार मुझे करना पडेगा। (३) और मलमूत्र में अशुचि के कीचड मे नवमासाधिक काल रहना पडेगा।

सूत्र—तिंसद्ठिया विमाणा प० त० वट्टा, तसा, चउरसा। तत्थण जे ते वट्टविमाणा तेण पुक्खरकण्णिया सठाण सठिया सव्वओ समता पागारपरिक्खित्ता एगदुवारा प०॥ तत्थण जे ते तसविमाणा ते सिंघाडगसठाणसठिया दुहओ पागारपरिक्खित्ता एगओ वेइयापरिक्खित्ता तिदुवारा प०

तत्थण जे ते चउरसविमाणातेणं अक्खाडगसंठाणसंठिया सव्वओ समंता वेइया परिक्खित्ता, चउदुवारा पन्नत्ता ॥ तिपइट्ठिया विमाणा प० त० घणोदहिपइट्ठिया, घणवाय-पइट्ठिया उवासन्तरपइट्ठिया । तिविहा विमाणा प० त० अवट्ठिया, वेउव्विया, परिजाणिया ॥

अर्थ—भगवन्त ने विमान तीन सठान वाले बतलाये हैं। गोल तीखूने और चौखूने, उस मे जो वर्तुलाकार विमान हैं वे पुष्कर कर्णिका के आकार वाले हैं। चारों तरफ कोट है, और एक द्वार है। जो विमान तीखूने हैं वे सींगाडे के आकार वाले हैं उस को दो तरफ कोट हैं। और एक तरफ वेदिका है और तीन द्वार है। और चौकौने विमान हैं वे अखाडे जैसे आकार वाले है। चारो तरफ वेदिका है और चार द्वार हैं। तीन वस्तु के आधार से, विमान रहे हुए हैं। पहिले दूसरे देव लोक के विमान घनोदधि के आधार से रहे हुए है, तीसरा चौथा देवलोक के विमान घनवात के आधार से रहें है। पाचवा, छट्ठा, सातवा और आठवां देवलोक के विमान घनोदधि घनवात् के आधार से और नववां दशवा अग्यारवा और बारवा देवलोक के यावत् सर्वार्थसिद्ध के विमान आकाश के आधार से रहे हैं। और भी तीन प्रकार के विमान कहे हैं। देवताओं को सदैव रहने के लिए शाश्वते विमान जो हैं सो अवस्थित, (२) परिचारणा करने के लिये जो विमान बनाए सो वैक्रेय और प्रयोजन से जाने-आने को जो विमान बनाये सो परियान।

सूत्र—चउहिं ठाणेहिं अहुणोववन्ने देवे देवेलोगेसुइच्छेजा माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए णो चेव सचाएइ हव्वमागच्छित्तए तं० अहुणोववन्ने देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववरणे सेणं माणुस्सए कामभोगे णो आढइ णो परियाणाइ णो अट्ठ वधइ णो नियाणं पगरेइ, णो ठिइपगप्प पगरेइ । अहुणोववन्ने देवे देवलाएसु दिव्वेसु काम भोगेसु मुच्छिए ४ तस्सणं माणुस्सइ पेमे वोच्छिएणे दिव्वपेमसकते भवइ, अहुणोववन्ने देवे देवलोएसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिए ४ तस्सणं एवं भवइ इयण्हिं गच्छ मुहुत्तेण गच्छं तेण कालेण मप्पाउआ मणुस्सा कालधम्मुणा सजुत्ता भवति । अहुणोववन्ने देवे देवलोएसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिए ४ तस्सणं माणुस्सए गधे पडिकूले पडिलोमे यावि भवइ उड्ढपियण माणुस्सए गधे चत्तारि पचजोयणसयाइ-हव्वमा गच्छइ ४ इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं अहुणोववन्नेदेवे देवलोएसु इच्छेज्जा मणुसलोग हव्वमागच्छित्तए णो चेवणं सचाएइ हव्वमागच्छित्तए ॥

भावार्थ—तत्काल के उत्पन्न हुए देवता देवलोक मे से मनुष्य लोक मे आने को इच्छते हैं परन्तु चार कारण से नही आ सकते हैं, तत्काल के उत्पन्न हुए देवता दिव्य कामभोगों में मूच्छित, गृद्ध व अतृप्त बन कर मनुष्य के कामभोगो को आदर करे नही और मनुष्य के सुखों को असार व

कुत्सित जाने इस लिए ऐसा नियाणा भी करे नही कि मैं भवातर मे ऐसे भोग मे रहू ।

तत्काल के उत्पन्न देवता दिव्य कामभोग मे मूछित हुआ मनुष्य भव सबधी मात-पिता का प्रेम व स्नेह का विच्छेद होता है इससे मनुष्य भव मे नही आता है। तत्काल के उत्पन्न हुये देवता दिव्य कामभोगो मे मूछित बन ऐसी इच्छा करे कि मैं इस नाटक को देखकर दो घटिका मे जाऊ परन्तु एक नाटक देखते दो हजार वर्ष व्यतीत होते हैं इससे मनुष्य भव में अल्प आयुष्यवाले मरण को प्राप्त होवे और फिर आनेका होवे नही ४ तत्काल के उत्पन्न हुये देवता देवलोग में दिव्य काम भोगो मे आसक्त गृद्ध व मूछित होते हुये मनुष्य लोक मे मृतक सर्प जैसी गध ५०० योजन पर्यन्त ऊचे जाति है ऐसी विपरीत गध इन्द्रिय व मन को प्रतिकूल होने से नही आते हैं ।

सूत्र—चउहिं ठाणेहिं अहुणोववन्ने देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुस लोग हव्व मागच्छित्तए सचाएइ हव्व-मागच्छित्तए त० अहुणोववन्नेदेवे देवलोगेसु दिव्वेसु काम-भोगेसु अमुच्छिए जाव अणज्झोववण्णे तस्सण एव भवइ अत्थि खलु मम माणुस्सए भवे आयरिएइवा,, उवज्झाएइवा,

नो आढाइ नो परियाणाइ, नो महारिहेण आसणेण उवनिमतेइ, भासं पियसे भासमाणस्स जाव चत्तारि पचदेवा अणुवणाचेव अब्भुट्ठिति, मावहु देवे भासओ, सेणाओ देवलोगाओ आउक्खएण, भवक्खएण, ठिइक्खएण, अणतर चय चइत्ताण इहेव माणुस्सएभवे जाइ इमाइ कुलाइ भवंति त० अंतकुलाणिवा, पंतकुलाणिवा, तुच्छकुलाणिवा दरिद्दकुलाणिवा, किविणकुलाणिवा, भिक्खागकुलाणिवा, तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाइसेणं तत्थ पुमेभवइ, दुरूवे, दुवन्ने, दुगंधे॥ दुरसे, दुफासे, अणिट्ठे, अकंते, अप्पए, अमणुन्ने, अमणामे, हीणस्सरे, दीणस्सरे, अणिट्ठस्सरे, अकतस्सरे, अप्पियस्सरे, अमणोन्नस्सरे, अमणामस्सरे, अणाएज्जवयणपच्चायाए जाविय से तत्थ बाहिरब्भतरिया परिसा भवइ सावियणं णो आढइ णोपरियाणाइ, णोमहरिहेणं आसणेणं उवनिमतेइ भासंपियसे भासमाणस्स जाव चत्तारि पचजणा अवुत्ता चेव अब्भुट्ठिति मावहु अज्जउत्तो भासओ।

भावार्थ—मायी माया की आलोचना किये बिना काल करके अन्य व्यतरादिक देव मे उत्पन्न होवे वहा भी उस को विशेष ऋद्धि मिले नही और सौधर्मादि देवलोक में उत्पन्न हो सके नही। वैसे ही ज्यादा स्थिति भी होवे नही। वहा बाहिर की व अन्दर की जो परिषदा है उन के देवता उस का आदर सन्मान करे नही, अन्य महर्द्धिक देव समान उसको निमंत्रण

भी करे नही, और कदाचित् वह बोले तो अन्य चार पाच देवता उठकर कहे कि अरे देव बहुत बकवाद मत कर, मोन रह, और वहा से आयुष्य पूर्ण होने से चवकर मनुष्य, लोक मे अत प्रात कुल, चाडाल कुल, तुच्छकुल, दरिद्रकुल, भिक्षाचर का कुल, कृपण का कुल, और भी इस प्रकार के अन्य कुल मे उत्पन्न होवे वहा भी वह पुरुष खराब रूप, वर्ण, गध, रस, स्पर्श वाला होवे, अनिष्ट अकात, अप्रिय, अमनोज्ञ, मन पसद न होवे वैसा, हीन स्वर वाला, अनिष्ट स्वर वाला, अकात स्वर वाला, अप्रीतिकारी स्वर वाला, अमनोज्ञ स्वर वाला अमनाम स्वर वाला, अनादेयवचन वाला होवे, उसकी बाह्य व आभ्यतर परिषदा वाले स्त्री, मित्र, पुत्रादि भी उसका आदर करे नही यावत् महान पुरुष को योग्य आमत्रण करे नही और बोले तो दूसरा कहे कि अरे हीन पुन्य बहुत मत बोल, चुप रह इस तरह अपमान करे। ऐसी बहुत विटम्बना मायावी पुरुष को होती है, ।

सूत्र—माईणं मायंकट्टु आलोइय पडिक्कते कालेकिच्चा अण्णतरएसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवति, तजहा-महिड्ढिएसु जाव चिरट्टिईएसु, सेणं तत्थदेवे भवइ महिड्ढिए जाव चिरट्टिईए हार वर.इयवच्छे, कडकतुडिय-थभियभुए, अगय कुडलमट्ठगडयल कण्ण पीठ धारी, विचित्तहत्था भरणे ।

विचित्तवत्थाभरणे विचित्तमालामउलीकल्लाणगप-वरगंध मल्लाणुलेवणधरे, भासुरबोंदीपलंबवणमालधरे, दिव्वेणवन्नेण, दिव्वेण गंधेण दिव्वेणरसेण, दिव्वेणफासेण दिव्वेण संघाएण दिव्वेण संठाणे, दिव्वाएइड्ढीए, दिव्वाएजुत्तीए, दिव्वाएपभाए, दिव्वाएछायाए, दिव्वाएअच्चीए, दिव्वेणतेएण, दिव्वेणएसाए, दसदिसाओ उज्जोएमाणे पभासेमाणे, महयाहयणट्टगीयवाइयततीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेण दिव्वाइ भोगाइ भुजमाणे विहरइ।

भावार्थ—अब मायावी पुरुष माया की अलोचना यावत् तप अंगीकार कर काल के अवसर मे काल करने सेसौधर्मादि देवलोक मे महर्द्धिक यावत चिरस्थितिवाले देवपने उत्पन्न होवे उनके वक्ष स्थल हारो से विराजित रहते हैं उनकी भुजाओ कंकणो से सुशोभित दीखती है, उनके कानो मे कुण्डल रहते हैं, हस्त मे विचित्र प्रकार के आभरण हैं, उनको विचित्र प्रकार के वस्त्र रहते हैं, विचित्र प्रकार की माला तथा मुकट होते हैं, कल्याणकारी वस्त्र पहिने हुये रहते हैं, कल्याणकारी गंध माला, कसुम, फूल विलेपन के धरने वाले होते हैं, देदीप्यमान।

—शरीर जीतनी लम्बी वनमाला जिनको रहती हैं और भी वे दिव्यवर्णवाले, दिव्यगंधवाले, दिव्यरसवाले, दिव्यस्पर्श-दिव्यसंघयन, संस्थान, ऋद्धि, प्रभा, कान्ति, अर्ची, तेज व लेश्यावाले

हैं दशों दिशायें उद्योत करते हुये आहत, नाटक, गीत, वादित्र ततो, वीणा तल, ताल, तुटित, घन, मादल, पडवडी, पडह वगैरह शब्दों से दिव्यभोग भोगते हुये विचरते हैं ।

सूत्र—जावियसे तत्थ बाहिरब्भतारिया परिसा भवइ, सावियण आढाइ परियाणइ महरिहेण आसणेण उपनिमतेइ भॉसपियस भासमाणस्स जाव चतारिपचदेवा अवुत्ता चेवअब्भुट्ठति बहुदेवे भासओ २ । सेण तओ देवलोयाओ आउक्खएण भवक्खएण, ठिइक्खएण जाव चइत्ता इहेव माणुस्सए भवे जाइ इमाइ कुलाइ भवति, आढाइ जाव बहुजणस्स अपरिभूयाइ तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए—

पच्चायाइ, सेण तत्थ पुमे भवइ, सुरूवे, सुवन्ने, सुगधे, सुरसे, सुफासे, इट्ठे, कते, जाव मणामे, अहीणस्सरे जाव मणामस्सरे आदेज्जवयण पच्चायाए, जावियसे तत्थ बाहिरब्भतरिया परिसा भवइ साविय आढाइ जाव बहु अवजवन्ते भासओ ।

अर्थ—वहां जो बाह्या भ्यतरं परिषदा रही हुई हैं उनके देवता भी उनको आदर सत्कार करते हैं और बोलता होवे तो कहते हैं अहो आयुष्यमन् देवता और भी बोलो और वहा का आयुष्य

क्षय हुये पीछे वहा से चवकर मनुष्य मे बहुत लोगो से अपरिभूत कुल मे उत्पन्न होता है वहा पुरुषपने अच्छा वर्ण, गंध, रस, स्पर्शवाला इष्ट कान्त 'यावत् मनगमता, अदीन स्वर वाला यावत् आदेयवचनवाला होता है, उनके पुत्र मित्रादि भी उनको यथा योग्य सत्कार सन्मान देते हैं और बोलते हो तो उसे और भी बोलने के लिए कहते हैं क्योकि उनकी भाषा बडी प्रीय होती है।

प्रश्न — तेण कालेण, तेण समएणं मोया णाम णयरी होत्था। वण्णओ। तीसे ण मोयाए णगरीय वहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसि भाए णदणे णाम चेइये होत्था। वण्णओ। तेणं कालेणं तेणं समएण सामी समोसढे। परिसा णिग्गच्छइ, परिसा। पडिगया

प्रश्न—तेणं कालेणं, तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स दोच्चे अतेवासी अग्गिभूई णाम अणगारे गोयंमगोत्तेण सत्तुस्से, हे जाव—पज्जुवासमाणे एव वयासीचमरे ण मते। असुरिंदे, असुरराया के महिड्ढीपे, के महज्जुईए, के महावले के महायसे, के महासोक्खे, के महाणुभागे, केवइय च ण पभू विकुव्वित्तए?

उत्तर—गोयमा! चमरे ण असुरिंदे, असुरराया महिड्ढीए जाव—महाणुभागे। से ण तत्थ चउत्तीसाए भवणावाससयसहस्साण, चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीण, तायत्तीसाय तायत्तीसगाण, जाव-विहरइ। एव महिड्ढीए, जाव-महाणुभागे। एवइय चण पभू विउव्वित्तए से जहा नामए, जुवइ जुवाणे हत्थेण हत्थे गेण्हेज्जा चक्कस्सवा णाभी अरगाउत्ता-सिआ, ऐवामेव गोयमा

चमरे असुरिंदे असुरराया वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहएणइ समोणित्ता सखेज्जाइ जोयणाइ दड निस्सरइ, तजहा रयणाण जाव-रिट्ठाण अहावायरे पोग्गले परिसाडेई, परिसाडित्ता अहासुहुमे पोग्गले परियाएइ, परियाइत्ता दोच्च पि वेउव्वियस-मुग्घायेण समोहएणइ समोहणित्ता पभू ण गोयमा चमरे असुरिंदे असुरराया केवलकप्प जवूदीव दीव वहूहि असुरकुमारेहिं देवेहिं, देवीहीं य आइण्णं वितिकिण्णे उवत्थड, सथड, फुड अवगाढावगाढ करेत्तए, अदुत्तर चण गोयमा ! पभू चमरे असुरिंद असुरराया तिरियमसखेज्जे दीवसमुद्दे वहूहि असुरकुमारे हिं, देवीहिं य आइण्णे, वितिकिराशो, उवत्थडे सथडे, फुडे आवगाढागाढे करेत्तए, एम ण गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स, असुररण्णो अयमेयारुवे विसएविसयमेत्ते बुइए, णो चेव ण सपत्तीए विउव्विसु वा, विउव्वइ वा विउव्विस्सइ वा।

अर्थ—उस काल उस समय मे 'मोका' नाम की नगरी थी। उस का वर्णन करना चाहिये उस नगरी के बाहर उत्तर पूर्व की दिशा भाग मे अर्थात् ईशान कोण मे नन्दन नाम का चैत्य (उद्यान) था । वह वर्णन करने योग्य था । उस काल उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहा पधारे । भगवान के आगमन को सुन कर परिषद् दर्शनार्थ निकली । भगवान् का धर्मोपदेश सुन कर परिषद् वापिस चली गई ।

उस काल उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के दूसरे अन्तेवासी अग्निभूति अनगार, जिनका गौतम गोत्र है, सात हाथ ऊंचा शरीर है, यावत पर्यूंपासना करते हुये इस प्रकार बोले—

प्रश्न—हे भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर कितनी बडी ऋद्धि वाला है ? कितनी बडी कान्तिवाला है ? कितना बलशाली है ? कितनी बडी कीर्ति वाला है ? कितने महान सुखो वाला है ? कितने महान प्रभाव वाला है ? वह कितनी विकुर्वणा कर सकता है ।

उत्तर—हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर महाऋद्धि वाला है । यावत् महाप्रभाव वाला है । चौतीस लाख भवन वास, चौसठ हजार सामानिक देव और तेतीस त्रायस्त्रिंशक, इन सब पर वह अधिपतिपना (सत्ताधीशपना) करता हुआ विचरता है । अर्थात् वह चमर ऐसी मोटी ऋद्धि वाला है । यावत् ऐसा महाप्रभाव वाला है उसके वैक्रिय करने की शक्ति इस प्रकार है— हे गौतम ! विकुर्वणा करने के लिए असुरेन्द्र असुरराज चमर, वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत् होता है समवहत होकर सख्यात योजन का लम्बा दण्ड निकालता है । उसके द्वारा रत्नो के यावत् रिष्टरत्नो के स्थूल पुद्गलो को झटक देता है (गिरा देता है— तथा सूक्ष्म पुद्गलो को ग्रहण करता है दूसरी बार

फिर वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत् करता है । हे गौतम ! जैसे कोई युवा पुरुष, युवती स्त्री के हाथ को दृढता के साथ पकड कर चलता है तो वे दोनो सलग्न मालूम होते है अथवा जैसे गाडी के पहिये की धुरी मे आरा सलग्न सुसवद्ध एव आयुक्त होते हैं इसी प्रकार असुरेन्द्र असुरराज चमर, बहुत असुर कुमार देवों द्वारा तथा असुरकुमार देवियो द्वारा इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को आकीर्ण कर सकता है एव व्यतिकीर्ण, उपस्तीण, सस्तीर्ण, सपृष्ट और गाढावगाढ कर सकता है अर्थात ठसाठस भर सकता है। फिर हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर बहुत असुर कुमार देवो और देवियो द्वारा इस तिर्च्छालोक के असख्य द्वीप और समुद्रो तक के स्थल को आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, सस्तीर्ण, सपृष्ट और गाढावगाढ कर सकता है। अर्थात चमर इतने रूपो की विकुवणा कर सकता है कि असख्य द्वीप समुद्रो तक के स्थल को भर सकता है। हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की ऐसी शक्ति है—विषय है—विषयमात्र है, परन्तु चमरेन्द्र ने ऐसा किया नही करता नही और करेगा भी नही ।

प्रश्न—तए ण समणे भगव महावीरे अण्णाया कयाइ मोयाओ नयरीयो नदणाओ चेईयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता वहिया जणवय विहारविहरइ । तेण कालेण तेण समएण रायगिहे नाम णयरे होत्था ! (वण्णओ०) जाव परिसा पज्जुवासइ । तेणं कालेण तेण समएण ईसाणे देविंदे देवराया सूल

पाणी, वसहवाहणे, उत्तरड्ढलोगाहिवई अट्ठावीसविमा-णावाससयसहस्साहिवई, अरयवरवत्थधरे, आलइयमालमउडे, नवहेमचारुचित्तचचलकुडलविलिहिज्जमाणगडे, जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणे, पभासेमाणे, ईसाणे कप्पे, ईसाणवडिंसए विमाणे जहेव रायप्पसेणइज्जे जाव—दिव्व देविड्ढि जावजामेव दिसि पाउभूए, तामेव दिसि पडिगए। "भते। ' त्ति, भगव गोयमे समण भगव महावीर वदइ णमसइ, वदित्ता णमसित्ता एव वयासी —अहो। ण भते। इसाणेदेविदे देवराया महिड्ढिए, ईसाणस्स ण भंते। सा दिव्वा देविड्ढी कहि गया, कहि अणुपविट्ठा ?

उत्तर—गोयमा। सरीरं गया। सरीरं अणुपविट्ठा।

प्रश्न—से केणट्ठेण भते। एव वुच्चई सरीरं गया ? सरीरं अणुपविट्ठा ?

उत्तर—गोयमा। से जहाणामए कूडागारसाला सिया दुहओ लित्ता, गुत्ता, गुत्तदुवाराणिवाया णिवायगभीरा, तीसेण कुडागारसालाए जाव कूडागारसाला दिंटंतो भाणियव्वो।

भावार्थ—इसके बाद किसी एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी 'मोका' नगरी के उद्यान से बाहर निकलकर जनपद

(देश) मे विचरने लगे । उस कान उस समय मे 'राजगृह' नामक नगर था (वर्णन करने योग्य) भवगान वहा पधारे। यावत परिषद् भगवान की पर्युपासना करने लगी।

उस काल उस समय मे देवेन्द्र देवराज शूलपाणि (हाथ मे शूल धारण करने वाला था) वृषभ वाहन—बैल पर सवारी करने वाला लोक के उत्तरार्द्ध का स्वामी, अट्ठाईस लाख विमानो का अधिपति आकाश के समान रज रहित निर्मल वस्त्रो को धारण करने वाला माला से सुशोभित मुकट को शिर पर धारण करने वाला नवीन सोने के सुन्दर विचित्र और चचल कुण्डलो से सुशोभित मुख वाला यावत् दसो दिशाओ को प्रकाशित करता हुआ ईशानेन्द्र, ईशानकल्प के ईशानावतसक विमान मे यावत दिव्य देव ऋद्धि का अनुभव करता हुआ विचरता है वह भगवान के दर्शन करने के लिए आया और यावत जिस दशा से आया था उसी दिशा मे वापिस चला गया।

इसके बाद हे भगवन् ! इस प्रकार सम्बोधित करके गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को बन्दना नमस्कार करके इस प्रकार पूछा कि—हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान ऐसी महाऋद्धि वाला है' हे भगवन ! ईशानेन्द्र की वह दिव्य देवऋद्धि कहा गई और कहा प्रविष्ट हुई ?

उत्तर—हे गौतम ! वह दिव्य देव ऋद्धि शरीर मे गई और शरीर मे ही प्रविष्ट हुई।

प्रश्न—हे भगवन् ! वह दिव्य देवऋद्धि शरीर में गई और शरीर मे प्रविष्ट हुई ऐसा किस कारण से कहा जाता है।

उत्तर—हे गौतम ! जैसे कोई कूडागार (कूटाकार) शाला हो जो कि दोनो तरफ से लिपि हुई हो, गुप्त हो, गुप्त द्वार वाली हो, पवन रहित हो पवन के प्रवेश से रहित गम्भीर हो। ऐसी कूटाकार शाला का दृष्टान्त यहा कहना चाहिये।

ईशानेद्र का पूर्व भव

प्रश्न—ईसाणेणं भंते ! देविंदेण देवरण्णा सा दिव्वा देविड्ढी, दिव्वा देव ज्जुई, दिव्वे देवाणुभागे किण्णा लद्धे, किण्णा पत्ते, किण्णा अभिसमण्णागए ? के वा एस आसी पुव्वभवे, किणामए वा, किगोत्ते वा, कयरंसि व गामंसि वा नगरंसि वा, जाव सण्णिवेंससि वा, किं वा सोच्चा, किं वा दच्चा, किं वा भोच्चा, कि व किच्चा, कि वा समायरित्ता, कस्स वा तहारुवस्स वा समणस्सवा, माहणस्स वा अंतिए एगमवि आयरिय, धम्मिय सुवयण सोच्चा, निसम्म जं ण ईसाणेण देविदेण, देवरण्णा सा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमण्णागया ?

उत्तर—एव खलु गोयमा ! तेण कालेण, तेणं समए ण इहेव जवुदीवे, भारहे वासे तामलित्ति नाम णयरी

होत्था। तत्थरा तामलित्तिए रायरीए तामली राम मोरिय-पुत्ते गाहावई होत्था, अड्ढे दित्ते, जाव वहुजरास्स आपरिभूए यावि होत्था, तए रा तस्स मोरियपुतस्स ताभिलितस्स गाहावइस्स अरणया कयाई पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि कटुवजागरिय जागरमारास्स ईमयारूवे अज्झत्थिए, जाव—समुप्पज्जित्था, अत्थि ता मे पुरा पोरारारा, सुचिरराणं, सुपरिक्कंतारा, सुभारां कल्लारााराा, कडारां कम्मारां कल्लारफलवित्तिविसेसो, जेराहृहिररारोरा वड्ढामि, सुवरारोरा वढ्डामि, धरारोरा वड्ढामि पुत्तहिं वढ्डामि पसूहिं बढ्डामि, विपुलधराकराग-रयरा-मरिा-मोत्तिय-सख-सिल-प्पवा-लरत्तरयरासतसारसावरज्जेरा अईव अईव अभिवड्ढामि।

भावर्थ—हे भगवन्! देवेन्द्र देवराज ईशान को वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवप्रभाव किस प्रकार लब्ध हुआ, प्राप्त हुआ और अभिसमन्वागत हुआ (सम्मुख आया)? यह ईशानेन्द्र पूर्वभव मे कौन था? उसका नाम और गोत्र क्या था? वह किस ग्राम नगर यावत् सन्निवेश मे रहता था? उसने क्या सुना? क्या दिया? क्या खाया? क्या किया? क्या आचरण किया? किस तथारूप श्रमण या माहन के पास एक भी आर्य और धार्मिक वचन सुना था एव हृदय मे धारण किया था जिससे कि देवेन्द्र देवराज ईशान को यह दिव्य देवऋद्धि यावत् मिली है, प्राप्त हुई हैं और सम्मुख आई है।

उत्तर—हे गौतम ! उस काल उस समय मे इसी जम्बूदीप के भरत क्षेत्र मे ताम्रलिप्ति नाम की नगरी थी उस नगरी का वर्णन करना चाहिये। उस ताम्रलिप्ती नगरी मे तामली नाम मौर्यपुत्र (मौर्यवश मे उत्पन्न) गृहपति रहता था वह तामली गृहपति धनाढ्य और दीप्ति वाला था। यावत् वह बहुत से मनुष्यो द्वारा अपराभवनीय (नही दबने वाला था) किसी एक समय मे उस मौर्यपुत्र तामली गृहपति को रात्रि के पिछले भाग मे कुटुम्बजागरण करते हुये ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि मेरे द्वारा पूर्वकृत सुआचरित, सुपराक्रम युक्त, शुभ और कल्याण रूप कर्मो का कल्याण फल रूप प्रभाव अभी तक विद्यमान है जिसके कारण मेरे घर मे हिरण्य (चादी) बढता है, सुवर्ण बढता है रोकड रुपया रुप धन बढता है, धान्य बढता हैं एव मैं पुत्रो द्वारा, पशुओ द्वारा और पुष्कल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शख, चन्द्रकान्त आदि मणि, प्रवाल आदि द्वारा वृद्धि को प्राप्त हो रहा हू।

तं किं ण अहं पुरा पोराणाण, सुचिण्णाण, जाव—कडाण कम्माण एगतसोक्खय उवेहमाणे विहरामि, त जाव—ताव अहं हिरण्णेण वड्ढामि, जाव—अईव अईव अभिवड्ढामि, जाव च ण मे मित—णाइ—णियगसबधि—परियणो आढाई, परियाणाई, सक्कारेइ, सम्माणेइ, कल्लाणं, मगल, देवय, चेइय विणएण पज्जुवासइ, तावता मे सेय कल्ल पाउप्पभायाए रयणीए जाव—जलतें, सयमेव दारुमय पडिग्गहं करेत्ता,

विउलं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, उवक्खडावेत्ता, मित्त—णाई—णियग—सयण—संबंधि—परियणं आमंतेत्ता। तं मित्तणाई णियग—सव्वंधिपरियणं विउलेणं असणपाण—खाइम—साइमेणं, वत्थ—गंध—मल्ला—लंकारेण य सक्कारेत्ता, सम्माणेत्ता तस्सेव मित्त—णाईणियग—संबंधि परियणस्स पुरओ जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावेत्ता तं मित्त णाई—णियग-संबंधि-परियणं जेट्ठपुत्तं च आपूच्छित्ता सयमेव दारुमयं पडिग्गहं गहाय मुंडे भवित्ता पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइसिए, पव्वइए वि य णं समाणे इमं एयारुवं अभिग्गहं अभिगिण्हिस्सामि—कप्पई मे जावज्जीवाए छट्ठछट्टेणं अणिक्खितेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय २ सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स विहरित्तए, छट्ठस्स वि य णं पारणंसि आयावण भूमि ओ पच्चोरुहित्त सयमेव दारुमयं पडिगहं गहाय तामलितीए नयरीए उच्च-णीए-मज्झिमाई कुलाई घरसमुदाणस्स भिक्खारियाए, अडिता सुद्धोदणं पडिगाहेता, तं तिसत्तक्खुत्तो उदएणं पक्खालेत्ता तओ सपच्छा आहारं आहरित्तए' ति कट्टु एवं पेहेई।

भावार्थ—पूर्वकृत सुआचरित, यावत् पुराने कर्मों का नाश हो रहा है इस बात को देखता हुआ भी यदि मैं उपेक्षा करता रहूं अर्थात् भविष्यत् कालीन लाभ की तरफ उदासीन बना रहु तो यह मेरे लिए ठीक नहीं है किन्तु जब तक मैं सोने चांदी आदि द्वारा

वृद्धि को प्राप्त हो रहा हू और जब तक मेरे मित्र ज्ञातिजन, कुटुम्बी जन, दास- दासी आदि मेरा आदर करते हैं मुझे स्वामी रूप से मानते हैं मेरा सत्कार, सन्मान करते हैं और मुझे कल्याण रूप, मगलरूप, देवरूप, चैत्यरूप मानकर विनयपूर्वक मेरी सेवा करते है तब तक मुझे अपना कल्याण कर लेना चाहिए यही मेरे लिये श्रेयस्कर है। अत कल प्रकाशवाली रात्रि होने पर अर्थात प्रात काल का प्रकाश होने पर सूर्योदय के बाद मैं स्वय ही अपने हाथ से लकडी का पात्र बनाऊ और प्रयाप्त अशन, पान, खादिम, स्वादिमरुप चार प्रकार का आहार तैयार करके मित्र ज्ञातिजन, स्वजन समन्धी और दास दासी आदि सबको निमन्त्रित करके उनको सम्मान पूर्वक अशनादि चारो प्रकार का आहार जीमाकर, वस्त्र सुगधित पदार्थ, माला और आभूषण आदि द्वारा उनका सत्कार सम्मान करके, उन मित्र ज्ञातिजनादि के समक्ष मेरे बडे पुत्र को कुटुम्ब मे स्थापित करके अर्थात् उसके ऊपर कुटुम्ब का भार डालकर और उन सब लोगों को पूछकर मैं स्वय लकडी का पात्र लेकर एव मु डित होकर 'प्रणामा' नाम की प्रव्रज्या अगीकार कर और प्रव्रज्या ग्रहण करते ही इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण करू कि—मैं यावज्जीवन निरन्तर छट छट अर्थात बेले बेले तपस्या करू और सूर्य के सम्मुख दोनो हाथ ऊचे करके आतापना भूमि मे आतानपा लू और बेले की तपस्या के पारणे के दिन आतापना की भूमि से नीचे उतरकर लकडी का पात्र हाथ मे लेकर ताम्रलिप्ति नगरी मे ऊच, नीच और मध्यम कुलो से भिक्षा की विधि द्वारा शुद्ध ओदन अर्थात केवल पकाये हुये चावल

लाऊ और उनको पानी से इक्कीस वार धोकर फिर खाऊ, इस प्रकार उस तामली गृहपति ने विचार किया।

सपेहिइत्ता, कल्ल पाउप्पभायाए जाव-जलते सयमेव दारुमयं पडिग्गहं करेइ, करित्ता विउल असण-पाण-खाइम-साइम उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता तओ पच्छा ण्हाए कयवलिकम्मे, कयकोउय-मगल-पायाच्छित्ते, सुद्धपावेसाई मगल्लाई वत्थाई पवरपरिहिए, अपमहग्घाभरणालकियसरीरे, भोयणवेलाए भोयणमडवसि सुहासणवरगए, तएणमित्त-णाई-णियग-सयण-सबधि-परिजणेणं सद्धि त विउल असण-पाण-खाईम साइम आसाए माणे, वीसाए माणे, परिभाएमाणे, परिभुजेमाणे विहरई, जिमिय-भुत्तुत्तरागए वि य णं समाणे आयते, चोक्खे, परमसुई–भूए, त मित्त जावपरियण विउलेण असण-पाण-खाइम साइम-पुप्फ-वत्थ गध-मल्ला लकारेण णय सक्कारेइ, सक्कारेइत्ता तस्सेव मित्त-नाई-जाव परियणस्स परओ जेट्ठपुत्त कुडुवे ठावेइ, ठावेत्ता ते मित्त-नाई-जाव-परियणस्स, जेट्ठ पुत्त च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता, मुंडे भवित्ता, पाणामाए पव्वजाए पव्वइए।

भावार्थ—फिर प्रात काल होने पर सूर्योदय के बाद स्वय लकडी का पात्र बनाकर प्रयाप्त अशन, पान, खादिम, स्वादिमरूप चारों प्रकार का आहार तैयार करवाया, फिर स्नान, बलिकर्म

करके कौतुक मगल और प्रायश्चित करके शुद्ध और उत्तम मागलिक वस्त्र पहने और अल्पभार और महामूल्य वाले आभूषणो से अपने आपको अलकृत किया, फिर भोजन के समय वह तामली गृहपति भोजन मण्डप मे आकर उत्तम आसन पर सुखपूर्वक वैठा इसके बाद मित्र, ज्ञातिजन, स्वजन, सगेसम्बन्धी और दास दासी के साथ उस चारो प्रकार के आहार का स्वाद लेते हुए, विशेष म्वाद लेता हुआ परस्पर देता हुआ अर्थात जीमाता हुआ और स्वय जीमता हुआ वह तामली गृहपति विचरने लगा जीमने के बाद उसने हाथ धोए और चूल्लु किया अर्थात मुख साफ करके शुद्ध हुआ फिर उन सब स्वजन समन्धी-आदि का वस्त्र सुगन्धित पदार्थ और माला आदि से सत्कार सम्मान करके उनके समक्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब मे स्थापित किया अर्थात कुटूम्ब का भार सभलाया फिर उन सब स्वजनादि को और ज्येष्ठ पुत्र को पूछकर उस तामली गृहपति ने मुण्डित होकर 'प्रणामा' नाम की प्रव्रज्या अगीकार की।

पव्वइए वि य ण समाणेइ मे एमेयारुव अभिग्गह अभिगिण्हइ,–'कप्पई मे जाव जीवाए छट्टं छट्टे ण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण उड्ढ वाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमिए आयावेमाणे विहरइ, छट्ठस्स, वियण पारणयसि आयावणभूमिओ पच्चोरुहइ, पच्चो रुहित्ता सयमेव दारुमय पडिग्गह गहाय तामलित्तिए णयरीए उच्च-णीय मज्झिमाई कुलाई घर समुदाणस्स भिक्खायरियाए

अडइ, सुद्धोयरण पडिग्गाहइ, तिसत्तक्खुतो उदएरण पक्खालेई, तओ पच्छा आहार आहरेइ।

प्रश्न—से केरणट्ठेरण भते ! एव वुच्चइ पारणाम पव्वज्जा ?

उत्तर—गोयमा ! पारणामाए रण पव्वज्जाए पव्वइए समारणे ज जत्थ पासइ-इंद वा, खद वा, रुद्दवा, सिव वा, वेसमरण वा, अज्जवा, कोट्ठाकिरिय वा, राय वा, जाव-सत्थवाह वा-काक वा, सारण वा पारण वा, उच्च पासइ उच्च परणाम करेइ, रणीय पासइ रणीय परणाम करेइ, ज जहा पासइ, त तहा परणाम करेइ, से तेरणट्ठेरण गोयमा । एव वुच्चइ पारणामा पव्वजा ।

भावार्थ—जिस समय तामली गृहपति ने 'प्रणामा' नाम की प्रव्रज्या अगीकार की, उसी समय उसने इस प्रकार का अभिग्रह धारण किया यावज्जीवन मैं बेले बेले की तपस्या करूगा यावत् पूर्व कथितानुसार भिक्षा की विधि द्वारा केवल ओदन (पके हुए चावल) लाकर उन्हे इक्कीस बार पानी से धोकर उनका आहार करूगा इस प्रकार अभिग्रह धारण करके यावज्जीवन निरन्तर बेले बेले की तपस्या पूर्वक दोनो हाथ ऊचे रखकर सूर्य के सामने आतापना लेता हुआ वह तामली तापस विचरने लगा बेले के पारने के दिन आतापना भूमि से नीचे उत्तर कर स्वय लकडी का पात्र लेकर ताम्रलिप्ति नगरी मे उच, नीच और मध्यम कुलो मे भिक्षा की

विधिपूर्वक भिक्षा के लिए फिरता था। भिक्षा मे केवल ओदन लाता था और उन्हे इक्कीस बार पानी से धोकर खाता था।

भावार्थ—हे भगवन। तामली तापस द्वारा ली हुई प्रव्रज्या का नाम 'प्रणामा' किस कारण से कहा जाता है ?

उत्तर—हे गौतम। जिस व्यक्ति ने 'प्रणामा' प्रव्रज्या ली हो, वह जिसको जहा देखता है, वही प्रणाम करता हैं। अर्थात इन्द्र, स्कन्द (कार्तिकेय) रुद्र (महादेव) शिव, वैश्रमण (उत्तर दिशा के लोकपाल-कुबेर) शान्त रुपावलो चण्डिका (पार्वती) रौद्र रुपवाली चाण्डिका अर्थात महिषासुर को पीटती चाण्डिका (पार्वत) राजा युवराज, तलवर, माडम्बिक, कौटूम्बिक, सार्थवाह, कौआ, कुत्ता, चाण्डाल इत्यादि सबको प्रणाम करता है। इनमें से उच्च व्यक्ति को देख कर उच्च रीति से प्रणाम करता हैं और नीच को देखकर नीचो रिति से प्रमाण करता है अर्थात जिस जिसको जिस रूप मे देखता है उसको उसी रुप मे प्रणाम करता है। इस कारण हे गौतम। इस प्रणाम प्रव्रज्या का नाम 'प्रणामा' प्रव्रज्या है।

तएणं से तामली मोरियपुत्ते तेणं ओरालेणं, विउलेणं, पयत्तेणं, पग्गहियेणं बालतवोकम्मेणं सुक्के, भुक्खे, जाव-धमणि सतंए जाए यावि होत्था, तएणं तस्स तामलिस्स बालतवस्सिस्स अण्णया कयाई पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि अणिच्चजागरियं जागरमाणस्स इयेमारुवे अज्झत्थिए,

चिंतिए जाव-समुप्पज्जि त्था, एव खलु अहं इमेण ओरालेणं, विपुलेण' जाव-उदग्गेण उदत्तेण, उत्तमेणं, महाणुभागेण, सुक्के, भुक्खे, जाव धमणिसतए जाए त अत्थिजा मे उट्टाणे, कम्से वले, वीरिए, पुरिसक्कारपरक्कमे तावता मे सेय, कल्ल जावजलते तामलीतीए णगरीए, दिट्ठाभट्ठेय पासडत्थे य, गिहत्थे य, पुव्वसगतिए य, परियायसगतिए य आपुच्छित्ता तामलीतीएनयरीए मज्भमज्भेणं णिगच्छित्ता, पाओग कुडियमादीय उवगरण, दारुमय, च पडिग्गह एगतं एडिता तामलितिणयरीए उत्तर पुरत्थिमे दिसिभाए णियत-णिय मडल आलिहित्ता सलेहणा झूसिअस्स भत्त-पाणपडि-याइक्खिअस्स, पाओवगयस्स काल अणवकंखमाणस्स विहरि-तिएत्ति कट्टु एव सपेहेइत्ता कल्ल जाव-जलते जाव-आपुच्छइ, आपुच्छित्ता तामलि एगते-एडेइ, जाव-भत-पाण-पडिया इक्खिए पाओवगमण णिवणो।

भावार्थ—इसके बाद वह मोर्यपुत्र तामली तापस उस उदार विपुल, प्रदत्त औरप्रगृहीत्त वल ताप द्वारा शुष्क (सूखा) वन गया, रूक्ष वन गया यावत् इतना दुवला हो गया कि उसकी नाडिया बाहर दिखने लगी इसके बाद किसी एक दिन पिछली रात्रि के समय अनित्य जागरणा जागते हुई तामली वाल तपस्वी को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि मैं इस उदार विपुल यावत् उग्र, उदात्त, उत्तम और महाप्रभावशाली तप कर्म के द्वारा शुष्क और रुक्ष हो गया हु

यावत् मेरा शरीर इतना कृश हो गया है कि नाड़िया बाहर दिखाई देने लग गई है । इसलिए जब तक मुझ मे उत्थान, कर्म बल, वीर्य और पुरुषाकारपराक्रम है तब तक मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि कल प्रात काल यावत् सूर्योदय होने पर मैं ताम्रलिप्ति नगरी में जाऊ। वहा पर दुष्टभाषित (दिख कर जिनके साथ बातचीत की गई हो) पाखण्डी जन, गृहस्थ, पूर्व परिचित (गृहस्थावस्था के परिचित) बाद परिचित (तपस्वी होने के बाद परिचय मे आये हुये) और मेरी जितनी दीक्षा पर्यायवाले तापसो को पूछकर, ताम्रलिप्ति नगरी के बीचों बीच से निकल कर पादुका (खडाऊ) तथा कुण्डी आदि उपकरणो को और लकडी के पात्र को एकान्त मे डालकर ताम्रलिप्ति नगरी के उत्तर पूर्व की दिशा भाग में अर्थात ईशान कोण में 'निर्वर्तनिक' (एक परिमित क्षेत्र अथवा अपने शरीर परिमाण जगह) मण्डल को साफ करके सलेखना तप के द्वारा आत्मा को सेवित कर आहार पानी का सर्वथा त्याग करके पादोपगमन सथारा करू एव मृत्यु की चाहना नही करता हुआ शान्त चित्त से स्थिर रहू यह मेरे लिए श्रेयस्कर है । ऐसा विचारकर यावत् सूर्योदय होने पर यावत् पूर्व कथितानुसार पूछकर उस तामली बाल तपस्वी ने अपने उपकरणो को एकान्त मे रखकर यावत आहार पानी का त्याग करके पादोप गमन नाम का अनशन कर दिया।

बलिचंचा के देवों का आकर्षण और निवेदन

तेरा कालेरा तेरा समएरा वलिचचा रायहारगी अरिणदा, अपुरोहिया या वि होत्था, तएरा ते वलिचचा रायहारिणवत्थ-

व्वया वहवे असुरकुमारा देवाय देवियो य तामलिं वालतवंसिं ओहिणा आहोयति, आहोयतित्ता अण्णमण्णं सद्दावेतिं अण्णमण्णं सद्दावेत्ता एव वयासि एव खलु देवाणुप्पिया। वलिचंचा रायहाणि अणिंदा, अपुरोहिया, अम्हे ण देवाणुप्पिया। इदाहीणा, इंदा हिट्ठिया, इदाहीणकज्जा, अय च ण देवाणुप्पिया। तामली वालतवस्सी तामलीत्तीए णयरीय वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभागे नियत्तणीय मडल आलिहित्त सले हणाभूमणा.भूसिए, भत्तपाणप डयाइक्खिए पाओवगमण निवण्णे, तसेय खलु देवाणुप्पिया अम्हे तामलि वालतवस्सि वलिचचाए रायहाणीए ठिर्ति पकप्प पकरावेतए त्ति कटट् अण्णमण्णस्स अतिए एयमटठ पडिसुणत्ति पडिसुणित्ता वलिचचाराय हाणीए मज्झमज्झेण णिगाच्छंत्ति जेणेव रुयइदे उप्पायपव्वए तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता वेउव्वियसमुग्घायेण समोहणण ति, जाव उत्तर वेउव्वयाई रुवाई विउव्विति, ताए उक्किट्ठाए, तुरियाए, चवलाए, चडाए, जयणाए, छेयाए, सीहाए, सिग्घाए, दिव्वाए उद्धयाए, देवगइए तिरिय असखेज्जाण दीव समुद्दाण मज्झमज्झेण जेणेव जबूदीवे, जेणेव भारहे वासे जेणेण तामलित्ति नगरीय, जेणेव तामलो मोरियपुत्ते तेणेव उवागच्छति, उवागच्छतित्ता, तामलिस वालतवसिस्स उप्पि, सपक्खि, सपडिदिसि ठिच्चा दिव्व देविड्ढ दिव्व देवज्जुई दिव्व देवाणुभाग, दिव्व बत्तीसविह णट्टविह

उवदसेंति तामलिं बालतवस्सिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति, वदंति, णमंसति, वंदित्ता, णमंसित्ता

भावार्थ --उस काल उस समय मे बलिचचा (उत्तर दिशा के असुरेन्द्र असुरराज चमर की राजधानी) इन्द्र और पुरोहित से रहित थी तब बलिचचा राजधानी मे रहने वाले बहुत से असुरकुमार देव और देवियों ने उस तामली बाल तपस्वी को अवधिज्ञान द्वारा देख कर उन्होने परस्पर देखा। एक दूसरे को आमंत्रित कर इस प्रकार कहा हे देवानुप्रियो। इस समय बलिचचा राजधानी इन्द्र और पुरोहित से रहित है। हे देवानुप्रियो। अपन सब इन्द्राधीन और इन्द्राधिष्ठित है अर्थात इन्द्र की अधीनता मे रहने वाले हैं। अपना सारा कार्य इन्द्र की अधीनता मे होता हैं हे देवानुप्रियो ! यह तामली बाल तपस्वी ताम्रलिप्ति नगरी के बाहर ईशान कोण मे नवंतनिक मण्डल को साफ करके सलेखना के द्वारा अपनी आत्मा को सयुक्त करके आहार पानी का त्याग कर और पादोपगमन अनशन को स्वीकार करके रहा हुआ है तो अपने लिए यह श्रस्कर है कि अपनी इस बलिचचा राजधानी मे इन्द्र रूप से आने के लिए इस तामली बालतपस्वी को सकल्प करावें। ऐसा विचार करके तथा परस्पर एक दूसरे की बात को मान्य करके वे सब असुरकुमार, बलिचचा राजधानी के बीचोबीच से निकल कर रूचकेन्द्र उत्पात पर्वत पर आए। वहा पर आ कर वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होकर यावत् उत्तर वैक्रिय रूप बना कर उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चण्ड जयवती,

निपुण, श्रमरहित, सिंह शीघ्र सदृश, उद्धत और दिव्य देवगति द्वारा तिर्छे असंख्य द्वीप समुद्रों के बीचोबीच होते हुए। इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की ताम्रलिप्ति नगरी के बाहर जहां मौर्य पुत्र तामली बाल तपस्वी था, आए। वहां आकर ऊपर आकाश में तामली बाल तपस्वी के ठीक सामने खडे रहे खडे रह कर दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देवकान्ति, दिव्य देवप्रभाव और बत्तीस प्रकार के दिव्य नाटक बतलाए। फिर तामली बालतपस्वी को तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दना नमस्कार किया।

एवं वयासी—एवं खलु देवाणुपिया! अम्हे बलि-चंचारायहाणी—वत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य, देवीओ य देवाणुप्पिया वंदामो, णमसामो, जाव-पज्जुवासामो, अम्हाणं देवाणुप्पिया बलिचंचा रायहाणी अणिंदा, अपुरोहिया, अम्हे णं देवाणुप्पिया! इंदाहीणा, इंदाहिट्ठिया, इंदाहीणकज्जा तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया! बलिचंचारायहाणिं आढह, परियाणह, सुमरह अट्ठं बंधह णियाणं पकरेह, ठिइपकप्पं पकरेह, तएणं तुब्भे कालमासे कालं किच्चा बलिचंचा रायहाणीए उववज्जिस्सह, तएणं तुब्भे अम्हं इंदा भविस्सह, तएणं तुब्भे अम्हहिं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरिस्सह।

भावार्थ—वन्दना नमस्कार करके वे इस प्रकार बोले हे देवानु-

प्रिय ! हम बलिचचा राजधानी मे रहने वाले बहुत से असुर-कुमार देव और देविया आपको बन्दना नमस्कार करते हैं, यावत् आपकी पर्यु‍पासना करते हैं। हे देवानु प्रिय ! अभी हमारी बलिचचा राजधानी इन्द्र और पुरोहित से रहित है । हे देवानु-प्रिय ! हम सब इन्द्राधीन और इन्द्राधिष्ठित रहने वाले हैं। हमारा सारा कार्य इन्द्राधीन होता है। इसलिए हे देवानुप्रिय ! आप बलिचचा राजधानी का आदर करो, उसका स्वामीपन स्वीकार करो, उसका मन में स्मरण करो, उसके लिए निश्चय करो, निदान (नयाणा) करो और बलिचचा राजधानी का स्वामी बनने का सकल्प करो । हे देवानुप्रिय ! यदि आप हमारे कथनानुसार करेंगे, तो यहा काल के अवसर पर काल, करके आप बलिचचा राजधानी मे उत्पन्न होंगे और वहा उत्पन्न हो कर हमारे इन्द्र बनेंगे, तथा हमारे साथ दिव्य भोग भोगते हुये आनन्द का अनुभव करेंगे ।

तएणं से तामली बालतवस्सी तेहिं बलिचचा राय-हाणि वत्थव्वेहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं, देवीहिं, य एव वुत्ते समाणे एयमट्ठं णो आढाइ, णो परियाणेइ, तुसिणीय सचिट्ठइ तएणं ते बलिचचारायहाणि वत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य, देवीयो य तामलिं मोरियपुत्तं दोच्च पि तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंति, जाव अम्हं च णं देवाणुप्पिया ! बलिचचारायहाणि अणिंदा, जाव ठिइपकप्प पकरेह जाव-दोच्च पि तच्चपि एव वुत्ते समाणे

तुसिणीय सचिट्ठइ तएण से बलिचचारायहाणि वत्थव्वया वहवे असुरकुमारा देवा य, देवीयो य तामलीणा बाल-तवस्सिणा अणाढाइज्जामाणा, अपरियाणिज्जमाणा, जामेव, दिसि पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ।

जब बलिचचा राजधानी मे रहने वाले बहुत से असुर कुमार देव और देवियो ने उस तामली बाल तपस्वी को पूर्वोक्त प्रकार से कहा, तो उसने उनकी बात का आदर नही किया, स्वीकार नही किया, परन्तु मौन रहा ।

तब वे बलिचचा राजधानी मे रहने वाले बहुत से असुर कुमार देव और देवियों ने उस तामली बाल तपस्वी की फिर तीन बार प्रदक्षिणा करके दूसरी बार, तीसरी बार इसी प्रकार कहा कि आप हमारे स्वामी बनने का सकल्प करे इत्यादि । किन्तु उस तामली बाल तपस्वी ने उनकी बात का कुछ भी उत्तर नही दिया और मौन रहा इसके बाद जब तामली बालतपस्वी के द्वारा उस बलिचचा राजधानी मे रहने वाले बहुत से असुरकुमार देव और देवियो का अनादर हुआ और उन की बात मान्य नही हुई, तब वे देव और देविया जिस दिशा से आये थे उसी दिशा मे वापिस चले गए ।

ईशान कल्प में उत्पत्ति

तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे कप्पे अणिंदे अपुरोहिए या वि होत्था, तएणं से तामली बालतवस्सी बहुपडि पुण्णाइं सट्ठिं वाससहस्साइं परियाग पाउणित्ता, दोमासियाए सलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सवीसं भत्तसयं अणसणाए छेदित्ता, कालमासे कालं किच्चा ईसाणे कप्पे, ईसाणवडिंसिए विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि, देवदूसतरिए अंगुलस्स असंखज्जभागमेत्तीए ओगाहणाए ईसाणे देविंदे विरहिय कालं समयसि ईसाणं देविंदत्ताए उववण्णे तए णं से ईसाणे देविंदे देवराया अहुणोववण्णे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ, तंजहा आहारपज्जत्तीए, जाव-भासा मणपज्जतीए ।

भावार्थ—उस काल उस समय मे ईशान देवलोक इन्द्र और पुरोहित रहीत था । वह तामली बालतपस्वी पूरे साठ हजार वर्ष तक तापसपर्याय का पालन करके दो महीने की संलेखना से आत्मा को संयुक्त करके एक सौ बीस भक्त अनशन का छेदन करके और काल के अवसर काल करके ईशान देवलोक के ईशानावतसक विमान की उपपात सभा की देवशय्या—जो कि देववस्त्र से ढकी हुई है उसमे अंगुल के असख्येय भाग जितनी अवगाहना में ईशान देवलोक के इन्द्र के विरह (अनुपस्थिति) काल मे ईशानेन्द्र रूप

से उत्पन्न हुआ । तत्काल उत्पन्न हुआ वह देवेन्द्र देवराज ईशानेन्द्र पाच प्रकार की प्रयाप्तियो से प्रयाप्त बना । अर्थात् (१) आहार प्रयाप्ति (२) शरीर प्रयाप्ति (३) इन्द्रीय प्रयाप्ति (४) श्वासोच्छ-वास प्रयाप्ति और (५) भाषा मन प्रयाप्ति (देवो के भाषा और मन प्रयाप्ति शामिल बन्धती हैं इस लिए) इन पाच प्रयाप्तियों से प्रयाप्त बना ।

असुरकुमारों द्वारा तामली के शव की कदर्थना

तएणं ते बलिचचारायहाणि वत्थव्वया वहवे असुर-कुमारा देवा य, देवीओ य तामलिं वालतवस्सिं कालगय जाणित्ता, ईसाणे य कप्पे देविंदत्ताए उववण्णं पासित्ता, आसुरत्ता कुविया, चंडिक्किया, मिसिमिसेमाणा बलिचचाए रायहाणीए मज्झमज्मेणं णिग्गच्छति ताए उक्किट्ठाए, जाव-जेणेव भारहे वासे, जेणेव तामलित्तीए णयरी, जेणेव तामलिस्स वालतवसिस्स सरीरए तेणेव उवागच्छति, वामे पाए सुबेणं वधति, वधित्ता तिक्खुत्तो मुहे उट्ठुहति, उट्ठुहित्ता तामलित्तीए णयरीए सिंघाडग तिग-चउक्क चच्चर चउम्मुहमहापहेसु आकड्ढ—विकड्ढिं करेमाणा महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणा एव वयासी—से के ण भो ! तामली वालतवस्सी सयगहिय लिंगे पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइए ? के स णं से ईसाणे कप्पे ईसाणे देविंदे

देवराया ति कट्टु तामलिस्स बालतवस्सिस्स सरीरय हीलति णिंदति, खिसति, गरिहंति, अवमण्णति, तज्जति, तालेति, हीलेत्ता जाव-आकड्ढ विकड्ढि करेत्ता एगत्तें एडति, जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ।

भावार्थ—इसके बाद बलिचचा राजधानी मे रहने वाले बहुत से असुर कुमार देव और देवियो ने जब यह जाना कि तामली बाल तपस्वी काल धर्म को प्राप्त हो गया है और ईशान देवलोक में देवेन्द्र रूप से उत्पन्न हुआ है । तब क्रोध के वश अत्यन्त कुपित हुए । तत्पश्चात वे सब बलिचचा राजधानी के बीचोबीच निकले यावत् उत्कृष्ट देव गति के द्वारा इस जम्बूद्वीप के भारत क्षेत्र की ताम्रलिप्ति नगरी के बाहर जहा तामली बाल तपस्वी का मृत शरीर था वहा आए । फिर तामली बाल तपस्वी के मृत शरीर के बाएं पैर को रस्सी से बाधा और उसके मुख में तीन बार थूका । फिर ताम्रलिप्ति नगरी के सिंघाडे के आकार के तीन मार्गों में चार मार्गों के चौंक मे एव महामार्गों में अर्थात ताम्रलिप्ति नगरी के सभी प्रकार के मार्गों मे उसके मृत शरीर को घसीटने लगे । और महोच्चध्वनि द्वारा उद्घोषणा करते हुए , इस प्रकार कहने लगे कि " स्वयमेव तपस्वी का वेष पहन कर ' प्रणामा ' प्रव्रज्या अंगीकार करने वाला यह तामली बाल तपस्वी हमारे सामने क्या है ? इस प्रकार कह कर उस तामली बाल तपस्वी की हीलना, निन्दा, खिसना, गर्हा, अपमान तर्जना, ताडना, कर्दपना और

भर्त्सना की और अपनी इच्छानुसार आडा टेढा घसीटा । ऐसा करके उसके शरीर को एकान्त मे डाल दिया और जिस दिशा से आये थे उसी दिशा मे वापिस चले गए।

ईशानेन्द्र का कोप

तएणं ते ईसाण कप्पवासी बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य वलिचचारायहाणि वत्थव्वएहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहि देवीहिं य तामलिस्स बालतवस्सिस्स सरीरय हीलिज्जमाणं, णिदिज्जमाणं जावआकढ्ढविकड्ढ कीरमाणं पासन्ति, पासित्ता आसुरुत्ता, जाव—मिसिमिसेमाणा जेणेव ईसाणे देविंदे देवराया तेणेव उवागच्छति, करयल-परिग्गहिंय दसणह सिरसावत्त मत्थए अजलिं कट्टु जएणं विजएणं बद्धावेंति ।

एव वयासी —एव खलु देवाणुप्पिया ! वलिचचारायहाणि वत्थव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य देवाणुप्पिये कालगए जाणित्ता, ईसाणे कप्पे इदत्ताए उववण्णे पासित्ता, आसुरुत्ता, जाव एगते एडेंति जामेव दिसि पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया, तएणं से ईसाणे देविंदे देवराया तेसिं ईसाणकप्पवासीणं बहूणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य अतिए एयमट्ठ सोच्चा, णिसम्म आसुरत्तो, जाव-

मिसिमिसेमाणे तत्थेव सय-णिज्जवरगए तिवलिय भिउडिं णिडाले साहट्टु बलिचचारायहाणिं अहे, सपक्खि, सपडि-दिसिं समभिलोएइ। तएण सा बलिचचा रायहाणी ईसाणेणं देविंदेणं देवरण्णा अहे सपक्खि सपडिदिसिं समभिलोइया समाणा तेणं दिव्वप्पवेणं इगालब्भूया मुम्मुरभूया छारिभूया, तत्ता समजोइब्भूया जायायावि विहोत्था।

इस के बाद ईशान देवलोक मे रहने वाले बहुत से वैमानिक देव और देवियो ने इस प्रकार देखा कि बलिचचा राजधानी मे रहने वाले बहुत से असुर कुमार देव और देविया तामली बाल तपस्वी के मृत शरीर की हीलना, निन्दा, खिसनादि कर रहे हैं और यावत उस मृतकलेवर को अपनी इच्छानुसार आडाटेढा घसीट रहे हैं।

इस प्रकार देखने से उन देव और देवियो को बडा क्रोध आया क्रोध से मिसमिसाट करते हुए वे देवेन्द्र देवराज ईशानेन्द्र के पास आकर दोनो हाथ जोड कर मस्तक पर अजलि करके इन्द्र को जय विजय शब्दो से बधाया फिर वे इस प्रकार बोले—"हे देवानुप्रिय ! बलिचचा राजधानी मे रहने वाले बहुत से असुर कुमार देव और देविया आपदेवानुप्रिय को काल धर्म प्राप्त हुए एव ईशान कल्प मे इन्द्र रूप से उत्पन्न हुए देखकर बहुत कुपित हुए हैं, यावत आपके मृत शरीर को अपनी इच्छानुसार आडाटेढा घसोट कर एकान्त में डाल दिया है। और वे जिस दिशा से आए उसी दिशा को वापिस चले गए हैं। जब देवेन्द्र

देवराज ईशान ने ईशान कल्प मे रहने वाले बहुत से वैमानिक देव और देवियो से यह बात सुनी तब बहुत बडा कुपित हुआ और क्रोध से मिसमिसाट करता हुआ देवशय्या मे रहा हुआ ही वह ईशानेन्द्र ललाट मे तीन सल डाल कर एव भृकुटी चढाकर बलिचचा राजधानी की ओर एक (टक) दृष्टि से देखने लगा। इसी प्रकार क्रोध से देखने पर उस दिव्य प्रभाव से बलिचचा राजधानी अगार, अग्नि के कण, राख एव तपी हुई बालू रेत के समान अत्यन्त तप्त हो गई।

असुरों द्वारा क्षमा याचना

तएण ते वलिचचारायहाणि वत्थव्वया वहवे असुर कुमारा देवाय देवीओ य तं वलिचंचारायहाणि इगालब्भूय, जाव-समजोइब्भूय पासति, पासित्ता भीया, उत्तत्था—तसिया, उव्विग्गा, सजायभया सव्वओ समता आधावति परिधावति अण्णमण्णस्स काय समतुरगे माणा चिट्ठति, तए ण ते वलिचचारायहाणिवत्थव्वया वहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य ईसाण देविंद देवराय परिकुविअय जाणित्ता ईसाणस्स देविंदस्स, देवरण्णो त दिव्व देविड्ढि, दिव्व देवज्जुई, दिव्व देवाणु भाव दिव्व तेय लेस्सं असहमाणा सव्वे सपक्खि सपडिदिसि ठिच्चा करयलपरिग्गहिय दसणह सिर

सावत्त मत्थए अजलि कट्टू जएणा विजएणं वद्धाविंति, एवं वयासि—अहो ! णं देवाणुप्पिएहिं दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमण्णागया त दिट्ठा णं देवाणुप्पियाण दिव्वा देविड्ढी जाव लद्धा, पत्ता, अभिसमण्णा गया, त खामे मोण देवाणुप्पिया खमतु म देवाणुप्पिया खमतु मरिहतु णं देवाणुप्पिया । णाई भुज्जो २ एव करणयाए तिकट्टु एयमट्ठ सम्म विणएणं भुज्जो २ खामेति, तएण से ईसाणे देविदे देवराया तेहिं बलिचचारायहाणिवत्थव्वेहिं बहूहिं असुरकुमारे हिं देवेहिं देवीहीं य एयमट्ठ सम्मं विणएण भुज्जो भुज्जो खामिए समाणे त दिव्वं देविड्ढि जाव तेयलेस्स पडिसाहरेइ तप्पमिइ च णं गोयमा ! ते बलिचचारायहाणि वत्यव्वया बहवे असुरकुमारा देवा य देवीओ य ईसाणा देविंद देवराय आढति जाव-पज्जुवासति ईसाणस्स देविदस्स देवरण्णो आणा उववायवयण णिद्देसे चिट्ठंति, एव खलु गोयमा ! ईसाणेण देविंदेणं, देवरण्णा सा दिव्वा देविड्ढी जाव—अभिसमण्णागए ।

बलिचचा राजधानी को तप्त हुई जानकर वे असुरकुमार देव और देविया अत्यन्त भयभीत हुए, त्रस्त हुए, उदविग्न हुए और भय के मारे चारो तरफ इधर उधर दौडने लगे और एक दूसरे के पीछे छिपने लगे । जब असुर कुमार देव और देवियो को पता लगा कि ईशानेन्द्र के कुपित होने से यह हमारी राज

धानी तप्त बन गई है। तब वे उस ईशानेन्द्र की दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति, दिव्य देवप्रभाव और दिव्य तेजोलेश्या को सहन नहीं करते हुये देवेन्द्र देवराज ईशान के ठीक सामने ऊपर की ओर मुख करके दोनो हाथ जोड कर, मस्तक पर अजलि करके ईशानेन्द्र की जय विजय शब्दो द्वारा बधाया और इस प्रकार निवेदन किया कि ' हे देवानुप्रिय ! आप को जो जो दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति, दिव्य देवप्रभाव मिला है, प्राप्त हुआ हैं सम्मुख आया है। उसको हमने देखा। हे देवानुप्रिय ! हम अपनी भूल के लिए क्षमा चाहते हैं। आप क्षमा प्रदान करे। आप क्षमा करने योग्य हैं। हम फिर कभी इस प्रकार की भूल नही करेंगे। इस प्रकार उन्होने ईशानेन्द्र से अपने अपराध के लिए विनयपूर्वक क्षमा मागी। उनके क्षमा मागने पर ईशानेन्द्र ने उस दिव्य देवऋद्धि यावत अपनी छोडी हुई तेजोलेश्या को वापिस खीच लिया।

हे गौतम ! तब से बलिचचा राजधानी में रहने वाले असुर कुमार देव और देविया, देवेन्द्र देवराज ईशान का आदर करते हैं। और तभी से उनकी आज्ञा, सेवा, आदेश और निर्देश से रहते हैं। हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज ईशान को वह दिव्य देवऋद्धि इस प्रकार मिली है।

प्रश्न—ईसाणस्सरण भते ! देविदस्स देवरण्णो ! केवइय
काल ठिइ पण्णता ?

उत्तर—गोयमा ! साइरेगाई दो-सागरोवमाईं ठिई पएणत्ता।

प्रश्न—ईसाणे णं भंते ! देविंदे देवराया ताओ देव-लोगाओ आउक्खएणं, जाव—कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ ?

उत्तर—गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, जाव-अंत काहिइ ।

प्रश्न—हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान की स्थिति कितने काल की कही गई है ।

उत्तर—हे गौतम ! देवन्द्र देवराज ईशान, की स्थिति दो सागरोपम से कुछ अधिक की कही गई है ।

प्रश्न—हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान उस देवलोक की आयु पूर्ण होने पर कहा जाएगा और कहा उत्पन्न होगा ?

उत्तर—हे गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सिद्ध होगा यावत समस्त दुखो का अन्त करेगा ।

शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र के विमानों की उचाई

प्रश्न—सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो विमाणेहितों ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो विमाणा ईसिं उच्चयरा चेव, ईसिं, उण्णयरा चेव, ईसाणस्स वा देविंदस्स,

देवरण्णो विमाणेहितों सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो विमाणा ईसिं णयिरा चेव, ईसिं णिएणयरा चेव ?

उत्तर—हता, गोयमा ! सक्कस्स त चेव सव्व णेयव्व ।

प्रश्न—से केणट्ठेण भंते ?

उत्तर—गोपमा ! से जहा णामए करयले सिया देसे उच्चे देसे उएणए देसे णीए देसे णिएणे, से तेणट्ठेण गोपमा ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो जाव--ईसि णिएणयरा चेव ।

प्रश्न—हे भगवन् ! क्या देवेन्द्रदेवराज शक्र के विमानो से देवेन्द्र देवराज ईशान के विमान कुछ (थोडे से) ऊचे हैं, कुछ उन्नत हैं ? क्या देवेन्द्र देवराज ईशान के विमानो से देवेन्द्र देवराज शक्र के विमान कुछ नीचे हैं ? कुछ निम्न हैं ?

उत्तर—हा गौतम ! यह इसी तरह से है । यहा ऊपर का सूत्र पाठ उत्तर रूप से समझना चाहिए । अर्थात शक्रेन्द्र के विमानो से ईशानेन्द्र के विमान कुछ थोडे से ऊचे हैं, कुछ थोडे से उन्नत हैं और ईशानेन्द्र के विमानो से शक्रेन्द्र के विमान कुछ थोड़े नीचे हैं, कुछ थोडे निम्न हैं ।

प्रश्न—हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

उत्तर—हे गौतम ! जैसे—हथेली का एक भाग कुछ ऊचा और उन्नत होता है और एक भाग कुछ नीचा और निम्न होता है। इसी तरह शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र के विमानो के विषय मे जानना चाहिए। इसी कारण से पूर्वोक्त प्रकार से कहा जाता है।

दोनों इन्द्रों का शिष्टाचार

प्रश्न—पभूण भंते ! सक्के देविंदे देवराया ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियं पाउब्भवित्तए ?

उत्तर—हंता, पभू।

प्रश्न—से णं भंते ! किं आढायमाणे पभू, अणाढायमाणे पभू ?

उत्तर—गोयमा ! आढायमाणे पभू, नो अणाढायमाणे पभू।

प्रश्न—पभू णं भंते ! ईसाणे देविंदे देवराया, सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियं पाउब्भवित्तए ?

उत्तर—हंता, पभू।

प्रश्न—से णं भंते ! किं आढायमाणे पभू, अणाढायमाणे पभू ?

उत्तर—गोयमा ! आढायमाणे वि पभू, अणाढायमाणे वि पभू ।

प्रश्न—पभू ण भंते ! सक्के देविंदे देवराया, ईसाणं देविंद देवराय सपक्खि, सपडिदिसिं समभिलोइत्तए ?

उत्तर—जहा पाउब्भवणा, तहा दो वि आलावगा णेयव्वा ।

प्रश्न—पभू णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया ईसाणेणं देविंदेण देवरण्णा सद्धिं आलावं वा, सलावं वा करेत्तए ?

उत्तर—हंता ! पभु जहा पाउब्भवणा ।

प्रश्न—अत्थि णं भंते ! तेसिं सक्की—साणाणं देविंदाणं देवराईणं किच्चाई, करणिज्जाइं समुप्पज्जंति ।

उत्तर—हंता, अत्थि ।

प्रश्न—हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान, देवेन्द्र देवराज शक्र के पास आने में समर्थ है ?

उत्तर—हां, गौतम ! ईशानेन्द्र, शक्रेन्द्र के पास आने में समर्थ है ।

प्रश्न—हे भगवन् ! जब ईशानेन्द्र, शक्रेन्द्र के पास आता है, तो

क्या वह शक्रेन्द्र का आदर करता हुआ आता है या अनादर करता हुआ आता है ?

उत्तर—हे गौतम ! जब ईशानेन्द्र, शक्रेन्द्र के पास आता है, तब आदर करता हुआ भी आ सकता है और अनादर करता हुआ भी आ सकता है।

प्रश्न—हे भगवन् ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, देवेन्द्र देवराज ईशान के सपक्ष (चारों तरफ) सप्रातदिश (सब तरफ) देखने में समथ है ?

उत्तर—हे गौतम ! जिस तरह से पास आने में दो अलापक कहे हैं, उसी तरह से देखने के सम्बन्ध में भी दो अलापक कहने चाहिए ।

प्रश्न—हे भगवन् ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, देवेन्द्र देवराज ईशान के साथ आलाप संलप बातचीत करने में समर्थ है ?

उत्तर—हा गौतम ! वह अलाप सलाप-बातचीत करने मे समर्थ है । जिस तरह आने के सम्बन्ध में दो अलापक कहे हैं, उसी तरह आलाप सलाप के विषय में भी दो आलापक कहने चाहिए ।

प्रश्न—हे भगवन् ! उन देवेन्द्र देवराज शक्र और देवेन्द्र देवराज

ईशान के बीच मे परस्पर कोई कृत्य (प्रयोजन) करणीय (विधेयकार्य) होता है ?

उत्तर—हा गौतम ! होता है

प्रश्न—से कहमियाणि पकरेति ?

उत्तर—गोयमा ! ताहे चेव ण से सक्के देविदे देवराया ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो अतिअं पाउब्भवइ, ईसाणे वा देविंदे देवराया सक्कस्स देविंदस्स, देवरण्णो अतिअ पाउब्भवइ—इति "भो ! सक्का ! देविंदा ! देवराया ! दाहिणड्ढलोगाहिवई" ! इति "भो ! ईसाणा ! देविंदा ! देवराया ! उत्तरड्ढलोगाहिवई' इति भो ! इति भो। ति ते अण्णमण्णस्स किच्चाइ करणिज्जाइ पच्चणुब्भवमाणा विहरति।

प्रश्न—हे भगवन् ! जब उन्हें कृत्य और करणीय होते है तब वे किस प्रकार का व्यवहार करते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! जब देवेन्द्र देवराज शक्र को काय होता है तब वह देवेन्द्र देवराज ईशान के पास आता है और जब देवेन्द्र देवराज ईशान को कार्य होता है, तब वह देवेन्द्र देवराज शक्र के पास आता है उनके परस्पर सम्बोधित करने का तरीका यह है ईशानेन्द्र पुकारता है कि—'हे

दक्षिण लोकाधिपति देवेन्द्र देवराज ईशान ! (यहां 'इति' शब्द कार्य को सूचित करने के लिए है और 'भो' शब्द आमन्त्रणवाची है । ' इति भो ! इति भो ' यह उनके परस्पर सम्बोधित करने का तरीका है ।) इसी प्रकार सम्बोधित करके वे परस्पर अपना कार्य करते हैं ।

सनत्कुमारेन्द्र की मध्यस्थता

प्रश्न—अत्थि णं भंते ! तेसिं सक्की-साणाणं देविंदाणं, देवराईणं विवादा समुप्पज्जंति ?

उत्तर—हंता, अत्थि ।

प्रश्न—से कहमियाणिं पकरेंति ?

उत्तर—गोयमा ! ताहे चेव णं ते सक्की—साणा देविंदा देवरायाणो सणंकुमारं देविंदं देवरायं मणसी-करेंति, तएणं से सणंकुमारे देविंदे देवराया तेहिं सक्की साणेहिं देविंदेहिं देवराईहिं मणसी कए समाणे खिप्पामेव सक्कीसाणाणं देविंदाणं देविराईणं अंतिअं पाउब्भवइ, जं से वयई तस्स आणा-उववाय-वयण णिद्देसे चिट्ठन्ति ।

प्रश्न—क्या देवेन्द्र देवराज शक्र और देवेन्द्र देवराज ईशान, इन दोनों में परस्पर विवाद भी होता है ?

उत्तर—हा गौतम ! उन दोनो इन्द्रो के बीच में विवाद भीहोता है ।

प्रश्न—हे भगवन् ! जब उन दोनो इन्द्रो के बीच में विवाद हो जाता है, तब वे क्या करते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! जब शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र, इन दानो के बीच मे विवाद हो जाता है, तब वे दोनो, देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार का मन मे स्मरण करते हैं । उनके स्मरण करते ही सनत्कुमारेन्द्र उनके पास आता है। वह आकर जो कहता है उसको वे दोनो इन्द्र मान्य करते हैं । वे दोनो इन्द्र उसकी आज्ञा, सेवा, आदेश और निर्देश में रहते हैं ।

सनत्कुमारेन्द्र की भवासिद्धिकता

प्रश्न—सणकुमारे ण भंते ! देविंदे देवराया, किं भवसिद्धिए, अभवसिद्धिए ? सम्मदिट्ठी, मिच्छदिट्ठी ? परित्तसंसारए, अणतससारए ? सुलहबोहिए, दुल्लहबोहिए ? आराहए, विराहए ? चरिमे, अचरिमे ?

उत्तर—गोयमा ! सणकुमारे ण देविंदे देवराया भवसिद्धिए नो अभवसिद्धिए । एव सम्मदिट्ठी, परित्तससारए, सुलहबोहिए, आराहए, चरमे-पसत्थ णेयव्व ।

प्रश्न—से केणट्ठेण भते ?

उत्तर—गोयमा ! सणकुमारे देविंदे देवराया वहुणं समणाण वहुणं समणीणं, वहुणं सावयाण, वहुणं सावियाणं हियकामए सुहकामए पत्थकामए आणुकंपिए णिस्स-यसिए, हिय-सुह (निस्सेयसिए निस्सेसकामए) से तेणट्ठेण गोयमा! सणकुमारे णं भवसिद्धिए, जाव नो अचरिमे ।

प्रश्न—हे भगवन् क्या देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार भवसिद्धिक है या अभवसिद्धिक है ? सम्यग्दृष्टि है । या मिथ्यादृष्टि है ? परित्तससारी (परिमित ससारी) है, या अनन्त ससारी है ? सुलभबोधि है, या दुर्लभबोधि है ? अराधक है या विराधक है ? चरम है या अचरम है ?

उत्तर—हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार, भवसिद्धिक है, इसी तरह वह सम्यग्दृष्टि है, परित्तससारी है, सुलभबोधि है, अराधक है. चरम है। अर्थात् इस सम्बन्ध मे सब प्रशस्त पद ग्रहण करने चाहिए।

प्रश्न—हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

उत्तर—हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार, बहुत साधु, बहुत साध्वी, वहुत श्रावक, बहुत श्राविका, इन सब का हितकामी (हितेच्छु-हित चाहने वाला) सुखकामी (सुख चाहने वाला) पथ्य कामी (पथ्य का चाहने वाला), अनुकम्पक (अनुकम्पा

करने वाला) निःश्रेयसकामी (कल्याण चाहने वाला) है। हित, सुख और निःश्रेयस् का चाहने वाला है इसका कारण है गौतम्! सनत्कुमार देवेन्द्र देवराज भवसिद्धिक है यावत् चरम है।

प्रश्न—सणंकुमारस्स णं भंते! देविंदस्स देवरण्णो केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उत्तर—गोयमा! सत्तसागरोवमाणि ठिई पण्णत्ता?

प्रश्न—से णं भंते! ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव कहिं उववज्जिहिइ?

उत्तर—गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, जाव अंतं करेहिइ। सेवं भंते! सेवं भंते!

प्रश्न—हे भगवन्! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर—हे गौतम! सनत्कुमार देवेन्द्र की स्थिति सात सागरोपम की कही गई है।

प्रश्न—हे भगवन्! सनत्कुमार देवेन्द्र की आयु पूर्ण होने पर वह वहां से चव् कर यावत् कहां उत्पन्न होगा?

उत्तर—हे गौतम! सनत्कुमार वहां से चव कर महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सिद्ध होगा यावत् सब दुखो का अन्त करेगा।

सेव भते! सेव भते!! हे भगवन्! यह इसी प्रकार है! हे भगवन् यह इसी प्रकार है! ऐसा कह कर गौतम स्वामी विचरते हैं।

असुर मार देवों के स्थान

प्रश्न—तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णाम णयरे होत्था जाव-परिसा पज्जुवासइ । तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिंदे असुरराया चमरचंचाए रायहाणिए, सभाए सुहम्माए, चमरंसि सीहासणंसि, चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं जाव-णट्ठविहिं उव-दसेत्ता, जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए । भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणे भगवं महावीरं वंदई णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-अत्थि णं भंते । इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

उत्तर—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे एवं जाव—अहेसत्तमाए पुढवीए सोहम्मस्स कप्पस्स अहे जाव ।

प्रश्न—अत्थिणं भंते ! ईसिप्पब्भाए पुढवीए अहे असुर-कुमारा देवा परिवसति ?

उत्तर—णो इणट्ठे समट्ठे ।

प्रश्न—से कहिं खाई ण भंते ! असुरकुमारा देवा परि-
वसंति ?

उत्तर—गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर
जोयणसयसहस्सबाहल्लाए, एव असुरकुमारदेववत्त-
व्वया, जावदिव्वाइं भोगभोगाइ भुजमाणा विहरंति।

प्रश्न—उस काल उस समय मे राजगृह नाम क नगर था
यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी । उस काल उस समय
मे चौसठ हजार सामानिक देवो से परिवृत्त (घिरे हुए)
और चमर नामक सिंहासन पर बैठे हुए चमरेन्द्र ने
भगवान् को देखकर यावत् नाटय-विधि बतलाकर जिस
दिशा से आया था, उसी दिशा मे वापिस चला गया।
ऐसा कह कर गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर
स्वामी को वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—
कि हे भगवन् ! क्या असुरकुमार देव, इस रत्नप्रभा
पृथ्वी के नीचे रहते हैं ।

उत्तर—हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही हैं रहते अर्थात
असुर कुमार देव, इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे नही रहते
हैं । इसी तरह सोधर्म देवलोक के नीचे यावत् दूसरे
सभी देव लोको के नीचे भी असुरकुमार देव भी नही
रहते हैं ।

प्रश्न—हे भगवन् क्या ईपत्प्राग्भार पृथ्वी के नीचे भी असुर

कुमार देव रहते हैं ।

उत्तर—हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही अर्थात ईसत्प्राग्भार पृथ्वी के नीचे भी असुर कुमार देव नही रहते हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! तब ऐसा कौन सा प्रसिद्ध स्थान है जहा असुर कुमार देव निवास करते हैं ?

उत्तर—हे गौतम इस रत्नप्रभा पृथ्वी की मोटाई (जाडाई) एक लाख अस्सी हजार योजन की है ?
इसके बीच मे असुर कुमार देव रहते हैं। (यहाँ पर असुरकुमार सम्बन्धी सारी वक्तव्यता कहनी चाहिए। यावत् वे दिव्य भोग भोगते हुए विचरते हैं।)

असुरकुमारों का गमन सामर्थ्य

प्रश्न—अत्थि ण भंते ! असुरकुमाराणं देवाण अहेगई विसए ?

उत्तर—हता, अत्थि ।

प्रश्न—केवइय च ण पभू ते असुरकुमाराण देवाण अहेगइ विसए पण्णत्ते ?

उत्तर—गोयमा ! जाव—अहे सत्तमाए पुढवीए, तच्च पुण पुढविं गयाय, गमिस्सति य ।

प्रश्न—किंपत्तिय ण भंते ! असुरकुमारा देवा तच्च पुढविं गयाय, गमिस्सति य ?

उत्तर—गोयमा ! पुव्ववेरियस्स वा वेयणउदीरणयाए, पुव्व-संगइयस्स वा वेयण उवसामणयाए, एव खलु असुर-कुमारा देवा तच्च पुढविं गयाय, गमिस्सति य।

भावार्थ—हे भगवन् ! क्या असुरकुमारो का सामर्थ्य अपने स्थान से नीचा जाने का है ?

उत्तर—हां गौतम ! उनमे अपने स्थान से नीचा जाने का सामर्थ्य है।

प्रश्न—हे भगवन् ! वे असुर कुमार अपने स्थान से कितने नीचे जा सकते है ?

उत्तर—हे गौतम ! असुरकुमार सातवी पृथ्वी तक नीचे जाने की शक्ति वाले हैं, परन्तु वे वहा तक कभी गए नही, जाते नही और जाऐगें भी नहीं, किन्तु तीसरी पृथ्वी तक गए हैं, जाते हैं और जावेगें।

प्रश्न—हे भगवन् असुरकुमार देव, तीसरी पृथ्वी तक गए, जाते हैं ओर जाऐगें इसका क्या कारण है ?

उत्तर—हे गौतम ! असुरकुमार देव अपने पूर्व शत्रु को दुख देने के लिए पूर्व मित्र का दुख दूर कर सुखी बनाने के लिए

उत्तर—गोयमा ! जे इमे अरिहता भगवता एएसि ण जम्मणमहेसु वा, णिक्खमणमहेसु वा, णाणुप्पायमहिमासु वा, परिणिव्वाणमहिमासु वा एव खलु असुरकुमारा देवा णदिस्सवर दीव गया य, गमिस्सति य।

प्रश्न—हे भगवन् ! असुरकुमार देव नन्दीश्वर द्वीप तक गए हैं जाते हैं और जाएंगे ! इसका क्या कारण है ?

उत्तर—हे गौतम ! अरिहत भगवतो के जन्म महोत्सव मे, निष्क्रमण (दीक्षा) महोत्सव मे केवलज्ञानोत्पत्ति महोत्सव में और परिनिर्वाण महोत्सव में असुरकुमार देव नन्दीश्वर द्वीप मे गए हैं, जाते हैं और जाएंगे। अरिहन्त भगवन्तो के जन्म महोत्सव आदि असुरकुमार देवो के नन्दीश्वर द्वीप जाने मे कारण है।

प्रश्न—अत्थि ण असुरकुमाराण देवाण उड्ढ गइविसए ?

उत्तर—हता, अत्थि ।

प्रश्न—केवइय च णं भते ! असुरकुमाराण देवाण उड्ढ गइविसए ?

उत्तर—गोयमा ! जावऽच्चु कप्पे, सोहम्म पुण कप्प गया य गमिस्सति य ।

तीसरी पृथ्वी तक गए है, जाते हैं और जाऐगें ।

प्रश्न—अत्थि ण भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं तिरियगइ विसए पण्णत्तो ?

उत्तर—हन्ता, अत्थि ।

प्रश्न—केवइयं च णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं तिरिय गइविसए पण्णत्ते ?

उत्तर—गोयमा ! जाव—असंखेज्जादीव-समुद्दा, णंदिस्सवरं पुण दीवं गयाय गमिस्संति य ।

प्रश्न—हे भगवन् ! क्या असुरकुमार देव, तिरछी गति करने मे समर्थ हैं ?

उत्तर—हा, गौतम ! असुरकुमार देव तिरछी गति करने मे समर्थ हैं ।

प्रश्न—हे भगवन् ! असुरकुमार देव, अपने स्थान से कितनी दूर तक तिरछी गति करने मे समर्थ है ?

उत्तर—हे गौतम ! असुरकुमार देव, अपने स्थान से यावत् असख्य द्वीप समुद्रो तक तिरछी गति करने मे समथ है ! किन्तु वे नन्दीश्वर द्वीप तक गए है, जाते हैं और जाऐगें ।

असुरकुमारों के नन्दीश्वर गमन का कारण

प्रश्न—किंपत्तियं णं भंते ! असुरकुमारा देवा णंदिस्सवरं दीवं गया य, गमिस्संति य ?

उत्तर—गोयमा ! जे इमे अरिहता भगवता एएसि ण जम्मणमहेसु वा, णिक्खमणमहेसु वा, णाणुप्पायमहिमासु वा, परिणिव्वाणमहिमासु वा एव खलु असुरकुमारा देवा णदिस्सवर दीव गया य, गमिस्सति य ।

प्रश्न—हे भगवन् ! असुरकुमार देव नन्दीश्वर द्वीप तक गए हैं जाते हैं और जाएंगे ! इसका क्या कारण है ?

उत्तर—हे गौतम ! अरिहत भगवतो के जन्म महोत्सव मे, निष्क्रमण (दीक्षा) महोत्सव मे केवलज्ञानोत्पति महोत्सव में और परिनिर्वाण महोत्सव मे असुरकुमार देव नन्दीशवर द्वीप मे गए हैं, जाते हैं और जाऐंगे । अरिहन्त भगवन्तो के जन्म महोत्सव आदि असुरकुमार देवो के नन्दीश्वर द्वीप जाने मे कारण है ।

प्रश्न—अत्थि ण असुरकुमाराण देवाण उड्ढ गइविसए ?

उत्तर—हता, अत्थि ।

प्रश्न—केवइय च णं भते ! असुरकुमाराण देवाण उड्ढ गइविसए ?

उत्तर—गोयमा ! जावऽच्चु कप्पे, सोहम्म पुण कप्प गया य गमिस्सति य ।

तीसरी पृथ्वी तक गए हैं, जाते हैं और जाऐंगे ।

प्रश्न—अत्थि ण भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं तिरियगइ विसए पण्णत्ते ?

उत्तर—हन्ता, अत्थि ।

प्रश्न—केवइयं च णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं तिरिय गइविसए पण्णत्ते ?

उत्तर—गोयमा ! जाव—असंखेज्जादीव-समुद्दा णंदिस्सवरं पुण दीवं गयाय गमिस्संति य ।

प्रश्न—हे भगवन् ! क्या असुरकुमार देव, तिरछी गति करने मे समर्थ हैं ?

उत्तर—हां, गौतम ! असुरकुमार देव तिरछी गति करने मे समर्थ हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! असुरकुमार देव, अपने स्थान से कितनी दूर तक तिरछी गति करने मे समर्थ है ?

उत्तर—हे गौतम ! असुरकुमार देव, अपने स्थान से यावत् असख्य द्वीप समुद्रो तक तिरछी गति करने में समर्थ है ? किन्तु वे नन्दीश्वर द्वीप तक गए है, जाते हैं और जाऐंगे ।

असुरकुमारों के नन्दीश्वर गमन का कारण

प्रश्न—किंपत्तियं णं भंते ! असुरकुमारा देवा णंदिस्सवरं दीवं गया य, गमिस्संति य ?

प्रश्न—हे भगवन् ! क्या असुरकुमार देव, अपने स्थान से उघ्व (ऊचो) गति करन मे समर्थ हैं ?

उत्तर—हा गौतम ! वे अपने स्थान से उघ्व गनि करने मे समथ हैं ।

प्रश्न—हे भगवन् ! असुरकुमार देव, अपने स्थान से यावत् अच्युत कल्प तक उपर जाने मे समर्थ है । यह उनकी ऊचे जाने को शक्ति कल्प मार्ग है किन्तु वे वहा तक कभी गए नही, किन्तु सौधर्मकल्प तक वे गए है, जाते हैं और जावेंगे ।

असुरकुमारो का सौधर्मकल्प मे जाने का कारण

प्रश्न—किंपत्तिय ण भन्ते ! असुरकुमारा देवा सोहम्म कप्प गया य, गमिस्सति य ?

उत्तर—गोयमा ! तेसि ण देवाण भवपच्चइयवेराणुबधे ते ण देवा विउव्वेमाणा, परियारेमाणा, वा आयरक्खे देवे वित्तासेति, अहालहुसगाइं रयणाइ गहाय आयाए एगतमत अवक्कमति ।

प्रश्न—अत्थि ण भते ! तेसिं देवाण अहालहुसगाइ रयणाई ?

उत्तर—हता, अत्थि ।

प्रश्न—से कहमियाणि पकरेति ?

उत्तर—तओ से पच्छा काय पव्वर्नति ।

प्रश्न—हे भगवन् ! असुरकुमार देव, उपर सौधर्म देवलोक तक गए हैं, जाते है और जाएगे इसका क्या कारण है ?

उत्तर—हे गौतम ! क्या असुरकुमार देवो का उन वैमानिक देवों के साथ भवप्रत्ययिक वैर (जन्म से ही वैरानुबन्ध) है, इस लिए वैक्रिय रूप बनाते हुए तथा दूसरो को देवियो के साथ भोग भोगते हुए वे असुरकुमार देव, उन आत्म रक्षक देवो को त्रास पहुचाते हैं तथा यथोचित छोटे २ रत्नो को लेकर (चुरा कर) एकान्त स्थान मे भाग जाते हैं ।

प्रश्न—हे भगवन् ! क्या उन वैमानिक देवों के पास यथोचित छोटे छोटे रत्न होते हैं ।

उत्तर—हा गौतम ! उन वैमानिक देवो के पास यथोचित छोटे-छोटे रत्न होते हैं ।

प्रश्न—हे भगवन् ! जब वे असुरकुमार देव, वैमानिक देवो के छोटे-छोटे रत्न चुरा कर ले जाते हैं, तो वैमानिक देव उन का क्या करते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! जब असुरकुमार देव, वैमानिक देवो के रत्न चुरा कर भाग जाते हैं, तब वे वैमानिक देव, असुर-

कुमारो को शारीरक पीडा पहुचाते हैं अर्थात प्रहारो द्वारा उनको पीटते हैं।

प्रश्न—पभू ण भंते ! असुरकुमारा देवा तत्थ गया चेव समाणा तहिं अच्छराहि सद्धि दिव्वाइ भोगभोगाइं भुजमाणा विहरित्तए ?

उत्तर—णो इणट्ठे समट्ठे, ते ण तओ पडिनियतति तओ पडिनियत्तित्ता इहमागच्छति, आगच्छित्ता जइ ण ताओ अच्छराओ आढायति परियाणति, पभू ण ते असुरकुमारा देवा ताहिं अच्छराहि सद्धि दिव्वाइ भोगभोगाइ भुंजमाणा विहरित्तए, अह णं ताओ अच्छराओ णो आढायति, णो परियाणति, णो पभू णं ते असुरकुमारा देवा ताहिं अच्छराहि सद्धि दिव्वाइ भोगभोगाइ भुजमाणा विहरित्तए एव खलु गोयमा ! असुरकुमारा देवा सोहम्म कप्प गया य, गमिस्सति य ।

प्रश्न—हे भगवन् ! ऊपर (सौधर्म देवलोक मे) गए हुए वे असुरकुमार देव क्या वहा रही हुई अप्सराओ के साथ दिव्य और भोगने योग्य भोग भोगने मे समर्थ हैं ? अर्थात वहा भोग, भोग सकते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही हैं, अर्थात वे वहा उन

अप्सराओ के साथ दिव्य और भोगने योग्य भोग नही भोग सकते, किन्तु वे वहा से वापिस लौटते है, और अपने स्थान पर आते हैं यदि कदाचित् वे अप्सराए उनका आदर करें और उन्हे स्वामी रूप से स्वीकार करे तो वे असुरकुमार देव उन वैमानिक अप्सराओ के साथ दिव्य और भोगने योग्य भोग, भोग सकते है । परन्तु यदि वे अप्सराए उनका आदर नही करे और उन्हे स्वामी रूप से स्वीकार नही करे तो वे असुरकुमार देव, उन वैमानिक अप्सराओ के साथ दिव्य और भोगने योग्य भोग नही भोग सकते । हे गौतम ! इस कारण वे असुर-कुमार देव सौधर्म कल्प तक गए हैं, जाते है और जावेंगे ।

आश्चर्य कारक

प्रश्न—केवइयकालस्स ग्ग भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढ उप्पयंति, जाव—सोहम्म कप्प गया य, गमिस्सति य ?

उत्तर—गोयमा ! अणंताहिं उस्सप्पिणीहिं, अणंताहिं अव-सप्पिणीहिं समइक्कताहिं, अत्थि णं एस भावे लोयच्छेरयभूए समुप्पज्जइ, ज णं असुरकुमारा देवा उड्ढ उप्पयंति, जाव—सोहम्मो कप्पो ।

प्रश्न—कि णिस्साए णं भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढ उप्पयति, जाव—सोहम्मो, जाव—सोहम्मे कप्पे ?

उत्तर—गोयमा ! से जहा नामए इह सवरा इ वा, बव्वरा इ वा, टकणा इ वा, भुतुआ इ वा, पण्हया (पल्हया) इ वा, पुलिंदा इ वा एग मह रण्णं वा, गड्ड वा, खड्ड वा, दुग्ग वा, दरिं वा, विसम वा, पव्वय वा णीसाए सुम्म-हल्लमवि आसवल वा, हत्थिवल वा, जोहवल वा, धणुवल वा, आगलेंति, एवामेव असुरकुमार वि देवा णण्णत्थ अरिहत वा, अरिहतचेइयाणि वा, अणगारे वा भवियप्पणो णिस्साए उड्ढ उप्पयति, जाव—सोहम्मे कप्पे ।

प्रश्न—हे भगवन् ! कितने समय मे अर्थात कितना समय बीतने पर असुरकुमार देव उत्पतित होंगे अर्थात् सौधर्म कल्प तक ऊपर जाते है ? गए है और जावेंगे ?

उत्तर—हे गौतम ! अनन्त उत्सर्पिणी और अनन्त अवसर्पिणी व्यतीत होने के बाद लोक मे आशचर्यजनक यह समाचार सुना जाता है यावत् सौधर्म कल्प तक जाते हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! असुरकुमार देव, किसकी निश्रा (आश्रय) ले कर सौधर्म कल्प तक ऊपर जाते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! जिस प्रकार शबर, बब्बर, ढकण, भुत्तुअ, पण्हय और पुलिंद जाति के मनुष्य किसी घने जगल, खाई, जलदुर्ग, गुफा या सघन वृक्ष पुज का आश्रय ले कर एक सुव्यवस्थित विशाल अश्ववाहिनी, गजवाहिनी, पदाति और धनुर्धारी मनुष्यों की सेना, इन सब सेनाओं को पराजित करने का साहस करते हैं, इसी प्रकार असुरकुमार देव भी अरिहंत, अरिहंत-चैत्य तथा भावितात्मा अणगारों की निश्रा लेकर सौधर्म कल्प तक ऊपर जाते है, किन्तु वे बिना निश्रा के ऊपर नहीं जा सकते हैं।

प्रश्न—सव्वे वि णं भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढ उप्पयंति, जाव—सोहम्मे कप्पे ?

उत्तर गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, महिड्ढिया णं असुरकुमारा देवा उड्ढ उप्पयंति, जाव—सोहम्मो कप्पो ।

प्रश्न—एस वि णं भंते ! चमरे असुरिंदे, असुरकुमारराया उड्ढ उप्पइयपुव्विं जाव—सोहम्मे कप्पे ?

प्रश्न—हंता, गोयमा !

उत्तर—अहो णं भंते ! चमरे, असुरिंदे असुरकुमारराया महिड्ढिए, महज्जुईए, जाव कहिं पविट्ठा ?

उत्तर—कूडागारसालादिट्ठतो भाणियव्वो।

प्रश्न—हे भगवन् ! क्या सभी असुरकुमार देव सौधर्म कल्प तक ऊपर जाते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही हैं अर्थात् सभी असुर कुमार देव ऊपर नही जाते है किन्तु महाऋद्धि वाले असुर कुमार देव ही यावत् सौधर्म कल्प तक जाते हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! क्या यह असुरेन्द्र असुरराज चमर भी पहले किसी समय यावत् सौधर्म कल्प तक गया था।

उत्तर—हा गौतम ! गया था।

प्रश्न—हे भगवन् ! आश्चर्य है कि असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी ऋद्धि वाला है, ऐसी महाद्युति वाला है तो हे भगवन् वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति, दिव्य देव प्रभाव कहा गया ? कहा प्रविष्ट हुआ ?

उत्तर—हे गौतम ! पूर्व कथितानुसार यहा पर भी कूटाकार-शाला का दृष्टान्त समझना चाहिये। यावत् वह दिव्य देवप्रभाव, कूटाकारशाला के दृष्टान्तानुसार चमरेन्द्र के शरीर मे गया और शरीर में ही प्रविष्ट हो गया।

चमरेन्द्र का पूर्व भव

प्रश्न—चमरेणं भंते ! असुरिंदेण असुररण्णा सा दिव्वा देविड्ढी, तं चेव जाव—किण्णा लद्धा, पत्ता, अभिसमण्णागया ?

उत्तर—एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूदीवे भारहे वासे वींझगिरिपायमूले वेभेले णामं सण्णिवेसे होत्था, वण्णओ। तत्थ णं वेभेले सण्णीवेसे पूरणे नामं गाहावई परिवसई-अड्ढे, दित्ते जहा तामलिस्स वत्तव्वया तहा णेयव्वा, णवरं—चउप्पुडयं दारूमयं पडिग्गहं करेत्ता, जाव—विपुलं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं—सयमेव चउप्पुडयं दारुमयं पडिग्गहं गहाय मुंडे भवित्ता दाणामाए पव्वज्जाए पव्वइए वि य णं समाणे तं चेव जाव—आयावणभूमीओ पच्चोरुहित्ता सयमेव चउप्पुडयं दारूमयं पडिग्गहं गहाय वेभेले सण्णि-वेसे उच्च-णीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडेत्ता, जं मे पढमे पुडए पडइ कप्पइ मे तं पथे पहियाणं दलइत्तए, जं मे दोच्चे पुडए पडइ कप्पइ मे तं काग—सुणयाणं दलइत्तए जं मे तच्चे पुडए पडइ कप्पइ मे तं मच्छ कच्छ-

भाणं दलइत्तए, जं मे चउत्थे पुडए पडइ कप्पइ मे तं अप्पणा आहारं आहारेत्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ संपेहित्ता कल्लं पाउप्पभाए रयणीए तं चेव णिरवसेसं जाव- जं मे चउत्थे पुडए पडइ तं अप्पणा आहारं आहारेइ। तएणं से पूरणे बालतवस्सी तेणं ओरालेणं, विउलेणं, पयत्तेणं पग्गहिएणं, बालत- वोकम्मेणं तं चेव जाव—वेभेलस्स सण्णिवेस्स मज्झमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता पाउयकुंडिय- माईयं उवगरणं, चउप्पुडयं दारुमयं पडिग्गहं एगंतमंते एडेइ, एडित्ता वेभेलस्स सण्णिवेस्स दाहिणपुरत्थिमे दिसीभागे अद्धणियत्तणियमंडलं आलिहित्ता संलेहणा- झूसणाझूसिए, भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगमणं णिवण्णे।

प्रश्न—हे भगवन्! असुरेन्द्र असुरराज चमर को वह दिव्य देव- ऋद्धि यावत् किस प्रकार लब्ध हुई मिली, प्राप्त हुई और अभिसमन्वागत हुई सम्मुख आई ?

उत्तर—हे गौतम! उस काल उस समय मे इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे विन्ध्याचल पर्वत की तलहटी मे 'वेभेल' नामक सन्निवेशथा वहा 'पूरण' नाम का एक गृहपति रहता था। वह आढ्य और दीप्त था (उसका सब वर्णन तामली की तरह जानना चाहिए) उसने भी समय आने

पर किसी समय तामली के समान विचार कर कुटुम्ब का सारा भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सभला दिया फिर चार खड वाला लकडी का पात्र ले कर, मुण्डित होकर 'दानाम्य' नामक प्रव्रज्या अगीकार की (यहा सारा वर्णन पहले की तरह समझना चाहिये) यावत् वेले के पारने के दिन वह आतापना की भूमि से नीचे उतरा स्वय चार खड वाली लकडी का पात्र ले कर 'वेभेल' नाम के सन्निवेश मे ऊच नीच और मध्यम कुलो मे भिक्षा की विधि से भिक्षा के लिए फिरा और भिक्षा के चार विभाग किए पहले खड मे जो भिक्षा आवे वह मार्ग मे मिलने वाले पथिकों को बाट दी जाए किन्तु, उसमे से स्वय कुछ नही खाना, दूसरे खण्ड मे जो भिक्षा आवे वह कौवो और कुत्तो को खिला दी जाए और तीसरे खण्ड मे जो भिक्षा आवे वह मछलिओ और कछुओ को खिला दी जाए और चौथे खण्ड मे जो भिक्षा आवे उसका स्वय आहार करना। पारने के दिन इस प्रकार मिली हुई भिक्षा का विभाग करके वह पूरण बाल तपस्वी विचरता था।

वह पूरण बाल तपस्वी उस उदार, विपुल प्रदत्त और प्रगृहीत बाल तप कर्म के द्वारा शुष्क रूक्ष हो गया (यहा सब वर्णन पहले की तरह जानना चाहिए) वह भी वेभेल सन्नीवेश के बीचोंबीच होकर निकला, निकल कर

पादुका (खडाऊ) और कुण्डी आदि उपकरणो को तथा चार खण्ड वाले लकडी के पात्र को एकान्त में रख दिया। फिर वेभेल सन्नीवेश के अग्निकोण मे अर्द्ध निर्वर्तनिक मण्डल को साफ किया फिर सलेंखना झूषणा से अपनी आत्मा को युक्त करके आहार पानी का त्याग करके वह पूरण वाल तपस्वी 'पादोपमन' अनश्न स्वीकार किया।

तेण कालेण तेण समएण अह गोयमा! छउमत्थ-कालियाए एक्कारसवासपरियाए छट्ठछट्ठेणं आपिक्खित्तेण तवोकम्मेणं संजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे, पुव्वाणु-पुव्वि चरमाणे, गामाणुगाम दुइज्जमाणे जेणेव सुसमारपुरे णयरे जेणेव असोयवणसडे उज्जाणे, जेणेव असोयवर-पायवे, जेणेव पुढविसिलापट्टए अट्ठमभत्त परिगिण्हामि, दो वि पाए साहट्टु वग्घारियपाणी, एगपोग्गलणिविट्ठदिट्ठी, अणिमिसणयणे ईसिपब्भारगएण काएण, अहापणिहिएहिं गत्तेहिं, सव्विदिएहिं गुत्ते एगराइय महापडिम उपसपज्जेत्ता ण विहरामि।

भावार्थ—(अब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अपनी हकीकत कहते हैं)—हे गौतम! उस काल उस समय मैं छदमस्थ अवस्था मे था। मुझे दीक्षा लिए हुए ११ वर्ष हुए थे। उस समय मैं निरन्तर छट्ठ २ अर्थात बेले २ की तपस्या करता हुआ, तप सयम से आत्मा को भावित करता हुआ पूर्वानपूर्वी से विचरता

हुआ, ग्रामानुग्राम चलता हुआ सुसुमारपुर नगर के अशोक वन-खण्ड उद्यान मे अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वीशिलापट्ट के पास आया। वहा आकर मैंने उस उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वीशिला-पट्टक के ऊपर अट्ठम अर्थात तेले की तपस्या स्वीकार करके, दोनों पाव कुछ सकुंचित करके, हाथो को नीचे की तरफ लम्बा करके, सिर्फ एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर करके, आखो की पलके न टमकाते हुए, शरीर के अग्रभाग को कुछ झुका कर, सर्व इन्द्रियो को गुप्त करके एकरात्रि की महाप्रतिमा को अगी-कार कर ध्यानस्थ था।

तेरा कालेरा तेरा समएरा चमरचचा रायहारगी अरिंगदा, अपुरोहिया या वि होत्था। तएरा से पूररो बालतवस्सी वहुपडिपुण्णाइ दुवालसवासाइं परियाग पाउगित्ता मासिग्राए सलेहगाए अत्तारा भूसेत्तासट्ठिं भत्ताइ अरगसगाए छेदेत्ता कालमासे कालं किच्चा चमरचचाए रायहारगीए उववायसभाए जाव—इदत्ताए उववण्णे।

भावार्थ—उस काल उस समय मे चमरचचा राजधानी इन्द्र और पुरोहित रहित थी। वह 'पूरण' नाम का बाल-तपस्वी पूरे बारह वर्ष तक तापस पर्याय का पालन करके, एक मास की सलेखना से आत्मा को सेवित करके, साठ भक्त तक अनशन रखकर काल के अवसर काल करके चमरचचा राजधानी की उपपातसभा मे इन्द्र के रूप से उत्पन्न हुआ।

चमरेन्द्र का उत्पात

तएण से चमरे असुरिंदे, असुरराया अहुणोववएणे पचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभाव गच्छइ, त जहा—आहारपज्जत्तीए, जाव-भास-मणपज्जत्तीए । तएण से चमरे असुरिंदे, असुरराया पचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभाव गए समाणे उड्ढ वीससाए ओहिणा आभोएइ जाव-सोहम्मे कप्पे, पासइ य तत्थ सक्क देविंद देवराय, मघव, पागसासण, सयक्कउ, सहस्सक्ख, वज्जपाणि, पुरदर, जाव-दस दिसाओ उज्जोवेमाण, पभासेमाण सोहम्मे कप्पे सोहम्मे वडिसए विमाणे सभाए सुहम्माए सक्कसिं सीहासणसि जाव—दिव्वाइ भोगभोगाइ भुजमाण पासइ, इमेयारुवे अज्झ-त्थिए, चिन्तिए, पत्थिए, मणोगए सकप्पे समुप्पजित्था-के स एं एस अपत्थियपत्थए, दुरंतपतलक्खणे, हिरिसिरिपरिव-ज्जिए, हीणपुण्णचाउद्दसे ज ण मम इमाए एयारुवाए दिव्वाए देविड्ढीए, जाव—दिव्वेदेवाणुभावे लद्धे, पत्ते, अभिसमण्णागए उप्पि अप्पुस्सुए दिव्वाइ भोगभोगाइ भुजमाणे विहरइ, एव सपेहेइ सपेहित्ता सामाणियपरि-सोववएणए देवे सद्दावेइ, एव वयासी-केस ण एस देवाणु-प्पिया । अपत्थियपत्थए, जाव—भुजमाणे विहरइ ? तएण ते सामाणियपरिसोववएणगा देवा चमरेण असुरिंदेण असुररएणा एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव-हयहियया

करयलपरिग्गहिय दसणह सिरसावत्तं मत्थए अजलि कट्टु जएणं विजएण वद्धावेति एव वयासी-एसए देवाणुप्पिया । सक्के देविदे देवराया जाव—विहरइ ।

भावार्थ—तत्काल उत्पन्न हुआ वह असुरेन्द्र असुरराज चमर, पाच प्रकार की प्रयाप्तियो से प्रयाप्त बना । वे पांच प्रयाप्तिया इस प्रकार हैं—आहारप्रयाप्ति शरीरप्रयाप्ति, इन्द्रियप्रयाप्ति, शवासोच्छ्वासप्रयाप्ति और भाषा-मन प्रयाप्ति (देवो के भापा प्रयाप्ति और मन प्रयाप्ति शमिल बन्धती है)। जब असुरेन्द्र असुरराज चमर उपर्युक्त पाच प्रयाप्तियो से प्रयाप्त हो गया, तब स्वाभाविक अवधिज्ञान के द्वारा सोघर्मकल्प तक ऊपर देखा। सोधर्म कल्प मे देवेन्द्र देवराज मघवा, पाकशासन शतक्रतु सहस्त्राक्ष वज्रपाणि, पुरन्दर शक्र को यावत् दस दिशाओ को उदयोतित एव प्रकाशित करते हुए सौधर्म कल्प मे सौधर्मावतसक नामक विमान मे, शक्र नाम के सिहासन पर बैठ कर यावत् दिव्य भोग-भोगते हुए देखा । देख कर उस चमरेन्द्र के मन मे इस प्रकार का अध्यवसाय, चिंतित प्रथित मनोगत सकल्प उत्पन्न हुआ कि अरे। यह अप्रार्थितप्रर्थाक अर्थात मरण की इच्छा करने वाला कुलक्षणी ह्री श्री परिवर्जित अर्थात लज्जा और शोभा से रहित, हीन पुन्य (अपूर्ण) चतुर्दशी का जन्मा हुआ यह कौन है? मुझे यह दिव्य देवऋद्धि, दिव्यदेवकान्ति और दिव्यदेवप्रभाव मिला है, प्राप्त हुआ है, सम्मुख आया है ऐसा होते हुए भी मेरे सिर पर

बिना किसी हिचकिचाहट के दिव्य भोग भोगता हुआ विचरता है। ऐसा विचार कर चमरेन्द्र ने सामानिक सभा मे उत्पन्न हुए देवो को बुला कर इस प्रकार कहा कि हे देवानुप्रियो ! यह अप्रार्थित-प्राथक (मरण का इच्छुक) भोग भोगने वाला कौन है ?

चमरेन्द्र का प्रश्न सुन कर हृष्टतुष्ट बने हुए उन सामानिक देवो ने दोनो हाथ जोड कर शिरसावर्तपूर्वक मस्तक पर अञ्जलि करके चमरेन्द्र को जय विजय शब्दो से बधाया। फिर वे इस प्रकार बोले कि—हे देवानुप्रिय ! यह देवेन्द्र देवराज शक्र यावत् भोग भोगता है।

तएण से चमरे असुरिंदे असुरराया तेसिं सामाणियपरिसोववण्णगाण देवाण अन्तिए एयमट्ठ सोच्चा, णिसम्म आसुरुत्तो, रुट्ठे, कुविए, चंडिक्किए, मिसिमिसेमाणे ते सामाणियपरिसोववण्णगे देवे एव वयासी— 'अण्णे खलु भो ! सक्के, देविंदे देवराया, अण्णे खलु भो ! से चमरे असुरिंदे असुरराया, महिड्ढिए खलु भो ! से सक्के देविंदे देवराया, अप्पिड्ढीए खलु भो से चमरे असुरिंदे असुरराया, त गच्छामि ण देवाणुप्पिया ! सक्क देविंद देवराय सयमेव अच्चासाइत्तए त्ति कट्टु उसिणे, उसिणब्भूए जाए यावि होत्था। तएण से चमरे असुरिंदे असूरराया ओहिं पउजइ, मम ओहिणा आभोएइ,

इमेयारुवे अज्झत्थिए जाव—समुप्पजित्था-एव खलु समणे भगव महावीरे जबूदीवे दीवे भारहे वासे, सुसुमारपुरे णयरे असोगवणसडे उज्जाणे, असोगवरपायवस्स अहे, पुढवि-सिलापट्टयसि अट्ठमभत्त पगिण्हित्ता एगराइय महापडिम उवसपजित्ता णं विहरइ, त सेय खलु मे समण भगवं महावीर णीसाए सक्क देविद देवराय सयमेव अच्चा-साइत्तए त्ति कट्टु एव सपेहेइ, सपेहित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता देवदूस परिहेइ, परिहित्ता उववाय-सभाए पुरत्थिमिल्लेण णिग्गच्छइ, जेणेव सभा सुहम्मा, जेणेव चौप्पाले पहरणकोसे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता फलिहरयण परामुसइ, परामुसित्ता एगे अबीए फलीहरयण-मयाय महया अमरिस वहमाणे चमरचचाए रायहाणीए मज्झमज्झेण णिग्गच्छइ, णिगच्छित्ता जेणेव तिगिच्छकूडे उप्पायपव्वए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जाव—वेउव्वियसमुग्घाएण समोहणइ, समोहणित्ता सखेज्जाइ जोयणाइ जाव-उत्तरविउव्वियरुव विउव्वइ, ताए उक्किट्ठाए जाव—जेणेव पुढविसिलापट्टए, जेणेव मम अतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एव वयासी–इच्छामि ण भते ! तुब्भे णीसाए सक्क देविद देवराय सयमेव अच्चासाइत्तए त्ति कट्टु ।

भावार्थ—सामानिक देवो के उत्तर को सुनकर, अवधारण करके असुरेन्द्र असुरराज चमर, आशुरक्त हुआ अर्थात क्रुद्ध हुआ,

रुष्ट हुआ अर्थात रोष मे भरा, कुपित हुआ चण्ड बना अर्थात भयकर आकृति वाला बना और क्रोध के आवेश मे दात पीसने लगा। फिर उसने सामानिक सभा मे उत्पन्न हुये देवो से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो! देवेन्द्र देवराज शक्र कोई दूसरा है और असुरेन्द्र असुरराज चमर कोई दूसरा है। देवेन्द्र देवराज शक्र जो महाऋद्धि वाला है और असुरेन्द्र असुरराज चमर जो अल्प ऋद्धि वाला है वह कोई दूसरा है हे देवानुप्रियो मैं स्वय देवेन्द्र देवेराज शक्र को उसकी शोभा से भ्रष्ट करना चाहता हू" ऐसा कह कर वह चमर गर्म हुआ और उस अस्वाभाविक गर्मी को प्राप्त कर वह अत्यन्त कुपित हुआ। इसके बाद उस असुरेन्द्र असुरराज चमर ने अवधिज्ञान का प्रयोग किया। अवधि-ज्ञान के प्रयोग द्वारा चमरेन्द्र ने मुझे (श्री महावीर स्वामी को) देखा। मुझे देखकर चमरेन्द्र को इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् सकल्प उत्पन्न हुआ कि—"श्रमण भगवान महावीर स्वामी, द्वीपो मे जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के सुसुमारपुर नाम के 'नगर के अशोक बन खण्ड नामक उद्यान मे एक उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वीशिलापट्टक पर तेले के तप को स्वीकार करके, एक रात्रि की महाप्रतिमा अगीकार करके स्थित हैं। मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं श्रमण भगवान महावीर स्वामी का आश्रय लेकर देवेन्द्र देवराज शक्र को उसकी शोभा से भ्रष्ट करने के लिए जाऊ।' ऐसा विचार कर वह चमरेन्द्र अपनी शय्या से उठा, उठकर देवदूष्य (देव वस्त्र) पहना। पहन कर उपपात सभा

से पूर्व दिशा की तरफ गया। फिर सौधर्मा मे चौप्पाल (चतुष्पाल चारो तरफ पाल वाला, चौखण्डा) नामक शस्त्र लेकर किसी को साथ लिये बिना, अकेला ही अत्यन्त कोप के साथ चमरचचा राजधानी के बीचोबीच होकर निकला । फिर तिगिच्छकूट नामक उत्पात पर्वत पर आया । वहा वैक्रिय समुद्घात् द्वारा समवहृत हो कर सख्येय योजन पर्यन्त उत्तर वैक्रिय रूप बनाया फिर उत्कृष्ट देवगति द्वारा वह चमर, उस पृथ्वीशिलापट्टक की तरफ मेरे (श्री महावीर स्वामी के) पास आया । फिर मेरी तीन बार प्रदक्षिणा करके मुझे वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला—"हे भगवन ! मैं आपका आश्रय लेकर स्वयमेव अकेला ही देवेन्द्र देवराज शक्र को उसकी शोभा से भ्रष्ट करना चाहता हू।"

उत्तरपुरत्थिम दिसीभाग अवक्कमेइ, वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, जाव—दोच्च पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ एग, मह, घोरं, घोराघार भीम भीमागार, भासुरं, भयाणीय, गभीर, उत्तासणय, कालड्ढरत्त-मासरासिसकास जोयणसयसाहस्सीयं महाबोदिं विउव्वइ, विउव्वित्ता अप्फोडेइ, अप्फोडित्ता वग्गइ, वग्गित्ता गज्जइ, गज्जित्ता हयहेसिय करेइ, करित्ता हत्थिगुलगुलाय करेइ, करित्ता, रहघणघणाइय करेइ पायदद्दरग करेइ, भूमिचवेडय दलयइ, सीहणादं नदइ, उच्छोलेइ, पच्छोलेइ तिवइ छिंदइ, वामं

मुञ्च उसवेइ, दाहिणहत्थपदेसीवीए अगुट्ठणहेण य वितरिच्छमुह विडवेइ, विडंबित्ता महया महया सद्देण कलकलरव करेइ एगे, अवीए फलिहरयणमायाय उड्ढ वेहास उप्पइए । खोभते चेव अहोलोअ कपेमाणे व मेइणीयल, आकड्ढते व तिरियलोअ, फोडेमाणे व अ वरतल, कत्थइ गज्जते, कत्थइ विज्जुयायते, कत्थइ वास वासमाणे, कत्थइ रयुग्घाय पकरेमाणे, कत्थइ तमुक्काय पकरेमाणे, वाणमतरे देवे वित्तासमाणे, जोइसिए देवे दुहा विभयमाणे, आयरक्खे देवे विपलायमाणे, फलिहरयण अ वरतलसि वियट्टमाणे, वियट्टमाणे, विउब्भाएमाणे विउब्भाएमाणे ताए उक्किट्ठाए जाव-तिरियमसखेज्जाण दीव-समुद्दाण मज्झमज्झेण वीइवयमाणे जेणेव सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडेसए विमाणे, जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एग पाय पउमवरवेइयाए करेइ, एग पाय सभाए, सुहम्माए करेइ, फलिहरयणेण महया महया सद्देण तिक्खुत्तो इदकील आउडेए, आउडित्ता एव वयासी—"कहिं ण भो । सक्के देविंदे देवराया ? कहि ण ताओ चउरासीइसामाणियसाहस्सीओ ? जाव—कहि ण ताओ चत्तारि चउरासीओ आयरक्खदेवसाहस्सीओ ? कहि ण ताओ अणेगाओ अच्छाराकोडियो ? अज्ज हणामि, अज्ज वहेमि, अज्ज मम अवसाओ अच्छाराओ वसमुवणमतु त्ति कट्टु अणिट्ठ अकत अप्पिय, असुभ, अमणुण्ण अमणाम फरुस गिर णिसिरइ ।

भावार्थ—ऐसा कह कर चमरेन्द्र उत्तर पूर्व के दिग्विभाग मे अर्थात ईशान कोण मे चला गया। फिर उसने वैक्रिय समुद्घात किया यावत् वह दूसरी बार भी वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहृत हुआ। ऐसा करके चमरेन्द्र ने एक महान् घोर, घोर आकृति वाला, भयकर, भयकर आकृतिवाला, भास्वर, भयानक, गभीर, त्रासजनक, कृष्णपक्ष की अर्द्धरात्री तथा उडदो के ढेर के समान काला, एक लाख योजन का ऊचा मोटा शरीर बनाया। ऐसा करके वह चमरेन्द्र अपने हाथो को पछाडने लगा, उछलने कूदने लगा, मेघ की तरह गर्जन करने लगा, घोडे की तरह हिनहिनाने लगा, हाथी की तरह चिघाडने लगा रथ की तरह घन-घनाहट करने लगा, भूमि पर पैर पटकने लगा। भूमि पर चपेटा मारने लगा, सिहनाद करने लगा, उछलने लगा, पछाडने लगा, त्रिपदी छेदने लगा, बाई भुजा को ऊचा करने लगा, दहिने हाथ की तर्जनी अगुली और अगूठे के नख द्वारा अपने मुह को विडबित करने लगा (टेढा-मेढा करने लगा) और महान् शब्दो द्वारा कल-कल करने लगा। इस प्रकार करता हुआ मानो अधो-लोक को क्षुभित करता हुआ, भूमितल को कम्पाता हुआ, तिरछा लोक को चीरता हुआ, गगनतल को फोडता हुआ, इस प्रकार उत्पात करता हुआ वह चमरेन्द्र, कही गजना करता हुआ कही बिजली की तरह चमकता हुआ कही वर्षा के सदृश बरसता हुआ, कही पर फुली की वर्षा करता हुआ कही पर अन्धकार करता हुआ वह चमर ऊपर जाने लगा। जाते हुए उसने वाणव्यन्तर देवो को त्रासित किया ज्योतिषि

देवो के दो भाग कर दिये और आत्म रक्षक देवो को भगा दिया ऐसा करता हुआ वह चमरेन्द्र परिघ रत्न को फिराता हुआ (घुमाता हुआ) शोभित करता हुआ, उस उत्कृष्ट देव गति द्वारा यावत तिरछे असख्येय द्वीप समुद्रो के बीचोबीच होकर निकला। निकलकर सौधर्मकल्प के सौधर्मावतसक विमान की सुधर्मा सभा मे पहुचा वहा पहुच कर उसने अपना एक पैर पद्मवर वेदिका के ऊपर रखा और दूसरा पैर सुधर्मा सभा मे रखा। महान हुकार शब्द करते हुए उसने अपनी परिघ रत्न द्वारा इन्द्रकालीन को तीन बार पीटा फिर उसने चिल्ला कर कहा कि—"वह देवेन्द्र देवराज शक्र कहा हैं ? वे चौरासी हजार देव सामानिक कहा है ? वे तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देव कहा है ? तथा वे करोडो अप्सराएं कहा हैं ? आज मैं उनका हनन करता हू। जो अप्सराए अब तक मेरे वश मे नही थी वे आज मेरे वश मे हो जावे।" ऐसा करके चमरेन्द्र ने इस प्रकार के अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, असुन्दर, अमनोम (अमनोहर) और अमनोज्ञ शब्द कहे।

तएणं से सक्के देविदे देवराया त अणिट्ठ जाव-अमणाम असुयपुव्व फरुसं गिर सोच्चा, निसम्म आसुरुत्ते, जाव, मिसिमिसेमाणे तिवलिय भिउडिं णिडाले साहट्टु चमरं असुरिद असुरराय एव वयासी—"ह भो! चमरा! असुरिंदा! असुरराया! अपत्थियपत्था! जाव—हीणपुण्ण-

चाउद्दसा ! अज्ज न भवसि न हि ते सुहमत्थीति कट्टु तत्थेव सीहासणवरगए वज्ज परामुसइ परामुसित्ता, त जलत, फुडत तडतडत उक्कासहस्साइ विणिमुयमाण, जालासहस्साइ पमुंचमाण, इगालसहस्साइ पविक्खिरमाण २, फुलिंगजालामालासहस्सेहिं चक्खुविक्खेवदिट्ठिपडिघाय पि पकरेमाणे हुयवहअइरेगतेयदिप्पत, जइणवेग, पुलकिंसुयसमाण महब्भयं भयकर चमरस्स असुरिंदस्स असुरण्णो वहाए वज्ज निसिरइ ।

तएण से चमरे असुरिंदे असुरराया त जलत, जाव—भयकर वज्जमभिमुहं आवयमाणं पासइ, पासित्ता झियाई, पिहाइ, झियायित्ता पिहाइत्ता तहेव संभग्गमउडविडए, सालवहत्थाभरणे, उड्ढपाए, अहोसिरे, कक्खागयसेअ पिव विणिमुयमाणे विणिमुयमाणे ताए उक्किट्ठाए, जाव—तिरियमसखेज्जाण दीव-समुद्दाण मज्झमज्झेण वीईवयमाणे जेणेव जबूदीवे, जाव-जेणेव असोगवरपायवे, जेणेव मम अतिए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता भीए भयगग्गरसरे 'भगवसरण' मेति वुयमाणे मम दोण्ह वि पायाण अतरसि झत्ति वेगेण समोवडिए ।

भावार्थ—इसके बाद देवेन्द्र देवराज शक्र ने चमरेन्द्र के उपर्युक्त अनिष्ट यावत् अमनोज्ञ एव अश्रुतपूर्व (पहले कभी नही सुने ऐसे) कर्णकटु शब्दो को सुना, अवधारण किया, सुन कर और अवधारण करके अत्यन्त कुपित हुआ, यावत् कोप से धमधमायमान

हुआ (मिसमिसाट करने लगा) ललाट मे तीन बल डाल कर एव भृकुटि तान कर शक्रेन्द्र ने चमरेन्द्र से इस प्रकार कहा— "ह भो ! अप्रार्थिप्रार्थक–जिसकी कोई इच्छा नही करता, ऐसे मरण की इच्छा करने वाला यावत् हीन पून्य (अपूर्ण) चतुर्दशी का जन्मा हुआ असुरेन्द्र असुरराज चमर ! आज तू नही है अर्थात् आज तेरा कल्याण नही है आज तेरी खैर नही है, सुख नही है । ऐसा कह कर उत्तम सिंहासन पर बैठे हुए ही शक्रेन्द्र ने अपना वज्र उठाया उस जाज्वल्यमान, स्फुटिक, तडतडात करते हुए हजारो उल्कापात को छोडते हुए, हजारो अग्नि ज्वालाओ को छोडते हुए, हजारो अगारो को बिखेरते हुए, हजारो स्फुलिगो (शोलो) से आखो को चुधिया देने वाले, अग्नि से भी अत्याधिक दीप्ति वाले अत्यन्त वेगवान्, किंशुक (टेसु) के फूल के समान लाल, महाभयावह भयकर वज्र को चमरेन्द्र के वध के लिए छोडा इस प्रकार के जाज्वल्यमान यावत् भयकर वज्र को चमरेन्द्र ने अपने सामने आता हुआ देखा । देखते ही वह विचार मे पड गया कि 'यह क्या है ?' तत्पश्चात् वह बार-बार स्पृहा करने लगा कि—'ऐसा शस्त्र मेरे पास होता तो कैसा अच्छा होता ?' ऐसा विचार कर जिसके मुकुट का चोगा (तुर्रा) भग्न हो गया है । ऐसा तथा आलबवाले हाथ के आभूषणवाला वह चमरेन्द्र ऊपर पैर और नीचे शिर करके, काख (कक्षा) में आए हुये पसीने की तरह पसीना टपकाता हुआ वह उत्कृष्ट गति द्वारा यावत् तिरछे असख्येय द्वीप समुद्रो के बीचोबीच होता हुआ

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के सुसमारपुर नगर के अशोक वनखण्ड उद्यान मे उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वीशिलापट्ट पर जहा मैं (श्री महावीर स्वामी) था, वहा आया।? भयभीत बना हुआ, भय से कातर स्वर वाला—हे भगवन् ? आप मेरे लिए शरण हैं।' ऐसा कह कर वह चमरेन्द्र, मेरे दोनो पैरो के बीच मे गिर पडा अर्थात् छिप गया।

तएणं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो इमेयारुवे अज्झत्थिए, जाव—समुप्पजित्था—"णो खलु पभू चमरे असुरिंदे असुरराया, णो खलु विसए चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो अपणो णिस्साए उड्ढ उप्पइत्ता जावसोहम्मे कप्पे, णण्णत्थ अरिहते वा, अरिहतचेइयाणि वा, अणगारे वा भाविअप्पणो णीसाए उड्ढ उप्पयइ जाव सोहम्मे कप्पे, त महादुक्ख खलु तहारुवाणं अरिहताण भगवताण, अणगाराण य अच्चासायणाए त्ति कट्टु ओहिं पउजइ, पउजित्ता मम ओहिणा आभोएइ आभोइत्ता हा ! हा ! अहो ! हतो अहमसि" त्ति कट्टु ताए उक्किट्ठाए जाव—दिव्वाए देवगईए वज्जस्स वीहिं अणुगच्छमाणे अणुगच्छमाणे तिरियमसखेज्जाण दीव समुद्दाणं मज्झ मज्झेणं, जाव—जेणेव असोगवरपायवे, जेणेव ममं अतिए तेणेव उवागच्छइ, मम चउरगुलमसपत्त वज्ज पडिसाहरइ, अवियाइ से गोयमा ! मुट्ठिवाएणं केसग्गे वीइत्था ।

तएणं से सक्के देविंदे देवराया वज्जं पडिसाहरित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—एवं खलु भंते ! एह तुब्भं णीसाए चमरेणं असुरिंदेण, असुररण्णा सयमेव अच्चासाइए तएणं मए परिकुविएणं समाणेणं चमरस्स असुरिंदस्स, असुररण्णो वहाए वज्जे णिसट्ठे, तएणं ममं इमेयारुवे अब्भत्थिए जाव—ओहिं पउंजमि, देवाणुप्पिए ओहिणा आभोएमि, हा ! हा ! अहो ! हओ हि त्ति कट्टु ताए उक्किट्ठाए जाव—जेणेव देवाणुप्पिए तेणेव उवागच्छामि ! देवाणुप्पियाणं चउरंगुलमसंपत्तं वज्जपडिसाहरामि, वज्जपडिसाहरणट्ठयाए णं इहमागए, इह समोसढे इह संपत्ते, इहेव अज्ज उवसंपज्जित्ता णं विहरामि, तं खामेमि णं देवाणुप्पिया । णाइ भुज्जो एवं पकरणयाए त्ति कट्टु ममं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमयं दिसीभागं अवक्कमइ, वामेणं पादेणं तिक्खुत्तो भूमिं दलेइ चमरं असुरिंदा असुररायं एवं वयासी "मुक्को सि णं भो चमरा ! असुरिंद ! असुराराया ! समणस्स भगवओ महावीरस्स पभावेणं—ण हि ते वदाणिं ममाओ भयं नत्थि त्ति कट्टु जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

भावार्थ—उसी समय देवेन्द्र देवराज शक्र को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि असुरेन्द्र असुराज चमर का इतना सामर्थ्य

इतनी शक्ति और इतना विषय नही है कि वह अरिहन्त भगवान् अरिहन्त चैत्य या किसी भावीतात्मा अनगार का आश्रय लिए बिना स्वय अपने आप सौधम कल्प तक ऊचा आ सकता है। इसी लिए यदि चमरेन्द्र किसी अरिहन्त भगवान् यावत् भावीतात्मा अनगार का आश्रय लेकर यहा आया है। तो उन महापुरुषो की आशातना मेरे द्वारा फैके हुए वज्र से होगी। यदि ऐसा हुआ, तो मुझे महान दुख रूप होगा।' ऐसा विचार कर शक्रेन्द्र ने अवधिज्ञान का प्रयोग किया और उससे मुझे (श्री महावीर स्वामी को) देखा। मुझे देखते ही उसके मुह से यह शब्द निकल पडे कि—"हा! हा!! मैं मारा गया।" ऐसा कह कर वह शक्रेन्द्र, अपने वज्र को पकड लेने के लिए उत्कृष्ट तीव्र गति से वज्र के पीछे चला। वह शक्रेन्द्र, असख्येय द्वीप समुद्रो के बीचो-बीच होता हुआ यावत् उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे जहा मैं था उस तरफ आया और मेरे से सिर्फ चार अगुल दूर रहे वज्र को पकड लिया। हे गौतम! जिस समय शक्रेन्द्र ने वज्र को पकडा उस समय उसने अपनी मुट्ठी को इतनी तेजी से बन्द किया कि उस मुट्ठी की वायु से मेरे केशाग्र हिलने लग गए। इसके बाद देवेन्द्र देवराज शक्र ने वज्र को लेकर मेरी तीन बार प्रदक्षिणा की और मुझे वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा कि—"हे भगवन्! आपका आश्रय लेकर असुरेन्द्र असुरराज चमर मुझे मेरी शोभा से भ्रष्ट करने के लिए आया था। इससे कुपित होकर मैंने उसे मारने के लिए वज्र फैका। इसके बाद मुझे इस प्रकार

का विचार उत्पन्न हुआ कि असुरेन्द्र असुरराज चमर स्वय अपनी शक्ति से इतना ऊपर नही आ सकता है।" (इत्यादि कह कर, शक्रेन्द्र ने पूर्वोक्त सारी बात कह सुनाई)

फिर शक्रेन्द्र ने कहा कि हे भगवन्! फिर अवधिज्ञान के द्वारा मैंने आपको देखा आपको देखते ही मेरे मुख से यह शब्द निकल पड़े—"हा! हा!! मैं मारा गया" ऐसा विचार कर उत्कृष्ट दिव्य देवगति द्वारा जहा आप देवानुप्रिय विराजते हैं, वहा आया और आप से चार अगुल दूर रहे हुए वज्र को पकड लिया। वज्र को लेने के लिए मैं यहा आया हू समवसृत हुआ हू, सम्प्राप्त हू, उपसम्पन्न होकर विचरण कर रहा हू। हे भगवन्! मैं अपने अपराध के लिए क्षमा मागता हू। आप क्षमा करे। आप क्षमा करने के योग्य हैं। मैं ऐसा अपराध फिर नही करूगा।" ऐसा कहकर मुझे वन्दना नमस्कार करके शक्रेन्द्र उत्तरपूर्व के दिग्विभाग (ईशान कोण) मे चला गया। वहा जाकर शक्रेन्द्र ने अपने बाए पैर से भूमि को तीन बार पीटा। फिर उसने असुरेन्द्र असुरराज चमर को इस प्रकार कहा—"हे असुरेन्द्र असुरराज चमर! तू आज श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रभाव से बच गया है। अब तुझे मेरे से जरा भी भय नही है।" ऐसा कह कर वह शक्रेन्द्र जिस दिशा से आया था उसी दिशा मे वापिस चला गया।

फैंकी हुई वस्तु को पकड़ने की देव की शक्ति

प्रश्न—' भते ! त्ति भगव गोयमे समण भगव महावीरं वंदइ णमसइ, वदित्ता णमसित्ता एवं वयासी—देवे ण भते ! महाड्ढीए, जाव—महाणुभागे पुव्वामेव पोग्गल खिवित्ता पभू तमेव अणुपरियट्टित्ता ण गेण्हित्तए ?

उत्तर—हता, पभू !

प्रश्न—से केणट्ठेण जाव—गिण्हित्तए ?

उत्तर—गोयमा ! पोग्गले ण खिवित्ते समाणे पुव्वामेव सिग्घगई भवित्ता ततोपच्छा मदगइ भवति, देवेण महिड्ढीए पुव्वि पि य, पच्छा वि सीहे सीहगई चेव, तुरिए तुरियगई चेव, से तेणट्ठेणं जाव—पभू गेण्हित्तए ।

प्रश्न—जइ ण भंते ! देवे महिड्ढीए, जाव—अणुपरियट्टित्ता ण गेण्हित्तए, कम्हा ण भते ! सक्केणं देविदेण देवरण्णा, चमरे । असुरिंदे असुरराया णो खलु सचाइए साहत्थि गेण्हित्तए ?

उत्तर—गोयमा ! असुरकुमाराण देवाण अहे गइविसए

सीहे सीहे गई चेव, तुरिए तुरियगइ चेव, उड्ढ गइविसए अप्पे अप्पे चेव, मदे मदे चेव वेमाणियाण उड्ढ गइविसए सीहे सीहे चेव, तुरिए, तुरिए चेव, अहेगइविसए अप्पे अप्पे चेव, मदे मदे चेव, जावइय खेत्त सक्के देविंदे देवराया उड्ढ उप्पयइ एक्केण समएण, त वज्जे दोहिं, ज वज्जे दोहिं, त चमरे तिहिं, सव्वत्थोवे सक्कस्स । देविदस्स देवरण्णो उड्ढलोयकडए, अहोलोयकडए सखेज्जगुणे । जावइय खेत्त चमरे असुरिदे ।

असुरराया अहे उवयइ एक्केण समएण, त सक्के दोहिं, ज सक्के दोहिं त वज्जे तीहिं । सव्वत्थोवे चमरस्स असुरिंदस्स, असुररण्णो अहेलोगकडए, उड्ढलोयकडए, सखेज्जगुणे, एव खलु गोयमा ! सक्केण देविंदेण देवरण्णा, चमरे असुरिदे असुरराया णो सचाइए साहत्थि गेण्हित्तए ।

प्रश्न—हे भगवन् ! ऐसा कह कर भगवान् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया और इस प्रकार कहा—"हे भगवन् ! देव महा-ऋद्धि वाला है, महकान्ति वाला यावत् महाप्रभाव वाला है, तो क्या वह किसी पुद्गल को पहले फेंक कर फिर उसके पीछे जाकर उसको पकडने मे समर्थ है?

उत्तर —हा गौतम ! पकडने मे समर्थ है।

प्रश्न —हे भगवन् ! देव, पहले फैंके हुए पुद्गल को उसके पीछे जाकर ग्रहण कर सकता है, इसका क्या कारण है ?

उत्तर —हे गौतम! जब पुद्गल फैंका जाता है, तब पहले उसकी गति शीघ्र होती है और पीछे उसकी गति मन्द हो जाती है। महाऋद्धि वाला देव पहले भी और पीछे भी शीघ्र और शीघ्र गति वाला होता है त्वरित और त्वरित गति वाला होता है। इसलिए देव फैंके हुए पुद्गल के पीछे जाकर उसे पकड सकता है।

प्रश्न —हे भगवन् ! महाऋद्धि वाला देव यावत् पीछे जाकर पुद्गल को पकड सकता है, तो देवेन्द्र देवराज शक्र, अपने हाथ से असुरेन्द्र असुरराज चमर को क्यो नही पकड सकता ?

उत्तर—हे गौतम ! असुरकुमार देवो का नीचे जाने का विषय शीघ्र, शीघ्र, तथा त्वरित, त्वरित होता है। वैमानिक देवो का ऊचा जाने का विषय शीघ्र शीघ्र तथा त्वरित त्वरित होता है। और नीचे जाने का विषय अल्प, अल्प तथा मन्द, मन्द होता है। एक समय मे देवेन्द्र देवराज शक्र जितना क्षेत्र ऊपर जा सकता है उतना क्षेत्र ऊपर जाने मे वज्र को तीन समय लगते हैं। अर्थात देवेन्द्र

देवराज शक्र का उर्ध्वलोक कण्डक (उचा जाने का काल मान) सबसे थोडा है। और अधोलोक कण्डक (नीचे जाने का काल मान) उसकी अपेक्षा सख्येयम गुणा है। एक समय मे असुरेन्द्र असुरराज चमर जितना क्षेत्र नीचा जा सकता है उतना क्षेत्र नीचा जाने मे शक्रेन्द्र को दो समय लगते हैं अर्थात् असुरेन्द्र असुरराज चमर का अधोलोक कण्डक (नीचा जाने का काल मान) सबसे थोडा है और ऊर्ध्वलोक कण्डक (ऊचा जाने का काल मान) उस से सख्येय गुणा है। हे गौतम ! इस कारण से देवेन्द्र देवराज शक्र, अपने हाथ से असुरेन्द्र असुरराज चमर को पकडने मे समर्थ नही हो सका।

इन्द्र की उर्ध्वादि गति

प्रश्न—सक्कस्सण भंते ! देविंदस्स देवरण्णो उड्ढ, अहे, तिरियं च गइविसयस्स कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा, बहुए वा, तुल्ले वा, विसेसाहिए वा ?

उत्तर—सव्वत्थोव खेत्त सक्के देविंदे देवराया अहे उवयइ एक्केणं समएण, तिरिय सखेज्जे भागे गच्छइ, उड्ढ सखेज्जे भागे गच्छइ।

प्रश्न—चमरस्स ण भंते ! असुरिंदस्स, असुररण्णो उड्ढं

अहे तिरिय च गइविसयस्स कयरे कयरेहितो अप्पे वा, तुल्ले वा विसेसाहिए वा ?

उत्तर—गोयमा ! सव्वत्थोव खेत्त चमरे असुरिंदे, असुरराया उड्ढ उप्पयइ एक्केण समएण, तिरिय सखेज्जे भागे गच्छइ, अहे सखेज्जे भागे गच्छइ।

प्रश्न—सक्कस्सण भते ! देविदस्स देवरण्णो उवयणकालस्स य, उप्पयणकालस्स य कयरे कयरेहितो अप्पा वा बहुआ वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा ?

उत्तर—गोयमा ! सव्वत्थोवे सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अड्ढ उप्पयणकाले, उवयणकाले सखेज्जगुणे।
चमरस्स वि जहा सक्कस्स, णवर-सव्वत्थोवे उवयणकाले सखेज्जगुणे ।

प्रश्न—हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र का ऊर्ध्वगति विषय अधोगति विषय और तिर्यग्गति विषय, इन सब मे कौनसा विषय किस विषय से अल्प है, बहुत है तुल्य (समान) है और विशेषाधिक है ?

उत्तर—हे गौतम ! एक समय मे देवेन्द्र देवराज शक्र, सब से कम क्षेत्र नीचे जाता है, उससे तिर्छा सख्येय भाग जाता है और उससे सख्येय भाग ऊपर जाता है ।

प्रश्न—हे भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर का उर्ध्वगति विषय, अधोगति विषय और तिर्यग्गति विषय, इन सब मे कौनसा विषय, किस विषय से अल्प, बहुत तुल्य और विशेषाधिक है ?

उत्तर—हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर एक समय मे जितना भाग ऊपर जाता है, उससे तिर्छा सख्येय भाग जाता है और उससे नीचे सख्येय भाग जाता है वज्र सम्बन्धी गति का विषय शक्रेन्द्र की तरह जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि गति का विषय विशेषाधिक कहना चाहिए ।

प्रश्न—हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र का नीचे जाने का काल और ऊपर जाने का काल इन दोनो कालो में से कौन सा काल किस काल से अल्प, बहुत व तुल्य है ?

उत्तर—हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र का ऊपर जाने का काल सब से थोडा है और नीचे जाने का काल सख्येय गुणा है । चमरेन्द्र का कथन भी शक्रेन्द्र के समान जानना चाहिए किन्तु इतनी विशेपता है कि चमरेन्द्र का नीचे जाने का काल सब से थोडा है और ऊपर जाने का काल सख्येय गुणा है ।

प्रश्न—वज्जस्स पुच्छा ?

उत्तर—गोयमा ! सव्वत्थोवे उप्पयणकाले, उवयणकाले विसेसाहिए।

प्रश्न—एयस्सणं भंते ! वज्जस्स, वज्जाहिवइस्स, चमरस्स य, असुरिंदस्स असुररण्णो उवयणकालस्स य, उप्पयण-कालस्स य कयरे कयरेहिंतों अप्पा वा, बहुआ वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा ?

उत्तर—गोयमा ! सक्कस्स य उप्पयणकाले, चमरस्स य उवयणकाले, एस णं दोण्णि वि तुल्ला सव्वत्थोवा, सक्कस्स य उवयणकाले, वज्जस्स य उप्पयणकाले एस ण दोण्ह वि तुल्ले सखेज्जगुणे, चमरस्स य उप्पयणकाले, वज्जस्स यणं उवयण काले एस णं दोण्ह वि तुल्ले विसेसाहिए।

भावार्थ—हे भगवन् ! वज्र के नीचे जाने का काल और ऊपर जाने का काल इन दोनो कालो मे से कौन सा काल अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उत्तर—हे गौतम ! वज्र के ऊपर जाने का काल सबसे थोडा है, नीचे जाने का काल उससे विशेषाधिक है।

प्रश्न—हे भगवन् ! वज्र, वज्राधिपति (शक्रेन्द्र) और चमरेन्द्र इन सब का नीचे जाने का काल, इन दोनों कालों मे से कौन

सा काल अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

उत्तर —हे गौतम ! शक्रेन्द्र का उपर जाने का काल, चमरेन्द्र का नीचे जाने का काल, ये दोनो काल तुल्य है और सबसे थोडा है इससे शक्रेन्द्र का नीचे जाने का काल और वज्र का ऊपर जाने का काल तुल्य हैं और सख्येय गुणा है इससे चमरेन्द्र का उपर जाने का काल और वज्र का नीचे जाने का काल ये दोनो काल परस्पर तुल्य हैं और विशेषाधिक हैं।

चमरेन्द्र की चिन्ता और वीर नन्दन

तएण से चमरे असुरिदें असुरराया वज्जभयविप्पमुक्के, सक्केण देविंदेणं देवरण्णो महया अवमाणेण अवमाणिए समाणे चमरचचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरसिं सीहासणंसि उवहयमणसकप्पे चितासोयसागरसंपविठ्ठे करयलपल्हत्थमूहे अट्टज्झाणोवगए भूमिगयाए दिट्ठीए झियाइ, तएण चमर असुरिद असुररायं सामणियपरिसोववण्णया देवा ओहयमणसंकप्पं जाव-झियायमाणं पासति, पासित्ता करयल-जाव एव वयासी-किं णं देवाणुप्पिया ! उवहयमणसंकप्पा जाव-झियायह ? तएण से चमरे असुरिदे असुरराया ते सामाणि-यपरिसोववण्णए देवे एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया ! मए समण भगव महावीर णीसाए सक्के देविंदे देवराया सयमेव अच्चासएए, तएण तेण परिकुविएवण समाणेण ममं वहाए वज्जे णिसट्ठे । त भद्द ण भवतु देवाणुप्पिया ! समणस्स

भगवओ महावीरस्स, जस्सम्मि पभावेणं अकिट्ठे, अव्वहिए, अपरिताविए, इहमागए, इहसमोसढे, इहसपत्ते, इहेव अज्ज उवसपज्जिता णं विहरामि ।

इसके बाद वज्र के भय से मुक्त बना हुआ, देवेन्द्र देवराज शक्र द्वारा महान् अपमान से अपमानित बना हुआ, नष्ट मानसिक सकल्प वाला, चिन्ता और शोक समुद्रमे प्रविष्ट, मुख को हथेली पर रखा हुआ, दृष्टि को नीची झुका कर आर्त्तध्यान करता हुआ असुरेन्द्र असुरराज चमर, चमरचञ्चा नामक राजधानी मे, सुधर्मा सभा में, चमर नामक सिंहासन पर बैठ कर विचार करता है इसके बाद नष्ट मानसिक सकल्प वाले यावत् विचार में पडे हुये असुरेन्द्र असुरराज चमर को देख कर सामानिक सभा मे उत्पन्न हुये देवो ने हाथ जोड कर इस प्रकार कहा कि—हे देवानु प्रिय ! आज आप इस तरह आर्त्त ध्यान् करते हुये क्या विचार करते है ? तब असुरेन्द्र असुरराज चमर ने उन सामानिक सभा मे उत्पन्न हुए देवों से इस प्रकार कहा कि—'हे देवानुप्रियो ! मैंने अपने आप अकेले ही श्रमण भगवान महावीर स्वामी का आश्रय लेकर, देवेन्द्र देवराज शक्र को उसकी शोभा से भ्रष्ट करने का विचार किया था । तदनुसार मैं सुधर्मा सभा मे गया था तब शक्रेन्द्र ने अत्यन्त कुपित होकर मुझे मारने के लिये मेरे पीछे वज्र फैंका ! परन्तु हे देवानुप्रियो ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का भला हो कि जिनके प्रभाव से मैं अक्लिष्ट रहा हू ।

अव्यथित (व्यथा—पीडा रहित) रहा हू तथा परितप्त पाये विना यहा आया हू, यहा समवसृत हुआ हू, यहा सम्प्राप्त हुआ हू, यहाँ उपसम्पन्न होकर विचरता हू ।

त गच्छामो ण देवाणुप्पिया, ! समणं भगव महावीर वदामो, णंमसामो जाव— पज्जुवासामो ति कट्टू चउसट्ठीए सामाणीयसाहस्सहिं, जाव सव्विड्ढीए, जाव—जेणेव असोग-वरपायवे, जेणेव मम अतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मम तिक्खुत्तो आयाहिण—पयाहिण जाव—णंमसित्ता एव वयासी—एव खलु भते ! मए तुब्भ णीसाए सक्के देविदे देवराया सयमेव अच्चासाइए, जाव—त भद्द ण भवतु देवाणु-प्पियाण जस्स मि पभावेण अकिट्ठे जाव विहरामि, तं खामेमि ण देवाणुप्पिया ! जाव उत्तरपुरत्थिम दिसीभाग अवक्कमइ, जाव— वतीसइवद्ध णट्टविहिं उवद सेइ, जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसीं पडिगए। एव खलु गोयमा ! चमरेण असुरिंदेण असुररण्णो सा दिव्वा देविड्ढी लद्धा, पत्ता, जाव—अभिस-मण्णागयो ठिई सागरोवम, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, जाव—अ त काहिइ !

हे देवानुप्रियो ! अपन सब चलें और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करें यावत् उनकी पर्यूपासना करें।

(भगवान् महावीर स्वामी—फरमाते हैं कि—हे गौतम्) ऐसा कहकर वह चमरेन्द्र चौसठ हजार सामानिक देवो के साथ यावत् सर्व ऋद्धि पूर्वक यावत् उस उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे, जहा मैं था वहा आया। मुझे तीन वार प्रदक्षिणा करके यावत् वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोला—"हे भगवन् ! आपका आश्रय लेकर मैं स्वय अपने आप अकेला ही देवेन्द्र देवराज शक्र को उसकी शोभा से भ्रष्ट करने के लिए सौधर्म-कल्प मे गया था । यावत् आप देवानुप्रिय का भला हो कि जिनके प्रभाव से मैं क्लेश पाये विना यावत् विचरता हू। हे देवानुप्रिय ! मैं उसके लिये आप से क्षमा माँगता हू। यावत् ऐसा कह कर वह ईशानकोण में चला गया, यावत् उसने बत्तीस प्रकार की नाटक विधि बतलाई । फिर वह जिस दिशा से आया था उसी दिशा मे चला गया।

हे गौतम ! उस असुरेन्द्र असुरराज चमर को वह दिव्य देवऋद्धि दिव्य देवद्युति और दिव्य देवप्रभाव इस प्रकार मिला है, प्राप्त हुआ है सम्मुख आया है चमरेन्द्र की स्थिति एक सागरोपम की है। वहा से चव कर महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सिद्ध होगा, यावत् सब दु खो का अन्त करेगा।

असुरकुमारों का सौधर्मकल्प में जाने का दूसरा कारण

– किंपत्तिय णं भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति, जाव सोहम्मे कप्पे ? –

गोयमा? तेसि णं देवा णं अहुणोववरणगाण वा चरिमभवत्थाण वा इमेयारुवे अज्झत्थिए, जाव-समुप्पज्जइ—अहो ! णं अम्हेहिं दिव्वा देविड्ढीलद्धापत्ता जाव—अभिसमण्णागया, जारिसिया णं अम्हेहिं दिव्वा देविड्ढी जाव—अभिसमण्णागया, जारिसिया णं सक्केण देविंदेण देवरण्णा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमण्णा गया। जारिसिया णं सक्केण देविंदेण देवरण्णा जाव अभिसमण्णागया, तारिसिया णं अम्हेहि वि जाव—अभिसमण्णागया। त गच्छामो णं सक्कस्स देविंदस्स, देवरण्णो अंतिय पाउब्भवामो पासामो ताव सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो दिव्व देविड्ढी जाव—अभिसमण्णागयं, पासतु ताव अम्हे वि सक्के देविंदे देवराया दिव्व देविड्ढी जाव—अभिसमण्णागय। त जाणामो ताव सक्कस्स देविंदस्स देव रण्णो दिव्व देविड्ढि जाव अभिसमणागय जाणओताव अम्हेवि सक्के देविंदे देवराया दिव्व देविड्ढि अभिसमणा गयं एव खलु गोयमा ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयति, जाव—सोहम्मे कप्पे।

प्रश्न—हे भगवन् ! असुरकुमारदेव यावत् सौधर्म कल्प तक ऊपर जाते हैं। इसका क्या कारण हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! अधुनोत्पन्न अर्थात् तत्काल उत्पन्न हुए तथा चरम भवस्थ अर्थात् च्यवन की तैयारी वाले देवो को इस प्रकार का आध्यात्मिक

पन्नवणाजी सूत्र

देवाण भंते ! किं सदेवीया सपरिवारा सदेवीथा, अपरिवारा अदेवीया सपरिवारा, अदेवीया अपरिवारा ? गोयमा अत्थेगतिया देवा सदेवीया सपरिवारा, अत्थेगतिया देवा अदेवीया सपरिवारा, अत्थेगतियादेवा अदेवीया अपरिवारा, णो चेवण-देवा सदेवीया अपरिवारा॥ सेकेणट्ठेण भते एव वुच्चति अत्थ-गतिया देवा सदेवीया सपरिवारा, तचेव जावणो चेवण देवा सदेवीया अपरिवारा ? गोयमा ! भवणवति वाणमन्तर जोतिसिय सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवा सदेवीया सपरिवारा सणकुमार महिंद वभलोगलतक महासुक्क सहस्सार आणयपाणय अरण अच्चुएसुकप्पेसु देवा अदेवीथा सपरिवारा गेवेज्ज अणुत्तरो-ववाइया देवा अदेवीया अपरिवारा, णो चेवणं देवाण सदेवीया अपरिवारा सेतेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति अत्थगतिया देवा सदेवीया सपरिवारा तेच्चेव णो चेवण देवा सदेवीया अपरिवारा ॥७॥ कतिविहाणं भंते ! परियारणा पण्णता ? गोयमा ! पचविहा पण्णता तंजहा—कायपरियारणा फासपरियारणा रुवपरियारणा, सद्दपरियारणा, मणपरियारणा, सेकेणट्ठेण भते ! एव वुच्चति पचविहा परियारणा पण्णत्ता तजहा—कायापरियारणा जाव

मणपरियारणा ? गोयमा भवणवासी वाणमंतर जोतिसि सोहम्मीसाणेसु कप्पेसुदेवा कायपरियारगा सणकुमारमहिंदेसु कप्पेसुदेवा फासपरियारगा बमलतगेसुकप्पेसुदेवा रुवपरियारगा महासुक्कसहस्सारेसु कप्पेसुदेवा सद्दपरियारगा आणय पाणय आरण अच्चुएसु देवा मणपरियारगा, गेवेज्जग अणुतरो ववाइयादेवा अपरियारगा सेतेणट्ठेण गोयमा तचेव जावमण-'परियारगा । ६।। तत्थण जेते कायपरियारगादेवा तेसिण इच्छाम णे समुप्पज्जई इच्छामोण अच्छराहिं सद्धि कायपरियारकरित्तए, तएण तेहिं देवेहि एव मणसिकए समाणे खिप्पामेव ताओ अच्छराओ ऊरालाइ सिंगाराइ मणुण्णाइ मणोहराइ मणोरमाइ उत्तरवेउव्वियाइ रुवाइ विउव्विति विउव्विता तेसिं देवाणं अत्तियं पाउव्वभति ।। ततेण ते देवाताहिं अच्छराहिं सद्धि कायपरियारण करेंति, करित्ता से जहा तेणाम सीता पोग्गला सीतपप्प सीतंचेव अतिवतित्ताण चिंट्ठति, ऊसिणावा पोग्गला उसिणंपप्प उसिणचेव अतिवइत्ताण चिट्ठ ति, एवमेवतेहिं देवेहिं ताहिं अच्छराहिं सद्धि कायपरियारणे कए समाणे इच्छा मणे खिप्पामेवावेति । अत्थिण भते । तेसिण देवाणं सुक्कपोग्गला ? हता अत्थि ।।तेणं भते । तासिं अच्छराण की सत्ताए भुज्जो परिण मति ? गोथमा ! सोतिंदियत्ताए चक्खिदित्ताए घाणिंदियत्ताए रसिंदियत्ताए फासिंदियात्तए इट्ठताए कतत्ताए मणुमत्ताए

मणामत्ताए सुभगत्ताए, सोहग्गरुवजोव्वणगुणतावण्णताए ते तासे भुज्जो २ परिणमंति ॥१०॥ तत्थणं जैसे फास परियारगा देवा तेसिण इच्छामणे समुप्पज्जइ एव जहेव कायापरियारगा तहेव णिरावसेस भाणियव्व ॥११॥ तत्थण जेते रुवपरियारगा देवा तेसिणं इच्छामणे समुप्पज्जइ इच्छामोणं अच्छराहिं सद्धि रुवपरियारणं करित्तए, ततेण से तेहिं देवेहिं एव मणसी-कए समाणे तहेव जाव उत्तरवेउव्वियाइ रुवाइ विउव्विति वेउव्विता जेणामेव तेदेवा तेणामेव उवागच्छिति २ त्ता तेसिं देवाणं अदूर सामते ठिच्चा ताइ उरालाइ जाव मणोरमाइं उत्तरवेउव्वियाइ रूवाइ उवदंसेमाणी २ उवचिट्ठति, तएणं तेदेवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं रुवपरियारणकरेति, सेस तचेव जाव भुज्जो २ परिणमति ।१२। तत्थण जेते सद्दपरियारगा देवा तेसिण इच्छा मणे समुप्पज्जइ इच्छामोण अच्छराहिं सद्धिं सद्दपरियारण करित्तए, ततेणं तेहिं देवेहिं एव मणसीए कएसमाणे तहेवजाव उत्तरवेउव्वियाइ रुवाइ वेउविंवति २ त्ताजेणामेव तेदेवा तेणामेव उवागच्छति २ त्ता तेसिंदेवाण अदूरसामते ठिच्चा अणुत्तराइं उच्चावयाइ सद्दाइ समुदीरमाणीओ २ चिट्ठति ततेण ते देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धि सद्दपरियार करेति सेस तचेव, जाव भुज्जो २ परिणमंति ॥

तत्थण जेते मणपरियारगा देवा तेसिं इच्छामणे समुप्प-

ज्जति इच्छामोणं अच्छराहिं सद्धिं मणपरियारणा करित्तए तएण तेहिं देवेहिं मणसीकएसमाणे खिपपामेव ताओ अच्छराओ तत्थगयाओ चेव समाणीओ अणुत्तराइ उच्चावयाइं मणाइ पहारेमाणीतो २ चिट्ठ ति, ततेणं ते देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं मणपरियारणं करेति सेस निरबसेसं जाव भुज्जो २ परिणमंति ॥ एतेसिण भते ! देवाणं कायपरियारगाणं जाव मणपरियारगाणं अपरियारगाणय कयरे २ हिंतो अप्पावा ४ ? गोयमा सव्वत्थोवा देवा अपरियारगा, मणपरियारगा संखेज्जगुणा, सद्दपरियारगा, असखेज्जगुणा रुवपरियारगा असंखेज्जगुणा, फासपरियारगा असंखेज्जगुणा, कायपरियारगा, असंखज्ज गुणा ॥

अहो भगवन् ! देवता हैं सो क्या देवी सहित और परिवार सहित हैं, कि देवी सहित और परिवार रहित है कि देवी रहित और परिवार सहित हैं कि देवी और परिवार दोनो से रहित हैं ? कितनेक देवता देवी सहित और परिवार सहित हैं, कितने क देवता देवी रहित और परिवार सहित हैं- और कितनेक देवता देवी रहित और परिवार रहित भी हैं । परन्तु देवी सहित और परिवार रहित ऐसे देवता नही हैं । अहो भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा कि कितनेक देवता देवी सहित और परिवार सहित हैं यावत् कितनेक देवता देवी

सहित और परिवार रहित नही हैं ? अहो गौतम ! भुवनपति वाणव्यन्तर ज्योतिषी और सौधर्म ईशान देवलोक के देवता देवी सहित और परिवार सहित हैं । सनत्कुमार देवलोक से लगाकर यावत् अच्युत्त देवलोक पर्यन्त के देवता देवी रहित है परन्तु परिवार सहित हैं ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देवता देवी और परिवार दोनो रहित है। इस लिए अहो गौतम ! ऐसा कहा कि कितनेक देवता देवी और परिवार दोनो सहित हैं और यावत् देवी और परिवार रहित है ॥७॥ अहो भगवन् ! कितनी प्रकार की परिचारणा (मैथुन सेवना) कही है ? अहो गौतम ! पाच प्रकार की परिचारणा कही है । तद्यथा (१) काया परिचारणा, (२) स्पर्श परिचारणा, (३) रूप परिचारणा (४) शब्द परिचारणा, और (५) मन परिचारणा अहो भगवन् ! किस कारण ऐसा कहा है कि पाच प्रकार की परि-चारणा कही है तद्यथा काया परिचारणा यावत् मन परिचारणा अहो गौतम ! भवन पति वाणव्यन्तर ज्योतिषी और सौधर्म ईशान देवलोक के देवता के काया की परिचारणा है सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक के देवता के स्पर्श की परिचारणा है, ब्रह्म और लातक देवलोक के देवता के रूप की परिचारणा है महाशुक्र और सहस्रार देवलोक के देवता के शब्द की परिचारणा है आनत प्राणत और अरण अच्युत देवलोक के देवता के मन की परिचारणा ग्रेयवेक और अनुत्तर विमान के देवता के अपरिचारणा है अर्थात्

उन के भोग की इच्छा नही है । इस लिए अहो गौतम ।
ऐसा कहा है कि पाच प्रकार की परिचारणा है काया परिचारणा
यावत् मनपरिचारना ॥१।

उक्त पाच प्रकार की परिचारणा मे से जो देवता काया
परिचारणा वाले हैं उनकी जिस वक्त इस प्रकार इच्छा होवे कि
मैं अप्सरा देवीयो के साथ काय परिचारणा करूगा । उस वक्त
देवता के इस प्रकार मन मे विचार करते ही शीघ्रता से उस
की अप्सराओ उदार प्रधान सर्वयुक्त मनोज्ञ मनोहर मनोरम्य उत्तर
वैक्रय रूप वैक्रय करें । वैक्रय कर उस देवता के पास आवे
तब वह देवता उस अप्सरा के साथ कायपरिचारणा करे, किस
प्रकार करे ? यथा दृष्टात जिस प्रकार शीत योनिक जीवो
को शीतल पुद्गल के योग से उत्पन्न होवे सुख तब विशेष
शीतल पुद्गल को प्रा"त कर उस शीतल पुदगलो मे अपनी आत्मा
को स्थापन कर उस मे प्रक्षेप कर रहे तथा उष्ण योनिक
जीव, को उष्ण पुद्गलो के योग से सुख प्राप्त होवे वह उष्ण
पुद्गल को प्राप्त कर उन उष्ण पुद्गलों मे अपनी आत्मा को
स्थापे—उस में प्रक्षेप करे आसक्त होकर रहे । इस प्रकार वे
देवताओ उन अप्सरा को ग्रहण कर जिस प्रकार मनुष्य मैथुन
सेवन करते हैं उस प्रकार, काया परिचारणा करे इस प्रकार काया
परिचारणा करता हुआ वे जिस प्रकार उस के मन की इच्छा

हो उस प्रकार शीघ्रता से प्रवर्तते है, मैथुन सेवन करते हैं। अहो भगवन् ! उस देवता के शुक्र के पुद्गल होते है क्या ? अहो गौतम ! होते हैं, वे केवल वैक्रय शरीर के अन्तर्गत वो गर्भ आत्मा सतोष पावे, प्रभुत सुख पावे, तथा देवी के शरीर के पुद्गल देवता के शरीर मे परिणमें और देवता के शरीर के पुद्गल देवी के शरीर मे परिणमे यो परस्पर भोगते हुए अतुल सुख का अनुभव करते हैं तब फिर वे दोनो ही तृप्ति को प्राप्त होते हैं दोनो की इच्छा निवृति होती है।

परन्तु जिस प्रकार मनुष्य मनुष्यनी के औदारिक शरीर के शुक्र के पुद्गल होते हैं वैसे देवता के नही है। यहा फक्त सुखानुभव की अपेक्षा इच्छा तृप्ति की अपेक्षा शुक्र के वैक्रय रूप अन्य प्रकार के कहे हैं। अहो भगवन् ! उन अप्सरा के वे पुद्गलो किस प्रकार बारम्बार परिणमते हैं ? अहो गौतम ! श्रुते-न्द्रियपने चक्षुइन्द्रियपने घ्राणेन्द्रियपने रसेन्द्रियपने स्पर्शेन्द्रियपने इष्टकारी हो कान्तकारी हो, मनोज्ञकारी हो, मणामकारी हो, शुभपने, सौभाग्यपने, यौवनता, के गुण लावण्यतापने बारम्बार परिणमते है—यह कायापरिचारक का कथन हुआ ॥१०॥

उस में जो स्पर्शपरिचारक देवता हैं, वे उनके मन में इच्छा उत्पन्न होवे तब जिस प्रकार काया परिचारक का कहा उस ही

प्रकार निर्विशेष कहना उस देवी को स्मरण कर अनग क्रिडा कर सान्त तृप्त अतुल सुख का अनुभव करते हैं ॥११॥

उस मे जो रूप परिचारक देवता है उनको इच्छा होती है कि अप्सरा के साथ रूप परिचारणा करू, उस वक्त उन देवता को इस प्रकार विचार होते ही उनकी अप्सरा पूर्वोक्त प्रकार तत्काल उत्तर वैक्रय रूप बनाकर जहा वह देवता होता है वहा आती है और उस देवता से बहुत दूर नही तैसे ही बहुत नजदीक नही इस प्रकार खडी रहकर वह उसके उत्तर वैक्रय औदार प्रधान यावत् प्रणाम रूप उस देवता को रूप (अङ्गोपाङ्ग) देखाती हुई रहती है उस वक्त देवता भी अपनी मेषो-मेष दृष्टि कर उस का शृगार अङ्गोपाङ्ग का निरक्षण कर परिचारणा करता है, शेष कथन उक्त प्रकार यावत् उस को पाचों इन्द्रियपने अतुल सुख बारम्बार परिणयकर वह तृप्त होता है ॥१२॥

वहा जो शब्द परिचारक देवता हैं उन के मन मे इच्छा होती है कि ये अप्सरा संग शब्द परिचारणा करुं तब वह देवता इस प्रकार विचार करते ही उसकी अप्सरा उक्त प्रकार ही उत्तर वैक्रय रुप करके उस देवता के पास आती हैं आकर उस के पास खडी रहकर अनुत्तर प्रधान ऊँच प्रकार के प्रेरक शब्द बोलती हैं तब वह देवता उस अप्सरा के साथ शब्द प्रयुज कर शब्द परिचारणा करता,

है शेष पूर्वोक्त प्रकार यावत् पाचो इन्द्रिय पने बारम्बार अतुल सुखानु भवकर तृप्त होते हैं। उस मे जो मन परिचारक देवता हैं उन के मन मे इच्छा होते ही कि मैं अप्सरा के साथ मन परिचारणा करू, तब उस देवता का इस प्रकार विचार होते ही शीघ्रता से उस की अप्सरा देवी अपने स्वस्थान विमान मे ही रही हुई अनुत्तर ऊच प्रकार का विषयानुकूल मन के परिणाम परिणाय कर रहता है यावत् तव मन के पुद्गल परस्पर परिणाम कर अतुल सुखानुभव करते हैं (बहु अर्थ वाली पन्नवना मे लिखा है कि स्पर्श परिचारक से काया परिचारक के सुख अनतगुने काया परिचारक से रुप परिचारक के सुख अनतगुने रूप परिचारक से शब्द परिचारक के सुख अनतगुने, शब्द परिचारक से मन परिचारक के सुख अनतगुने, ओर मन परिचारक के अपरिचारक के सुख अनतगुने हैं। और भी उक्त कथन का विशेष खुलासा इस प्रकार करते हैं कि प्रथम सोधर्म देवलोक मे अप्ररिग्रही देवी के छ लाख विमान है, उनमे रहने वाली देवीयो की स्थिति एक पल्योपम की उत्कृष्ट पचास पल्योपम ी है, एक पल्योपम से दश पल्योपम की आयुष वाली देविया प्रथम देवलोक के देवता के भोग मे आती है. दश पल्योपम से एक समय अधिक २० पल्योपम के आयुष्य वाली देविया तीसरे देवलोक के देव के भोग मे आती हैं बीस पल्योपम से एक समय अधिक तीस पल्योपम के आयुष्य वाली देवी पाचवें देवलोक के देव के भोग मे आती है, तीस पल्योपम से एक समय अधिक चालीस पल्योपम के आयुष्य वाली देवी सातवे देवलोक के देव के भोग मे आती

हैं, चालीस पल्योपम से एक समय अधिक पेंतालीस पल्योपम के आयुष्य वाली देवी नवमे देवलोक के देवके भोग मे आती है, ओर पेंतालीस पल्योपम से एक समय अधिक पचास पल्योपम के आयुष्य वाली देवी इग्यारवें देवलोक के देवके भोग मे आती है । ऐसे ही दूसरे देवलोक मे अपरिग्रही देवी के चार लाख विमान हैं उस में रहने वाली देवीयो का जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक उत्कृष्ट पचावन ५५ पल्योपम का आयुष्य है, उस मे से एक पल्योपम से कुछ अधिक पनरे पल्योपम के आयुष्य वाली देवी दूसरे देवलोक के देवके भोग मे आती है । पनरे पल्योपम से एक समय अधिक पच्चीस पल्योपम के अयुष्य वाली देवी चौथे देवलोक के देव के भोगवने मे आती है, पच्चीस नल्योपम से एक समय अधिक पेंतीस पल्योपम के आयुष्य वाली देवी छटे देवलोक के देव के भोग वने मे आती है, पेतीस पल्योपम से एक समय अधिक पेंतालीस पल्योपम के आयुष्य वाली देवी आठवें देवलोक के देवता के भोग में आती है, पेंतालीस पल्योपम से पच्चास पल्योपम् के आयुष्य वाली देवी दशवें देवलोक के देव के भोगवने मे आती है, और पच्चास पल्योपम से एक समय अधिक पचपन पल्योपम के आयुष्य वाली देवी बारवें देवलोक के देवता के भोग मे आती है, आठवें देवलोक तक देवी जाती है,) ।

अहो भगवन् ! काया परिचारक यावत् अपरिचारक इन

देवो से कभी ज्यादा तुल्य विशेषाधिक कौन २ है ? अहो गौतम ! सब से थोड़े अपरिचारक देव हैं क्यो कि ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान वाले ही है वे क्षेत्र पल्योपम के आसख्यातवे भाग वृति आकाश प्रदेश प्रमान है, २ इन मे से परिचारक सख्यात गुने ।

अहो भगवन् ! अनुत्तरोपपातिक देव वहा रहे हुवे ही यहा मनुष्य लोक मे रहे हुवे केवली के साथ आलाप सलाप करने को क्या समर्थ है ? हा गौतम वे देव यहा पर केवली के साथ आलाप सलाप करने को समर्थ है अहो भगवन् ! किस कारन से वे समर्थ हैं ? अहो गौतम ! अनुत्तरकल्पवासी देव वहा रहे हुवे ही जो अर्थ हेतु, प्रश्न, कारण, व्याकरण वगैरह पूछते हैं उनका उत्तर केवली यहा रहे हुवे ही देते हैं इसीलिए वे देवता समर्थ हैं अहो भगवन् ! यहा रहे हुवे केवली अर्थ, हेतु वगैरह कहते हैं उन को अनुत्तर कल्पवासी देव क्या वहा रहे हुवे जान व देख सकते हैं ? हे गौतम ! वे जान व देख सकते हैं, अहो भगवन् ! किस कारन से वे जान व देख सकते हैं अहो गौतम ! उनको अनत मनोद्रव्य वर्गणा विशेषपनासे प्राप्त हुई है, सामान्यपना से प्राप्त हुई है, व सन्मुख हुई है इसीलिए अहो गौतम ! यहो पर केवली जो अर्थ हेतु कहते हैं उनको अनुत्तर कल्पवासी देव वहा रहे हुए जान व देख सकते हैं। अहो भगवन् अनुत्तर कल्पवासी देव क्या उदित [उदय हुवा] मोहवाले हैं, उपशान्त मोहवाले हैं, या क्षीण मोहवाले हैं ? अहो गौतम ! वे उदित मोहवाले नही हैं वैसे ही क्षीण मोहवाले नही है परन्तु उपशान्त मोहवाले हैं ॥२०॥

अहो गौतम ? शक्रदेवेन्द्र के चार लोक पाल कहे हैं उन के नाम सोम, यम वरुण ओर वैश्रमण ॥१॥

अहो भगवन ! उन चार लोक पालो के कितने विमान कहे हैं अहो गौतम ! उन के चार विमान कहे है ? सोम, का सध्यप्रभ २ यम का वरशिष्ट ३ वरुण का स्वयजल और ४ वैश्रमण का वल्गु ॥२॥

अहो भगनन् ! शक्रेदेवेन्द्र देवराजा का सोम नामक लोकपाल का सध्यप्रभ नामक विमाम किस स्थान पर है ? अहो गौतम ! जम्बूदीप के मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा में रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुत मध्यभाग से बहुत योजन ऊचे चन्द्र, सूर्य, ग्रह—नक्षत्र व तारे रहे हुवे है। वहा से सो हजार कोड व कोडा कोड योजन उपर ऊचे सौधर्म देवलोक रहा हुवा है, वह पूर्व पश्चिम लम्बा व उत्तर दक्षिण चौडा, अर्धचन्द्रमा के आकार वाला महातेज वाला देदीप्यमान असख्यात योजन का लम्बा चौडा व असख्यात योजन की परिधि वाला है उस में बत्तीस लाख विमान हैं व सब रत्नमय निर्मल यावत् दर्शनीय है उस के बहुत मध्य भाग में सब विमानों में मुकुट समान श्रेष्ठ पाच महा विमान हैं जिनके नाम ।

१ अशोकावतसक २ सप्तपर्णावतसक ३ चम्पकावतसक ४ चूतावतसक और ५ मध्य मे सौधर्मावतसक विमान हैं, उस सौधर्मावतंसक विमान से पूर्व मे असख्यात योजन आवे तो वहा शक्र देवेन्द्र का सोम नामक

लोकपाल का सध्यप्रभ नामक विमान कहा है वह साढेवारह लाख योजन का लम्बा चौडा है उसकी परिधि ३९५२८४८ योजन से कुछ अधिक है इसका सब वर्णन सूर्याभ देवता के विमान का अधिकार मे जैसा कहा है वैसेही कहना मात्र यहा सोमदेव कहना ॥३॥ इस सध्यप्रभ विमान से असख्यात योजन नीचे अवगाहकर चारो विदिशि मे जावे तो वहा शक्र देवेन्द्र के सोम महाराजा की सोमा नामक राज्यधानी कही है एक लक्ष योजन की लम्बी व चौडी है इसमे प्रासाद द्वारादिक के सब प्रमाण सौधर्म देवलोक के प्रासादादिक से आधा है अर्थात् २५० योजन का कोट है २५० योजन का प्रासाद ऊचा है, चारो तरफ चार प्रासाद १२५ योजन के है, इस के परिवार वाले १६ विमान ६२ । योजन के हैं और परिवारवाले ६४ विमान ३१ । योजन के हैं यावत् वे सोलह हजार योजन के लम्वे चौडे कहे हैं । ५०५९७ योजन से कुछ अधिक की परिधि कही है इस मे सौधर्म सभा, उत्पत्ति स्थान, व्यवसाय सभा वगैरह नहीं हैं ॥४॥

शक्र देवेन्द्र के सोम महाराजा की आज्ञा, उपपात व निदश मे सोम महाराजा की जाति के देव, सोम देव की जाति के देव-विद्युत् कुमार, अग्नि कुमार व वायुकुमार जाति के देव देविया और चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तारे व ऐसे अन्य भी देव रहते हैं वे सोम महाराजा की भक्ति करते हैं उनके पक्ष मे रहते हैं,

उन का वताया हुआ कार्य पूर्ण करते हैं इस तरह वे उनकी आज्ञा मे प्रवर्तते हैं।।७।।

जम्बूद्वीप के मेरु से दक्षिण मे जब दड की तरह तीर्च्छे श्रेणी वन्ध मगलादि तीन चार ग्रहो का दडाकार होवे, मूशल जैसे उपर नीचे श्रेणीवन्ध ग्रह होवे, ग्रह चलने से मेघ समान गर्जना होवे, एक नक्षत्र मे दक्षिण उत्तर श्रेणीके ग्रह का रहना सोग्रहयुद्ध होवे शृगाटकका रहना सो ग्रह के आकार से ग्रह होवे, ग्रह पीछे जावे, वद्दल होवे वृक्षाकार वदल होवे सध्याफूले आकाश मे व्यतर के वनाये हुऐ नगर होवे उद्योत सहित ताराओ का पडना ऐसा उल्कापात होवे, दिशाओ मे रक्तपीत समान रगवाला दाह होवे, मेघादिक की गर्जना होवे विद्युत का उद्योत होवे, रजोवृष्टि होवे, प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया के दिन भी चन्द्र रहे वहा लग सध्या फूली हुई रहे, व्यतरोने किया हुआ अग्नि अकाश मे रहे, धुमर पडे श्वेत वर्ण से धुमर पडे दिशा का रजस्वलपना होवे, चन्द्र सूर्य ग्रहण, होवे चन्द्र की चारो वाजु मे कुडाला, दो चन्द्र देखने मे आवे, सूर्य की चारो वाजु मे कुडाला, दो सूर्य देखने में आवे, इन्द्र धनुष्य होवे, इन्द्र धनुष्य के खड होवे, बद्दल रहित आकाश मे कपिहसन समान विद्युत् होवे सूर्य के उदय व अस्त समय मे किरणो के विकार से रक्त कृष्णवर्ण वाले गाडे की धूरी के आकार वाला दड होवे पूर्व, पश्चिम, उत्तर दक्षिण की वायु सवर्तक होवे, ग्राम यावत् सन्निवेश दाह वगैरह लक्षण होवे तव प्राणियो के वल का, मनुष्य के

धन का, कुल का क्षय होवे, आपत्ति मे पडे, अनार्य लोगो का आगमन होवे वगैरह अनेक प्रकार के उपद्रव होवे, उक्त वातो शक्र देवेन्द्र के सोम महाराजा से अजानपने से नही है, विना देखी, विना सुनी स्मरण विना की, या अवधि ज्ञान से नही देखी वैसी नही है । अर्थात सोम महाराजा उक्त सब वातो को जानते यावत् देखते है ॥६॥

उन शक्र देवेन्द्र के सोम महाराजा की पुत्रवत् आज्ञा पालने वाले मगल, केतु लोहिताक्ष, शनैश्चर, चन्द्र सूर्य, शुक्र ब्रहस्पति, वराह नामक देव हैं उनकी स्थिति एक पल्योपम व एक पल्योपम के तीन भाग मे का एक भाग अधिक की कही और उनके अपत्य स्थान जो देव हैं उनकी एक पल्योपम की स्थिति कही अहो गौतम् ! पूर्व दिशा के लोकपाल सोम की यह ऋद्धि और यह विवक्षा कही है ॥

अहो भगवन् ! शक्र देवेन्द्र के यममहाराजा का वरशिष्ट नामक महा विमान कहा कहा है ? अहो गौतम ! सौधर्म देवलोक मे सौधर्मावतसक नामक महा विमान से दक्षिण मे असख्यात योजन जावे तव वहा यम महाराजा का वरशिष्ट नामक विमान कहा है वह साढे वारह योजन का लम्बा चौडा वगैरह सोम महाराजा के विमान जैसा कहना ।

यम कायिक, यमदेव कायिक, प्रेत कायिक प्रेतदेव कायिक, असुर कुमार, असुर कुमार की देवियाँ, कदर्प, नरकपाल, अभियोगिक (सेवक) और भी ऐसे अन्य देव यम महाराजा की आज्ञा, निर्देश व उपपात मे रहते हैं वैसे ही वे उनका पक्ष धारन करते हैं, और उनकी भार्या के समान सेवा करते हैं ॥६॥

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की दक्षिण मे विघ्न, राज-कुमारादिकृत उपद्रव, क्लेश वृद्धि करने वाले शब्दोच्चार, परस्पर कुसप, महायुद्ध, महा सग्राम, महा शस्त्र का निपात, महा पुरुष का काल होना महा रुधिर का पडना, सर्प वृश्चिकादिक की उत्पत्ति, कुल में क्षय रुपरोग, ग्राम मे क्षय रुपरोग बहुत ग्राम के मनुष्यो मे क्षय रुप रोग, नगर जन मे क्षय रुप रोग, मस्तक, आख, कर्ण, नख व दात की वेदना, इन्द्र ग्रहादिके उपद्रव, स्कध देवादि के उपद्रव कुमार ग्रह, यक्ष ग्रह, भूतग्रह के उपद्रव, एकान्तर ज्वर, दो दिनातर ज्वर, तीन दिनातर ज्वर, चार दिनातर ज्वर, इष्ट के वियोग से उद्वेग, श्वास, खासी, ज्वर, दाह, कच्छ, कोढ, अजीर्ण, पाण्डुरोग, हरस (मसा) भगदर, हृदयशूल, मस्तक शूल योनिशूल पसली शूल कुक्षिशूल, ग्राम की मारी नगर, खेड कवड द्रोण मुख, मडप, पट्टण, आश्रम सवाह व सन्निवेश मे मरकी प्राणियो का क्षय, धन का क्षय, मनुष्यो का क्षय, गृहो का क्षय वस्त्रा भूषणो का क्षय, व अनार्य म्लेच्छ लोगों का आगमन होवे वैसे, ही अन्य भी ऐसे उपद्रव

होवे उक्त बातें यम महाराजा से गुप्त नही होती इनको जानते हैं, देखते है व स्मरण करते हैं ॥१०॥

अम्ब, अम्बारिश, साम, सबल, रुद्र, वैरुद्र, काल, महाकाल असिपत्र, धनुष्य, कुभ वालुक, वैतरणी, खरस्वर और महाघोष ये पदरह परमाधर्मी यम महाराजा की अपत्यवत् विनयवत रहते है यम महाराज की एक पल्योपम और एक पल्योपम के तीसरे भाग अधिक की स्थिति कही हैं उनके पुत्र स्थान कार्य करने वाले देव की एक पल्योपम की स्थिति कही है इस तरह अहो गौतम् ! महर्द्धक यावत् महाराजा है ॥११॥

अहो भगवन् ! शक्र देवेन्द्र के वरुण नामक महाराजा का सतजला नामक महाविमान कहा है ? अहो गौतम् ! सौधर्मा वंतसक विमान की पश्चिम मे असख्यात योजन जावें वहा वरुण महाराजा की सतजला नामक राज्य धानी कही उसका वर्णन सोममहाराजा जैसे करना ॥१२॥

वरुण कायक, वरुणदेव, कायिक नागकुमार, नागकुमारिया, उदधिकुमार, उदधिकुमारिया, स्थनितकुमार व स्थनित कुमारीयां यावत् उनका भार्यासमान, कार्य करते हैं ॥१३॥

जम्बूद्वीप के मेरु की दक्षिण मे अतिवृष्टि, मदवृष्टि, सुवृष्टि, दुवृष्टि, पर्वत के तट व नदियो मे पानी का चलना, तलावादिक भर कर पानी का चलना, थोडा पानी चलना बहुत पानी

चलना, ग्राम यावत् सन्निवेश बह जावे इतना पानी चलना वगैरह होवे, इससे प्राणियो का क्षय यावत् धन वगैरह का क्षय होवे, यह सब वरुण महाराजा जानते हैं यावत् याद करते हैं।

वरुण महाराजा को कर्कोटक कर्दमक, अजन, शखपाल पुड्र पलाश, मोय, जय, दधिमुख, अयपुल कातरिक नामक देव पुत्रवत् विनयवाले आदेश मे प्रवर्तने वाले होते है इनकी देशऊनी दो पल्योपम की स्थिति कही है, और अपत्य समान देवकी एक पल्योपम की स्थिति कही अहो गौतम ! वरुण राजा की ऐसी ऋद्धि कही है।

अहो भगवन् ! शक्र देवेन्द्र का वैश्रमण महाराजा का वल्गु नामक महा विमान कहा है ? सौधर्म देवलोक मे सौधर्मावतसक महाविमान की उत्तर मे असख्यात योजन जावे वहा वल्गु नाम का महा विमान आता है, उसका सब वर्णन सोम महाराजा की राज्यधानी जैसे कहना ॥१५॥

वैश्रमण कायिक, वैश्रमण देवकायिक सुवर्ण कुमार, द्वीप कुमार, दिशा कुमार व वाणव्यतर देव व उनकी देविया वैश्रमण महाराजा की आज्ञा, निर्देश व उपपात मे रहते हैं उन की सेवा भक्ति करते है यावत् उनका भार्या के समान कार्य करते हैं ॥१६॥

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की दक्षिण मे लोहे की खान, ताम्बे की खान, सीसेकी खान, हिरण्य, [चादी]की खान, सुवर्ण की खान, रत्न

वज्र, आभरण, पत्र, पुष्प, फल, बीज, माल्य, वर्ण, चूर्ण गध व वस्त्र की वर्षा, हिरण्य, सुवर्ण, रत्न, वज्र, आभरण, यावत वस्त्र भाजन की वृष्टि, क्षीर की वृष्टि, सुकाल दुस्काल, अल्प मुल्य, बहु मुल्य, सुभिक्ष, दुभिक्ष क्रयविक्रय, सचय, सग्रह, निधि, निधान, बहुत काल का सचित किया हुआ द्रव्य, स्वामी रहित बना हुआ द्रव्य सेवक रहित बना हुआ द्रव्य, नष्ट मार्ग, नष्ट गोत्राकार, विच्छिन्न स्वामी विच्छिन्न सेवक विच्छिन्न गोत्राकार वैसे ही शृगाटक के आकार मे तीन रस्ते मीले वहा चोक, चचर, चउमुख, महापथ, राजमार्ग, नगर की नालियो मे, श्मशान गिरि, गुफा, शान्तिगृह शैलोपस्थान व भवनगृह में रखा हुआ द्रव्य वगैरह होते हैं वे शक्र देवेन्द्र के वैश्रमण महाराजा से अज्ञात अदृष्ट, अविज्ञात नही है, वे सब बातें जानते हैं ॥१७॥

पूर्णभद्र, माणभद्र, शालिभद्र, सुवर्णभद्र, शक्ररक्ष, पूर्णरक्ष, सर्वाण, सर्वयश सर्व कार्य समिद्ध, अमोघ, अशान्त वगैरह वैश्रमण महाराजा की अपत्यवत् विनय करने वाले देव है ।

राजप्रश्नीय सूत्रम्

देवस्य अधिकार

नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं,
नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहुणं ॥१॥

१. नमस्कार होवो चार घनघाति कर्म रूप शत्रु के घातिक अनंत चतुष्टय युक्त अरिहंत भगवंत को

२ नमस्कार होवो अष्ट कर्म नाशक सकल कार्यार्थ साधक सिद्ध भगवान को ।

३. नमस्कार होवो ज्ञानादि पंचाचार पालक व उपदेशक आचार्य भगवंत को

४ नमस्कार होवो ग्यारह अंग बारह उपांग के पाठक करण सित्तरी के गुण युक्त उपाध्याय भगवंत को

५ नमस्कार होवो लोक के अन्दर सर्व प्रकार से शुद्ध संयम के अराधक सर्व साधुओ को । इस प्रकार मंगलाचरणार्थ पंच परमेश्वर को नमस्कार करके सूत्र प्रारंभ किया जाता है ।

उस काल चौथे आरे मे और उस समय मे कि जिस समय मे सूत्र कथित भाव का वरताव हुआ तव आमलकपा नामक नगरी थी, वह नगरी धन धान्य द्वीपद चतुष्पदादि ऋद्धि सम्पन्न स्वचक्री परचक्री (राजा) के भयरहित यावत् शब्द से नगर का सब वर्णन उववाइ सूत्र में चम्पा नगरी का किया है वैसा यहा भी आमलकप्पा नगरी का कर देना यावत् चित्त को प्रसन्न करने वाली देखने योग्य मनोहर प्रतिरुप थी। उस आमलकप्पा नगरी के वाहर उत्तर और पूर्व दिशा के बीच ईशानकौन मे अम्वशाल नामक यक्ष का यक्षायतन एक बडे वगीचे से वेष्टित घरा हुआ था, वह वहुत पुराना यावत् उववाइ सूत्र मे पूर्ण भद्र यक्ष के बन का वर्णन किया तैसा इसका भी कह देना यावत् प्रतिरुप था वहा तक कह देना। उस अम्वशाल बन के मध्य विभाग मे अशोक नामक वृक्ष था, जिस के नीचे पृथ्वी शिला पट्ट था, इसका भी सब वर्णन उववाई सूत्रानुसार कह देना। उस आमलकप्पा नगरी मे श्वेत नामक राजा राज्य करता था जिसकी धारणी नामक पट्टरानी थी। उस काल उस समय मे श्रमण भगवत श्री महावीर स्वामी चौदह हजार साधु, छत्तीस हजार साध्वी के परिवार से परिवरे पूर्वानुपूर्व चलते यावत् आमलकप्पा नगरी के अवशाल नामक वाग मे पधारे यथा प्रतिरुप आज्ञा ग्रहण कर तप सयम से आत्मा को भावते हुए विचरने लगे। राजा आदि परिपदा आई यावत् भगवत की सेवा करने लगी। उस काल और उसी ही समय मे प्रथम सौधर्म नामक देवलोक मे सूर्याभ नामक विमान की सुधर्मासभा मे सूरियाभ

नामक सिंहासन पर चार हजार सामानिक देव के साथ, चार अग्रमहिषी-पाटवीया देवीयो के साथ और उन चार अग्रमहिपीयो की देवियो के परिवार के साथ तीन प्रकार की परिषदा से सातो अनिका (सेना) के मालिक देवता से,सोलह हजार आत्मरक्षक देवता से, इस सिवाय और भी बहुत से उस सूरियभाविमान वासी देवता देवियो के साथ परिवरा हुआ महाशब्द से निरतर नाटक गीत, वाजिन्त्र, तत्री-वीना हाथींथे, कासी की ताल, झाज और भी बहुत वादित्र के नाद मादल का शब्द प्राप्त हुआ जिस का गरजारव जिस पर दिव्य प्रधान देवता संबधी पाचो इन्द्रिय के भोगोपभोग भोगवता हुआ विचरता था। उस वक्त जम्बूद्वीप नामक द्वीप को सम्पूर्ण विस्तीर्ण अवधि ज्ञान कर देखता हुआ श्रमण तपस्वी भगवत ऐश्वर्यादि गुण युक्त महावीर स्वामी को जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र की आमलकप्पा नगरी के वाहिर अम्वशाल वन के चेत्य मे यथाप्रतिरुप आज्ञा ग्रहण कर सयम तप कर अपनी आत्मा को भावते हुए विचरते देखे, देख कर हृष्ट तुष्ट हुआ चित्त मे आनदोद्भव हुआ, प्रतिमान हुआ, हृदय मे परम सोम्यता शीतलता प्राप्त हुई, हर्ष के वश में हो विकसायमान हुवा हृदय, विकसायमान हुई प्रधान कमल समान आखें और मुख, जिसका हर्ष के वश होने से हलने लगे प्रधान हाथो के कडे पोची आभारण भुजबध अगद मुकुट कानो के कुडलहार कर विराजित हृदय मोतियो के गुच्छ युक्त लम्बे २ झूमरे, पहने हुए भूषणो का धारक उत्सुक हो तत्काल काया की चपलता युक्त देवताओं के मध्य वर प्रधान सुर्याभदेव उठा, उठकर पादपीठका पर खडा हुआ, खडा होकर

बीच मे नही सीया हुआ ऐसा एक पट साडी के वस्त्र का उत्तरासन (मुखकी यत्ना) कर भगवत के सम्मुख तहा ही सभा मे सात आठ पग गया, जाकर वामे घुटने को सकोच कर धरनी पर स्थापन किया, दाहने घुटने को खडा रख कर कुछ नीचा नमा हुआ दोनो हाथ दशो नखो एकत्रित दोनो हाथ जोड कर सिर पर आवर्त कर प्रदक्षिणावर्त फिराकर शिर पर जोडे हुए हाथ की अजली स्थापन कर यो बोले नमस्कार हो कर्म शत्रु के पराभवक-अरिहत को ज्ञानादि ऐश्वर्यंता युक्त भगवत को वे अरिहत भगवत कैसे है ? जो की-श्रुत चारित्र धर्म की आदि के कर्ता, साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चार तीर्थ के स्थापक गुरु के उपदेश विना स्वय प्रतिबोध पाये हुये, एक हजार आठ उत्तम लक्षणादि कर सर्व पुरुषो मे उत्तम पुरुष सहसात्कारादि गुणकर पुरुषो मे सिह समान, सर्व लोक उत्तमोत्तम गुण के धारक लोकोत्तम, सर्वत्रस स्थावर रुप लोक के रक्षक होने से लोक के नाथ, हितोपदेश करता होने से लोक के हेतु-सज्जन तत्वार्थ के प्रकाश लोक में प्रद्रीपवत्, मिथ्या तिमर के नाशक लोक मे सूर्य जैसे प्रद्योत करता, सर्व जीवो को अभय के दाता ज्ञान रुप चक्षु के दाता, मोक्ष मार्ग के दाता, भयभीत को शरण के दाता, सयम जीवितव्य के दाता, बोध बीज सम्यक्तव के दाता श्रुत चारित्र धर्म के दाता, श्रुत चारित्र धर्म के उपदेशक, धर्म प्रवर्तको के नायक , सुपथ मे ले जाने वाले धर्म रथ के सारथी या धर्म सार्थ को मोक्ष पट्टन मे ले जाने वाले, धर्म सार्थवाही चार घनघातिक कर्मो का अन्तकर धर्म मे प्रधान चक्रवर्ती, ससार समुद्र

मे द्वीप समान शरणागत को आधारभूत प्रतिष्ट, किसी से भी घात पावे नही ऐसा अप्रतिहत केवल ज्ञान केवल दर्शन के धारक, आत्म आच्छादन रूप कर्मो से निवृते-विगत छद्मस्त राग द्वेपादि आप जीते अन्य को जीतावे, ससार समुद्र आप तीरे अन्य को तारे, तत्त्व का वोध आप पाये अन्य को वोधित करे, कर्म पाश से आप मुक्त हुवे अन्य को मुक्त करे, सर्वज्ञ सर्वदर्शी ऐसे अरिहत जो शिव निरुपद्रव अचल जन्माकूर रहित, सर्व से अन्तरहित देश से क्षयरहित, शारीरक मानसिक वाधा पीडा रहित, पुन जन्म धारण की आवृति रहित, ऐसे गुण निष्पन्न जो सिद्ध गति है उसे प्राप्त कर उसमे उपस्थित ऐसे सिद्ध भगवत को नमस्कार होवे, श्रमण भगवत महावीर स्वामी को जो आदि के कर्ता, तीर्थ के करता यावत् उक्त गुण युक्त मुक्ति स्थान प्राप्त करने के अभिलाषी है (उन) वहा रहे हुये भगवत को यहा रहा हुआ मैं वदना करता हू। देखते हो भगवत मुझे वहा रहे हुऐ ही ऐसा कह कर वदना नमस्कार किया वदना नमस्कार कर इस प्रकार प्रार्थना चिन्तवना मनोगत सकल्प समुत्पन्न हुवा, यों निश्चय श्रमण भगवत महावीर स्वामी जबूद्वीप के भरत क्षेत्र की आमलकप्पा नगरी के वाहिर अवसाल वन के चेत्य मे यथा प्रतिरुप आज्ञा धारण करके सयम तप कर अपनी आत्मा को भावते हुवे विचरते हैं, इसलिये महाफल का कारण है निश्चय से तथारुप अरिहत भगवत का नाम गोत्र श्रवण

करने का ही तो फिर सन्मुख जाकर वन्दना नमस्कार व पर्युपासना करना, एक भी आर्य धर्म समवन्धी सुवचन श्रवण करने का कहना क्या, फिर विस्तीर्ण अर्थ का ग्रहण करना उसके फल का तो कहना ही क्या ? इसलिये मैं भगवत श्री महावीर स्वामी को वदना नमस्कार करु, सत्कार सम्मान देवू, कल्याणकारी, मगलकारी, देव, ज्ञानवत पर्यूपासना करु, यह मुझे मेरे हित की करता, सुख की करता, क्षमा की करता, निस्तार की करता, अनुगामी आगे साथ मे मोक्ष की देने वाली होवेगी, ऐसा कर, ऐसा विचार किया ऐसे विचार कर आज्ञाधारक-नोकर देव को वुलाया वोलाकर-यों कहने लगा-यो निश्चय अहो देवानुप्रिय ! श्रमण भगवत श्री महावीर स्वामी जवूद्वीप के भरत क्षेत्र की आमल-कप्पा नगरी के बाहिर अवशाल नामक बाग के चेत्य मे यथा-प्रतिरूप अवग्रह ग्रहण कर तप सयम से अपनी आत्मा को भावते हुए विचर रहे हैं, तहा जावो तुम अहो देवानुप्रिय ! जवूद्वीप के भरत क्षेत्र की आमलकप्पा नगरी के अवशाल बाग में श्रमण भगवत महावीर स्वामी को तीन वक्त उठ बैठ दोनों हाथ जोड प्रदक्षिणावर्त फिर इस प्रकार करके वन्दना नमस्कार करो, वदना नमस्कार कर अपना नाम सुनाओ, सुना कर श्रमण भगवत श्री महावीर स्वामी के चारो तरफ एक योजन के घेराव मे चारो तरफ जो कुच्छ तण, घास पत्ता काष्ठककर अशुची कचरा, खराब दुर्गंध उस सब को ग्रहण करो, ग्रहण

कर एकान्त मे डालो, डाल कर बहुत पानी नही बहुत मृतिका विरल नही थोड़ा थोडा जिस प्रकार रजरेणू धूल दब जावे इस प्रकार दिव्य प्रधान इक्षु गधोदक का वर्षाद वर्षावो, वर्षा कर वहा से रजका विनाश करो, कराओ रज को उपशान्त करो, कराओ, करके मानो जैसे जल से उत्पन्न हुए हो स्थल पृथ्वी से उत्पन्न हुए हो, ऐसे विकसित तेजवत वीटो तो नीचे और मुख ऊपर दशार्धपाच वर्ण के फूलो को घुटने प्रमाणे वर्षाद वर्षावो वर्षा कर कृष्णागार प्रधान कुदरुक सेल्हारस इग्र का धूप मघमघायमान उद्‌धुत सुगध कर मनोहर सुगधो में भी विशेष प्रधान सुगध जिस की वत्ती या गोली समान प्रधान देवताओ के आने योग्य मडल, करो अन्य के पास करावो यह मेरी आज्ञा पीछे शीघ्र मेरे सुपरत करो तब अभियोगी आज्ञा धारक देवता सूरयाभ देव का उक्त वचन श्रवण कर हर्षकत तुष्टित हुआ यावत् हृदय प्रफूलित हुआ, दोनों हाथ जोड कर सिरसावर्त अजलीकर देवता बोला तहित, उस आज्ञा रूप वचन को विनय युक्त श्रवण किये, इस प्रकार देवता आज्ञा तहितकर आज्ञा विनय से धारण कर उत्तर पूर्व के बीच ईशान कोन मे गया जाकर वैक्रय समुद्धात की वैक्रय समुद्धातकर आत्म प्रदेश का सख्यात योजन प्रमान दडाकार विस्तार किया, आत्म प्रदेश से पुद्‌गलो का ग्रहण कर सोलह प्रकार के रत्न ग्रहण किये, उनके नाम१— कर्केतनरत्न २ वज्ररत्न ३. वैडूर्यरत्न, ४ लोहीताक्षरत्न,

५ मसारगलरत्न, ६ हंसगरत्न ७ पुलाकरत्न, ८ ज्योतिषरत्न, ९ सौगंधिकरत्न, १० अजनरत्न, ११ अजनपुलाकरत्न, १२ रजतरत्न १३ जातरूपरत्न, १४ अकरत्न १५ स्फटिकरत्न और रिष्टरत्न, इन सोलह रत्नो को यथाउचित पने बादर जो ग्रहण करने योग्य पुदगल नही उनको दूर किये, और ग्रहण करने योग्य सूक्ष्म पुद्‌गलो को ग्रहण कर भवधारणीय रूप से वैक्रय किया, वैक्रयकर देव समबन्धी उत्कृष्ट युक्त चपला गति मन के उत्सुकता युक्त शीघ्रगति क्रोध युक्त चडगति, उत्कृष्ट गति अन्यगति नही जीत सके वह जयणा गति बहुत चरित शीघ्रगति, वायुकर जिस प्रकार रज की गति हो वह उडन गति इन गतियो के सिवाय इन से भी अधिक दिव्य देवता सम्बन्धी गति उस गति कर तीर्च्छे लोक के असख्यात द्वीप समुद्रो के मध्य मे होकर जहा जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की आमलकप्पा नगरी का अबसाल वन का चैत्य था जहा श्रमण भगवन श्री महावीर स्वामी थे तहा आया, आकर श्रमण भगवत श्री महावीर स्वामी को तीन वक्त उठ बैठ हाथ जोड प्रदक्षिणावर्त फिरा इस प्रकार किया इस प्रकार से वदना गुणानुवाद किया, वदना नमस्कार कर यो कहने लगे अहो भगवन् ! हम सूर्याभ देवता के अभियोगी देवता, देवानुप्रिय को वदना नमस्कार करते है, हमारी योग्यता प्रमाणे सेवा करते है । अहो देवानुप्रिय ! इस

प्रकार आमंत्रण करके श्रमण भगवंत महावीर स्वामी कहते हुऐ
तुम्हारा पुराने काल से चलता आता यह कर्तव्य है, अहो देवों !
तुम्हारा जीता चार है ऐसा बहुत देवताओ करते आये है, अहो
देवो ! यह तुम्हारा करने का कर्तव्य है अहो देवो ! तुम्हारा कल्प
है, अहो देवो ! अन्य तीर्थंकरोने भी ऐसा कहा है, अहो देवो !
जो भवनपति वाणव्यन्तर जोतिषी व वैमानिक देव है वे
सब अरिहंत भगवंत को वंदते है, नमस्कार करते हैं,
वंदना नमस्कार करके अपने नाम गौत्र का उच्चारण
करते है इस लिये यह तुम्हारा पुराना कर्तव्य है यावत् हमारी
आज्ञा है अहो देवो ! श्रमण भगवंत महावीर स्वामी का उक्त
कथन श्रवण करके वे देवता हृष्ट तुष्ट हुये यावत् हृदय
विकसत हुआ श्रमण भगवंत महावीर स्वामी को बन्दना नमस्कार
किया, उत्तर पूर्व दिशा विभाग में गये, जाकर वैक्रय समुद्घात
की, वैक्रय समुद्घात करके आत्म प्रदेश का सख्यात योजन का
दण्ड निकाला, तद्यथा—कर्क रत्न यावत् रिष्ट रत्न दण्ड निकाल
कर बादर पुद्गल दूर किये, सूक्ष्म पुद्गल ग्रहण करके दूसरी
वक्त वैक्रय समुद्घात की वैक्रय, समुद्घात करके सवर्तक वायु
का वैक्रय किया यथा दृष्टात जिस प्रकार कर्मकर का लडका
तरुण अवस्थावत, जिसने कदापि दुःख नही वेदा हो, जो
बलवत रोग रहित शरीर का धारक हो, स्थिर सघयन का

धारक हो प्रतिरूप हाथ पाव पेट सर्वांग सम प्रणित हो, लो की घण की तरह सिघन निवड मजबूत वृर्तलाकार वलीये रूप नमा भूमी पर उल्लघन प्रल्लघन करता अन्य का जय करता, व्यायामादि श्रम का करता इत्यादि कार्य मे समर्थ, चिमट्टी कर मुट्ठी कर कूट २ कर एकत्र किया हो शरीर को ऐसा जिस का शरीर हो, वह हृदय के बलसहित को, ताड वृक्ष के बरावर अथवा आर्गल समान वान्द है जिस की ऐसा दक्ष अवसर का जान, कार्य करने मे कुशल विलम्वरहित काय का करने वाला मेघावी पण्डित निपुण आचार्य के पास सिल्पोपग्राही हो इस प्रकार का कर्मकर एक बडा डडा उस को पूजनी (झाड) वन्धी हो अथवा तृण को एकत्र कर वास की कडीयों (सलाईयो) एकत्र कर झाडु बनाया हो, उससे राजा के आगन मे राजा के अन्त पुर में आराम वाग मे, उद्यान मे देवालय मे सभा मे, पानी की प्रपा मे आतुरता रहित, चपलता रहित, घवराहट रहित, अतर रहित निश्चलपने सर्व दिशा मे झाड कर साफ करे, इस ही तरह वह सूरीयाभ देव का अभियोगी देवता सवृतक वायु का वैक्रय किया, वायु को वैक्रय कर श्रमण भगवत महावीर स्वामी के चारो तरफ एक योजन के मडल में जो किचत तृण यावत् सर्व अशुची ग्रहण की ग्रहण करके एकान्त में डाली, एकान्त मे डाल कर तत्काल उस कार्य से निवृता शीघ्र

निवृतकर दूसरी वक्त वैक्रय समुद्घात कर पानी के वद्दल वैक्रय किये, यथा दृष्टांत जैसे भयग का (भिस्ती का लडका) लडका तरूण यावत् शिल्पोपग्राही एक बडा पानी का वारीया (घडा) अथवा पानी की मशोडी (मशक) पानी का कलश, पानी का कुम्भ ग्रहण कर आराम बाग मे यावत् आगन अन्तःपुर आदि स्थानो मे आतुरता रहित सर्व दिशी विदिशी मे पानी का छिटकाव करे, इस प्रकार से वह सूर्याभ देव का अभियोगी देवता पानी के वद्दल वैक्रय किये, शीघ्रता से गर्जारव किया, इस प्रकार से गर्जारव कर तत्काल बीजली का चमकाव किया, बीजली चमकाव कर श्रमण भगवत महावीर स्वामी के चारो तरफ योजन परिमडल मे पानी के बारीक-बारीक फूवार की वर्षा कर रजरेणु का विनाश किया, फिर दिव्य सुगन्धित पानी की वर्षा की वर्षाद वर्षाई, वर्षा कर रज रहित नष्ट रज भ्रष्ट रज उपशान्त रज भूमिका की, करके शीघ्र उन वद्दल को उपशमाया, उपशमाकर तीसरी वक्त वैक्रय समुद्घात की तीसरी वैक्रय समुद्घात कर फूल के वद्दल वैक्रय किये, यथा दृष्टात जैसे मालीका पुत्र तरुण अवस्थावन्त यावत् सिल्पोपग्राही एक बडा फूल का पडल फूल की चगेरी फूल की चोली ग्रहण कर राजा के आगन मे यावत् चारो तरफ जिस प्रकार स्त्री के शिर के बन्धे हुये बालो के बन्धन को पुरुष खोल

वाद वह चारो तरफ विखर जाते हैं तैसे दशार्ध पाच वर्ण के फूलो को मुक्त किया, वहा कलित मनोहर ढग किया इस प्रकार वह सूरियाभ देवता का अभियोगी देवता फूलो के बद्दल का वैक्रय कर गर्जारव कर गाजा, विशेष गाज कर श्रमण भगवत महावीर स्वामी के चारो तरफ योजन के मडल मे जैसे पानी मे उत्पन्न हुऐ कमलादि फूल थल से उत्पन्न हुऐ जाई जूई आदि फूल तैसे ही वे अचित पाचो वर्ण के फूल देदीप्यमान बीट नीचे और मुख ऊपर घुटने जितना ऊचा योजन परिमडल मे फूल बिछाए यो फूलो की वृष्टि करी, वृष्टि करके कृष्णागार प्रधान चीड तरुक सेल्हारस धूप मघमघायमान सुगन्ध अभिराम सुगन्ध कर गधवट्टी समान प्रधान देवता के आने योग्य उस स्थान को किया, कराया करके शीघ्रता से उस कार्य से निवृता, निवृत कर जहा श्रमण भगवत महावीर स्वामी थे तहा आए, आकर श्रमण भगवत महावीर स्वामी को तीन वक्त उठ बैठ कर यावत् वदना नमस्कार कर श्रमण भगवत महावीर स्वामी के पास से अम्बशाल नामक चैत्य से निकले, निकल कर उस उत्कृष्ट दिव्य देवता की गति कर चलते हुऐ जहा सौधर्म देवलोक जहा सूर्याभ देव का विमान जहा सुधर्मासभा तहा आए, आकर सूर्याभ देव को हाथ जोड मस्तक से आवर्त किया जय हो

विजय हो, इस प्रकार वधाये वधाकर वह पहली दी हुई उनकी आज्ञा पीछे उनके सुपरत की । तव वह सूर्याभ देव उस अभियोगिक देव के पास उक्त कथन श्रवण कर अवधार कर हृष्ट-तुष्ट हुआ यावत् हृदय विकसायमान हुआ, पायदल सेना के मालिक देवता को बुलाया बोलाकर यो कहने लगा-अहो देवानुप्रिय ! शीघ्रता से सूर्याभ विमान की सौधर्म सभा में मेघाघर मे (घटाघर मे) गभीर ऊंडे मधुर मिष्ट शब्द वाली जो एक योजन मडल मे घटा है उस सुम्वर नामक घटा को तीन वक्त उलालो-वजावो, वजा कर महाशब्द कर उदघोषणा करो, उदघोषणा करते हुए यो कहो- अहो ! सूर्याभदेव आज्ञा करता है, अहो ! सूरियाभदेव जाता है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप की आमलकप्पा नगरी के अम्बशालवन के चैत्य मे श्रमण भगवत श्री महावीर स्वामी को वदन करने इस लिये अहो देवानुप्रियो ! तुम भी सर्व ऋद्धि सयुक्त यावत् वादित्र के गर्जारव युक्त सूर्याभ देवता के पास प्रगट होवो आवो ! तब वह पादक सेना का मालिक सूर्याभदेव का उक्त कथन श्रवण कर अवधार कर हर्षवत हुआ यावत् हृदय विकसायमान हुआ, यो बोला अहो देव ! तहत्ति जो आज्ञा विनय से वचन श्रवण किये श्रवण करके जहा सूरियाभ विमान जहा सोधार्मिक सभा जहा मेघो (घटा) घर जहा गभीर मधुर शब्दावाली एक योजन के

मडल मे ससुर नामक घटा था तहा आया, आकर उस मेघोघर में गभीर मधुर शब्दवाली योजन परिमडल प्रमाणवाली सुसर घटा को तीन वक्त बजाई उस घटा का शब्द सूर्याभविमान के प्रसादो मे विमानो के शिखरो से बाहिर चारो तरफ प्रसरित हुआ शब्द के प्रतिच्छद उठने लगे उस सहस्रो प्रतिच्छदो से विमान सकुलता व्यापी हुआ। तब उन सूर्याभ विमानवासी बहुत वैमानिक देवता देवियो एकान्त रति सुख के रमण मे आसक्त बने, सदैव प्रमादी बने विषय सुख में मूर्छित बने हुए को सुसर घटा के विस्तीर्ण शब्दने प्रतिबोधित किया सावधान किया, वे देव सावधान हुए कतुहल सहित दिया है शब्द श्रवण करने को कान जिन्होने, एकाग्र चित से उपयोगवन्त बने हुए पायक सेना का मालिक देवता ५। घटा के शब्दानुसार महा-2 शब्द का उदघोष करता हुआ ऐसा बोला-अहो देवताओ। हर्ष समाचार है, सूर्याभ विमानवामी बहुत देवता देवीयो। सुनो सूर्याभ देव के वचन हित सुख के लिये आज्ञा देते है, सूर्याभ देवता जाते हैं अहो देवताओ। सूर्याभ देव जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की आमलकप्पा नगरी के अम्बशाल बन के चैत्य मे श्रमण भगवत महावीर स्वामी को वदना करने के लिये, इसलिये तुम भी अहो देवानुप्रियाओ। सर्व अपनी-अपनी सर्व

ऋद्धि यावत् परिवार से परिवरे हुऐ विलम्ब नही करते हुऐ सूर्याभदेव के पास प्रगट होवो। तब सूर्याभ विमानवासी बहुत से वैमानिक देवता और देवीयो पायक सेना के मालिक देवता के पास से उक्त अर्थ अवधार कर हर्ष सतोष पाये, यावत् हृदय विकसायमान हुवा, उन देवो मे से कितनेक देव जिनेन्द्र को वदन करने, कितनेक देव भाव पूजा करने, कितनेक देव सत्कार करने, कितनेक सन्मान करने, कितनेक कितुहल करने, कितनेक पहिले नही सुनी ऐसी अपूर्व कथा श्रवण करने, कितनेक सुने हुऐ अर्थ का हेतु कारण का व्याकरन का पूछा करने, कितनेक शकित तत्वार्थ का निर्णय-निश्चय करने, कितनेक देवता सूर्याभदेव के वचन को मान देने कितनेक देवता परस्पर अनुराग के प्रेराये हुये, कितनेक जिनेश्वर की भक्ति के अनुराग कर, कितनेक धर्म फल प्राप्त करने, और कितनेक देवता जीतो चार से अर्थात पहिले जाते आए है इसलिये अपने को भी जाना चाहिये ऐसा विचार कर इत्यादि नाना प्रकार की कल्पना कर अपनी २ सर्व प्रकार की ऋद्धि से परिवरे हुवे यावत विलम्ब नही करते हुए सूर्याभ देवता के पास आए। तब सूर्याभ देवता उन सूर्याभ विमानवासी बहुत विमानिक देव को अपने पास आए हुवे को देख कर हर्ष सन्तोष पाया, यावत् हृदय विकसायमान हुआ, अभि-योगी आज्ञा धारक देव को बोलाया बोलाकर यो कहने लगा

अहो देवानुप्रिय ! शीघ्र ही अनेक स्थम्भो कर वेष्टित हुआ, लीला युक्त गात्र वाली शालभजिकरपूतलियो युक्त ईहामृग, मृग, वैल, घोडा, मनुष्य, पक्षी, सर्प किन्नर, अष्टापद, चमरीगाय, हाथी, बनलता पद्मलता आदि विचित्र चित्रो से चित्रित स्थम्भो युक्त, प्रवर प्रधान वेदिका (चबूतरा) युक्त अभिराम-सुखकारी विद्याधरो के यमल युग जोडे उडने यत्र के युक्त, सूर्यो की हजारो किरण समान प्रद्योतवत सहस्रो रुप कर कलित अतिशय देदीप्यमान, चक्षुलोचन कर देखने योग्य, सुख कारी स्पर्शवाला, विमान श्री शोभा युक्त रुप वाला, छोटी-छोटी घटाओ की श्रेणियो से परिमडित मधुर मनोहर स्वरवत शुभ मन को कान्तकारी दर्शन जिसका, निपुणकारीगर का निष्पन्न किया जैसा देदीप्यमान मणिरत्न की छोटी छोटी घटाओ की आवलिका की जाल से परिक्षिप्त-वेष्टित एक लाख योजन मे लम्बा चौडा विस्तार वाला दिव्य-प्रधान चलने के लिये सज्ज किया हुआ शीघ्र गति वाला दिव्ययान विमान को वैक्रय करो, वैक्रय कर यह मेरी आज्ञा शीघ्र पीछे मेरे सुपरत करो । तब वह अभियोगी सूर्याभ देव का उक्त कथन श्रवण कर हर्ष सन्तोष पाया यावत् हृदय विकसायमान हुवा, हाथ जोड कर यावत् वचन प्रमाण किया, प्रमाण कर उत्तरपूर्व के वीच ईशान कोन मे गया, जाकर वैक्रय समुद्घात की वैक्रय समुद्घात करके आत्मप्रदेश का सख्यात योजन का दड किया यावत् वादर

पुद्गल को छोडे, सूक्ष्म पुद्गल ग्रहण किये, सूक्ष्म पुद्गल ग्रहण कर दूसरी वक्त वैक्रय समुद्घात की, समुद्घात का अनेक स्थम्भ सयुक्त यावत् ऊपर कहे मुजब विमान बनाने मे प्रवृत हुआ। तब अभियोगी देवताओ ने उस दिव्य यान-विमान के तीनो दिशो में सोपान-पक्तियें बनाये तद्यथा-१ पूर्व मे २ दक्षिण मे और 3 उत्तर में उन तीनो सोपान प्रतिरूप का स्वरूप आगे कहते है। ऐसा वर्णन कहा है । तद्यथा-वज्ररत्नमय उस की भूमिका है रिष्ट रत्नमय उन पक्तियो क' मूल है । वेरुली रत्नमय उसके स्थम्भ हैं । सुवर्णमय रूपामय उसके पटिये हैं, लोहिताक्ष रत्नमय उन पटियो की सूची हैं । अंजरत्न कर उसकी सन्धि है । अनेक प्रकार के मणि रत्नमय उन पक्तियो पर चढने का आलम्बन-कठडा है वे पक्तियो चित को प्रसन्नकारी यावत् प्रतिरूप है। उन पक्तियों के आगे तोरन का वैक्रय किया वे तोरन अनेक प्रकार की मणियों के स्थम्भ पर लागये हुऐ हैं। विविध प्रकार मुक्ताफल मध्य मे लगाये हैं । विविध प्रकार के तारारुप कर सहित है, शाहमृग, मृग, बैल, घोडा, मनुष्य, मगर पक्षी, सर्प, देव, मृग अष्ठापद्, चमरीगाय, हाथी, वनलता पद्मलता इत्यादि विविध भात के चित्र कर चित्रित हैं, स्थम्भ से निकली ऊपर वेदि का कर परिगत-वीटा हुआ अभिराम विद्याधरो के

जमल युगल युक्त विविध रग वाली सूर्य की किरणो समान हजारों किरणो रूप सहस्र कर कलित, देदीप्यमान, चक्षु-लोचन को सुखमय स्पर्शवाला शोभित रूप चित को प्रसन्नकारी यावत् प्रतिरूप हैं। उस तोरन के ऊपर बहुत आठ-आठ प्रकार के मङ्गल कहे हैं, तद्यथा—(१) स्वास्तिक (२) श्रीवत्स, (३) नन्दावर्त (४) सरावला सपुट, (५) भद्रासन, कलश, युगल, मच्छ, और आरिसा, उस तोरन के ऊपर बहुत काले चमर की ध्वजा यावत् शुक्ल चमर की ध्वजा अच्छी निर्मल सूक्ष्म पुद्गल से निष्पन्न वज्रमय दण्ड युक्त कमल जैसा सुगन्धो सुरम्य चित को प्रसन्नकारी देखने योग्य अभिरूप प्रतिरूप है, उस तोरन के ऊपर बहुत छत्र पर छत्र घटा के युगल, पताकों पर पताका, उत्पल कमल का समूह चन्द्र विकासी-कुमुदनी, नलनी कमल, सुभग कमल, सोगन्धिक कमल, महापौंडरिक कमल, सो पत्र वाले कमल, हजार पत्र वाले कमल सर्व रत्नमय स्वच्छ यावत् प्रतिरूप वैक्रेय किये। अब वह अभियोगी देवता उस यान विमान के अन्दर बहुत सम (बराबर) रमणिय भूमिका का विभाग वैक्रेय किया यथा दृष्टांत नगारे के ऊपर का विभाग, मृदग के ऊपर का विभाग, पानी से भरे तलाब के ऊपर का विभाग, हस्त की हथेली का विभाग, चन्द्र का मडल, सूर्य का मडल, आरीसा का मडल, घोडे का चर्म, वराह का चर्म, सिंह का चरम, बाघ का चर्म,

दीवडी का चर्म, इत्यादि चर्म अनेक प्रकार के कीले पर चारो तरफ भूमिका के साथ यन्त्रित किये जिस प्रकार वह भूमि भाग कोमल दीखता है तैसा कोमल सहस्रो चित्रों से विचित्र पाचों वर्णों के रत्नों करके भूमिका पृष्ठ भाग जाडा हुआ है, श्रेणी पक्तियों प्रतिश्रेणी प्रतिप क्ति थे स्वस्तक नदावर्त स्वस्तिक, वर्द्धमान स्वस्तिक, मच्छी के अण्डे, मगर के अण्डे, तारा मारा आदिक पद्म कमल के पत्रो, समुद्र की तरगो, वासन्ती लताओ, पद्मलताओ, इत्यादि विविध भाति के चित्रो, से रत्न रचित हैं, तेजस्वी छाया कर प्रदिप्त प्रभा युक्त वाहिर निकली किरणें नजदीक मे अाइ हुइ वस्तु को भी प्रदिप्त करते अनेक प्रकार के पांच वर्ण के मणियों कर उपशोभित उनके पाचो मणियो क नाम—काली, हरी, लाल, पीली, और श्वेत। शिष्य प्रश्न करता है कि, वहा काले रङ्गवाली मणियो है वे मणी इस प्रकार की है क्या जैसे वर्ण विशेप यथा दृष्टान्त—आषाढ मास के मेघ की घटा, अजन सूरमा, खजन [औंगन] काजल, भैंस का शृग, भैंस के शृंग का अन्दर का विभाग, भ्रमर, भ्रमर की पक्ति, भ्रमर की पाखें, जम्बू वृक्ष के फल, काले रग के काच, कोकिला, हस्ति, काली कणेर काला बन्धूजीव, इत्यादि का जैसा काला रग होता है तैसा उन काले रग की मणीयों का रग है क्या ?

उत्तर—यह अर्थ समथ नही अर्थात उस से भी अधिक इष्टकारी है, प्रियकारी है कान्तकारी है, मनोज्ञ है, मन को सुहाती है, ऐसा उसका वण कहा है। शिष्य पूछता है वहा जो नीले रग की मणि है उस मणि का इस प्रकार का वर्णन कहा है क्या ? यथा दृष्टान्त जैसी भाग, भाग के पते, तथा भिगोरी जीव, भिगोरीये की पाखें सूबा [तोता] सूवा की पाखों, हरे घास पक्षो, हरे घास की पाखें नीली गुली, नील की गोली, शामाधान्य, उच्चत, वन की श्रेणि, हलधर के वस्त्र, मयूर की ग्रीवा, परेवा—कबूतर की ग्रीवा, अलसी का फूल वान वृक्ष का फूल, खजन केशी वनस्पति के फूल, निलोत्पल कमल, हरा अशोक वृक्ष, हरा वन्धुजीव, हरी कणेर, इस प्रकार का है क्या ?

उत्तर—यह अर्थ समथ नही, इस से भी अधिक इष्टकारी, यावत वर्ण कर सुशोभित है।

प्रश्न—तहा जो लोहित (लाल) मणि है उसका इस प्रकार का रङ्ग है क्या ?

उत्तर—यथा दृष्टान्त—बकरे का रक्त, सुसले का रक्त, मनुष्य

का रक्त, सूअर का रक्त इन्द्र-गोप जीव बाल चन्द्र, उदय पाता सूर्य, मङ्याकारण, गुमची-चिरमी की आद्धाविभाग, केसू के फूल, जाति बन्त हिंगलू, शिला—प्रवाल, प्रगटती कूपल लोहिताक्षमणि, लाखकारस किरमची रग का कवल, सिंदूर का ढगला, रक्तोत्पल कमल, रक्त अशोक वृक्ष, रक्त कणेर, रक्त वघूजीव ऐसा रग है क्या ?

उत्तर—यह अर्थ युक्त नही यावत् इस से भी अधिक इष्टकारी प्रियकारी यावत् वर्ण कहा है ।

प्रश्न—जो पीले रग की मणि है उसका इस प्रकार का वर्ण कहा है क्या ?

यथा दृष्टान्त—चम्पा का वृक्ष, सुवर्ण, चम्पा की छाल, हलदी, हलदी का अन्दर का विभाग, हरताल, हरताल का टुकडा, हरताल की गोली, चिकर रङ्ग चिप रङ्ग पामडी का रङ्ग, प्रधान सुवर्ण घसा हुआ, सुवर्ण की चीप, वासुदेव के वस्त्र, आलू के फूल, चम्पा के फूल, कोला के फूल, आवले के फूल, सुवर्ण युथिकाके फूल, कोरट वृक्ष के फूल की माला, सुहरणिक के फूल, पीला अशोक वृक्ष, पीली कणेर, पीला बन्धु जीव, इस प्रकार पीली मणि का रङ्ग कहा है क्या ?

उत्तर—यह अर्थ समर्थ नही इस से भी अधिक इष्टकारी प्रियकारी यावत् वर्ण कहा है ।

प्रश्न—जो श्वेत रङ्ग की मणि है उस का इस प्रकार का रङ्ग है क्या ?

उत्तर—यथा दृष्टान्त अकरत्न, शख, चन्द्रमा कुदके फूल, दात, हस की पक्ति, क्रौच की पक्ति, बगले की पक्ति, मोतियो के हार की पक्ति, चन्द्रमा की पक्ति, शरद ऋतु के बादल, अग्नि से शुद्ध किया हुआ रूपा का पाट, चावलों का आटा का ढग, कुन्द फूलो का ढग, कुमुद फूलों का ढग सूकी फली, मयूर के अन्दर का विभाग, कमल कन्द, कमल, ततू, हस्ती के दात, लवग के पान, पुडरिक कमल, सिन्धूवर फूल की माला, श्वेत अशोक वृक्ष, श्वेत कणेर श्वेत बन्धु जीव, इस प्रकार का श्वेत मणि का वर्ण । कहा है क्या ?

उत्तर—यह अर्थयोग्य नही इससे भी अधिक इष्टकारी यावत् श्वेत मणि का रग कहा है ।

प्रश्न—उन मणियो का इस प्रकार का गन्ध कहा हैं क्या ?

यथा दृष्टान्त—कोष्टक गन्ध के पुडे, तगर के पुडे, इलायची के पुडे, चुआ के पुडे दामण के पुडे, केशर के पुडे, चन्दन के पुडे, वाल (कसकस) के पुडे, मरुये के पुडे, जाई के पुडे जुई के पुडे स्नान मालती के पुडे, केतकी के पुडे, पाडल के पुडे

वनमाला के पुडे, अगर के पुडे, लंवग के पुडे, सूकड [चन्दन] के पुडे, वनकुलियो के पुडे, इत्यादि गन्ध के पुडों को खोल कर रखे तथा इनको में डाल कर खण्डन करे कूटे, छेदन करे, भेदन करे, विशेष बारिक करे, सूक्ष्म बनावे, उनके पडलों को ॅ, चारो तरफ बिखेरे, परिभोग करे शरीर वस्त्र को लगावे, परस्पर भोगने को देवे या लगावे, एक बरतन में से दूसरे बरतन में डाले, उस वक्त उसकी प्रधान मनोहर नाशीका को मन को सुखकारी सर्वचारो तरफ वह गन्ध पसरती है, इस प्रकार उस मणी की गन्ध है क्या ?

उत्तर—यह अर्थ युक्त नही, इस से भी अधिक इष्टाकारी प्रियकारी गन्ध कही है।

प्रश्न—उस मणि का इस प्रकार का स्पर्श है क्या ? यथा दृष्टांत— कमाया हुआ चम, कमाई रुई, बूर वनस्पति मक्खन, हंस गर्भ तुलिका, सिरसडा के फूल, बाकुल के फूल तथा पत्ते का डगला, इस प्रकार का स्पर्श है क्या ?

उत्तर—यह अर्थ समर्थ नही, इस से भी अधिक री

प्रियकारी यावत् स्पर्श उस मणि का कहा है । तब वह अभियोगी देवता उस यान-विमान के बहुत मध्य बीच में एक बडा प्रक्षक मडप वैक्रय किया, वह अनेक सैंकडो स्थम्मो करके वेष्टित, अत्यन्त रमणिय उस में अच्छी वज्रमय वेदिका बनाई, उन पर तोरण जिसमें विचित्र प्रकार के चित्रो माली भजिका पूनलियो अच्छे लक्षित गात्त युक्त विशिष्ट लष्ट-मनोहर सस्थान से सस्थित, प्रशास्त वैडूर्य रत्नमय निर्मल स्थम्भो अनेक प्रकार की मणि सुवर्ण रत्नों कर लचिन उज्जवल बहुत ही सम बराबर विभक्त भूमिका का देशविभाग में बगडे मृग वृषभ घोडा मनुष्य मगर पक्षी सर्प देवता मृग अष्टापद चमरी गाय, हस्ति, वनलता, पद्मलता इत्यादि विविध प्रकार के चित्रो से चित्रित, सुवण मणीमय थूमिका, अनेक प्रकार की पाचो रङ्ग की मणीमय घटापताका कर मण्डित, श्वेत रङ्ग का चारो तरफ किरणो को प्रसारता हुआ शिखर, गोबर कर भूमिका लिप्त की, तैसी भूमि गोशीर्ष रक्त चन्दन के चपेटा पाचो अगुलिया के लगाये उपचित चन्दन कलश स्थापन किये, चन्दन के घडे स्थापन किये तोरण कर द्वारो के देश विभाग मण्डित किये नीव भूमिका का विभाग सुन्दर किया ऊपर चन्द्रवा बान्धकर शोभित किया, फूलो के ढग मनोहर किये फलो की माला लगाकर चारो तरफ शोभित किया, कृष्णगार-कुन्द रुक

मघमघायमान गन्ध का उत्कृष्टता कर अभिराम प्रधान गन्ध युक्त गन्ध की बट्गी रूप बनाया, दिव्य वाजीओ के निघोष युक्त अपसरागान का समुदाय कर प्रतिष्ट चित को प्रसन्नकारी, देखने योग्य, यावत् प्रतिरूप बनाया । उस प्रेक्षक घर मडप मे बहुत सम रमणीय भूमि विभाग वैक्रेय किया । यावत् पाचो वर्ण की मणीमय उत्तम स्पर्श तक सब, कहना, प्रेक्षक घर मडप के ऊपर चन्द्रवा वैक्रेय किया, वह पद्मलता आदि विविध भांति के चित्र से यावत् प्रतिरूप बनाया, उस बहुत समरमणीय भूमिका के बहुत बीच मे यहा वज्रमय अखाडा वैक्रेय किया, उस अखाडे के बहुत मध्य विभाग में तहा एक बडी मणि पीठिका-मणि का चबूतरा वैक्रेय किया, वह आठ योजन का लम्बा चोडा चार योजन का जाडा ऊचा, सब मणिमय स्वच्छ यावत् प्रतिरूप उस मणिमय पीठिका के ऊपर बडा एक सिंहासन वैक्रेय किया, उस सिंहासन का इस प्रकार का वर्णन विशेष कहा, तद्यथा—तपनीय—रक्त सुवर्णमय चाकूला पट्टिये हैं नीचे का विभाग रूपामय जिस कर शोभता सिंहासन, सुशोभित चारों पाये, अनेक प्रकार की मणिमय उन चारो पाये के मस्तक हैं, जम्बूनन्द सुवर्णमय गात्र हैं ईस उपला इत्यादि, वज्रमय जिसकी स ध

से सन्धित किया, अनेक मणिमय वान निवार कर वह सिंहासन बना है, सिंहासन पर वरगडे वृषभ घोडे मनुष्य मगर मच्छ पक्षी सर्प देवता मृग अष्टापद चमरीगाय हस्ति वनलता अशोक लता पद्मलता इस की भान्ति के विचित्र चित्र से चित्रित है उत्तम से उत्तम योग्य मणि रत्नकर मण्डित है, मणि चन्द्रकान्तादि रत्न कर्केतादि रत्नमय उस की पीठ का पृष्ठ का विभाग है, उसके ऊपर के अच्छादन का वस्त्र कोमल है गलम सूर-तकिये लगाये, जिस की त्वचा भी नवीन है डाव के अन्तिम विभाग सासुकमाल, सिंह के सकन्ध पर की केसर के जैसे उन तकियो के ऊपर रोम रचित विभाग है, मसूरीये कर अच्छादित है, अच्छी तरह रचा हुआ है, उत्तम कपास का कमाया हुआ वस्त्र जिस कर अच्छादित किया है, उस पर रक्त वण का वस्त्र ढका है, अच्छा रमणीक है कमाया हुआ चरम, रूई कमाया चर्म बूर वनस्पति, मक्खन, अकतूल इसके जैसा कोमल स्पर्श वाला चित्त को प्रसन्नकारी किया । उस सिंहासन के ऊपर एक बडा विजय दूष वस्त्र चन्द्रवा वैक्रय किया, वह विजय दूष श्वेत वर्ण वाला है, जैसा—शंख, चन्द्रमा मचकुन्द, पानी के कणीये, अम्रत, बरफ, पानी के फेण का ढग होता

है इस के समान श्वेत सर्व रत्नमय अच्छा-स्वच्छ चित को प्रसन्नकारी देखने योग्य अभिरूप प्रतिरूप किया । उस सिंहासन के ऊपर विजय दूष्य के मध्य विभाग में यहा वज्रमय अकुश का वैक्रेय किया उस वज्रमय अकुश को कु भ प्रमाने मोती लटकाये वैक्रेय किया, उस कु भद्रेप्रमाण मोती के चारो तरफ छोटे आधे कु भप्रमाण मोतियों की माला परिक्षिप्त—वेष्टित की लटकाई है, वह माला तपनीय रक्त सुवर्णमय फू दे युक्त सुवर्ण के पते युक्त मण्डित की, वे अनेक प्रकार के मणीरत्नो, के हार समुदाय कर उपशोभित है उस विमान का, ऊपर का विभाग वे मालाओ परस्पर थोडी सी भीडी हुई पूर्व पश्चिम, उत्तर दक्षिण की हवा चलने से मदपने कम्पा-यमान होती, विशेष हलती लम्बायमान होती परस्पर अस्फलाती उसके झङ्कार\ प्रधान मनोज्ञ मनोहर कान को मन को निवृत्ति करता हु आ शब्द उस विमान के प्रदेश में चारो तरफ प्रसरता हुआ शब्द अपनी लक्ष्मी कर अति हो उपशोभित हो रहा है । अभियोगी देवताओ ने उस सिंहासन से वायु कौन मे तथा ईशान कौन मे सूर्याभ देव के चार हजार सामानीक देवता के लिए चार हजार भद्रासन वैक्रेय किये, सूर्याभ देव के सिंहासन से पूर्व दिशा में सूर्याभ देव की चार अग्रमेहषीयो के चार

तब उस सूर्याभदेव के चार हजार सामानिक बरा-बरी के उमराव जैसे देवो उस गमन करने के वैमान के उत्तर दिशा के सोपान से चढें चढ कर अलग-अलग पहिले स्थापन किये हुए भद्रासन पर बैठे, ऊपर शेष रहे वे देवता देवीयों उस दिव्य गमन करने के विमान के दक्षिण दिशा के सोपान से चढे चढ कर अलग-अलग प्रथम स्थापन किये हुए भद्रासनो पर बैठे । तब वह सूर्याभ देव उस सिंहासन पर बैठे बाद आठ-आठ मंगलिक आगे से अनुक्रम से चले उनके नाम। स्वस्तिक साथीया (२) श्रवच्छ साथीया, यावत् दर्पण तब फिर उसके बाद और भी कलश, भिंगार, झारी, छत्र, पताका चमर उनको देखते ही मनमे रति सुख उत्पन्न होवे वैसे गमनकार्य में इनके दर्शन मंगलकारी होवे ऐसे आगे चले, फिर वायु के झपाट से फरराती हुई विजय और वैजयती नामक दोनों पताकाओ है आकाश क्षेत्र का उल्लंघन करती हुई गमन कर रही है।

कोरट वृक्ष के फूलो की मालाओ चारों तरफ लटक रही है। जिसके ऐसे शोभित छत्र—तेज कर वर्तुलाकार चन्द्र र है, उन को ऊंच किया हुआ, निर्मल

मर्यादावन्त ऊपर धारण किया हुआ सिंहासन मणिरत्नादि के विविध भांति के चित्रो से चित्र हुआ पादपीठिका युक्त पादपीठिका पर पादुक पावडीयों स्थापन की हुई, बहुत किंकर देवताओ कर परिवरा हुआ आगे अनुक्रम से चला, तब फिर वज्ररत्नमय वाटला मनोज्ञ अच्छा रहा हुआ अत्यन्त सकुमाल, घसकर मठारा मठारा किया हुआ सुप्रतिष्ठ अच्छा स्थापन किया हुआ अनेक प्रधान पांच वर्ण की हजारों ध्वजाओं कर परिमण्डित आभीराम आनन्दकारी वायुकर कम्पायमान होती हुई वैजय और वैजयन्ती नामक ध्वजाओं ऊंची, की हुई पताकाओ छत्र ऊपर उन छत्रो कर कलित मनोहर बहुत ऊंची गगन तले को उल्लघन करता सिखर है जिसका, अर्थात् एक हजार योजन की ऊंची महती महामोटी महेन्द्र नामक की ध्वजा आगे से अनुक्रम से चली, तदनन्तर एक सरीखे रूप धारक, एक सरीखे वस्त्र पहने हुए, सरीखे शस्त्रो-कर सजे हुये, सरीखे सर्व प्रकार के अलकारो कर भूषित, महासुभटो भटो चेटको के परिवार से परिवरि हुई पांच अणिकाओ के अधिपति आगे से अनुक्रम से चले, तब फिर सूर्याभ विमान के रहने वाले बहुत वैमानिक देवता देवीयों सर्व प्रकार की ऋद्धि परिवार से परिवरे हुये

वन उस सूर्याभदेव के चार हजार सामानिक वरा-वरी के उमराव जैसे देवो उस गमन करने के वैमान के उत्तर दिशा के सोपान से चढे चढ कर अलग-अलग पहिले स्थापन किये हुए भद्रासन पर बैठे, ऊपर शेष रहे वे देवता देवीयों उस दिव्य गमन करने के विमान के दक्षिण दिशा के सोपान से चढे चढ कर अलग-अलग प्रथम स्थापन किये हुए भद्रासनो पर बैठे । तब वह सूर्याभ देव उस सिंहासन पर बैठे बाद आठ-आठ मगलिक आगे से अनुक्रम से चले उनके नाम। स्वस्तिक साथीया (२) अवच्छ साथीया, यावत् दर्पण तब फिर उसके बाद और भी कलश, भिंगार, भारी, छत्र, पताका चमर उनको देखते ही मनमे रति सुख उत्पन्न होवे वैसे गमनकार्य में इनके दर्शन मगलकारी होवे ऐसे आगे चले, फिर वायु के झपाट से फरराती हुई विजय और वेजयती नामक दोनों पताकाओ है आकाश क्षेत्र का उल्लघन करती हुई गमन कर रही है।

कोरट वृक्ष के फूलो की मालाओ चारों तरफ लटक रही है। जिसके ऐसे शोभित छत्र--तेज कर वर्तुलाकार चन्द्र र है, उन को ऊच किया हुआ, निर्मल

वीर स्वामी तहां आया, आकर श्रमण भगवत महावीर स्वामी से उस दीव्यगमन करने के विमान को तीन वक्त दाहनी वाजु से दक्षिणावत फिराकर श्रमण भगवत महावीर स्वामी से ईशान कोन मे उस दिव्य विमान को थोडा जमीन चार अगुल ऊपर जड। रख कर चार अग्र-महिषी और सब परिवार युक्त दो अनिका (सेना) तद्यथा (१) गन्धर्व की और (२) नाटक की उस युक्त उस के साथ परिवरा हुआ उस यान विमान के पूर्व दिशा के पत्तिये से उतरा। तब फिर उस सूर्याभ देव के चार हजार समानिक देवता उस यान विमान से उतरने के पत्तिये से उतरे अपरशेष सब देवता देवीयो उस दिव्य विमान से दक्षिण के पत्तिये से उतरे।

तब फिर वह सूर्याभदेव चार हजार अग्रमहिषी देवीयो यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देवता और भी बहुत सूर्याभ विमानवासी वैमानिक देवता देवीयो के परिवार से परिवरा हुवा सब देव सम्बन्धी ऋद्धि युक्त यावत् वादित्र के झकार युक्त जहां श्रमण भगवत महावीर स्वामी थे तहा आया, तहां आकर श्रमण भगवत महावीर स्वामी को तीन वक्त उठ बैठ हाथ

यावत् वादिन्त्र के झङ्कार होते हुये सूर्याभ देव के आगे दोनो तरफ पीछे बरोबरी से चले, तब वह सूर्याभ देव पाचो कटक के स्वामी करके परिवरा हुआ वज्ररत्नमय लष्ट—मनोहर सस्थान एक हजार योजन ऊंची बहुत बडी महिन्द्र ध्वजा आगे से किंकर देवता उठा कर चलते हुये चार हजार समानिक देवता यावत् सोलह हजार आत्म-रक्षक देवता इन सिवाय और भी बहुत सूर्याभ विमान वासी देवता देवीयो के साथ परिवरे हुये यावत वादिन्त्र के झङ्कार होते हुये सोधर्मा देवलोक के मध्य-मध्य में हो वह प्रधान दीव्य देवता सम्बन्धी ऋद्धि, देवता सम्बन्धि द्युति, दीव्य देवता सम्बन्धि भाव देखाता हुआ सब देवताओ को जागृत करता हुआ जहा सौधर्मा देव लोक के उत्तर मे जहां निकलने का मार्ग था तहा आया आकर एक लाख योजन प्रमाण विमान युक्त उपक्रम कर नीचा उतरा, नीचे उतर कर उस उत्कृष्ट देवगति कर यावत् तिर्च्छे असख्यात द्वीप समुद्र के मध्य-मध्य में होकर जहा नदीसरद्वीप मे दक्षिण पूर्व के बीच अग्नि कौन का रतिकर नामक पर्वत था तहां आया, तहा आ कर वह दीव्य देवता की ऋद्धि यावत् देवता सम्बन्धी भाव उसको प्रति सहारता सकोचता हुआ जहा जबूद्वीप जहा आम्लकप्पा नगरी जहां अम्बशाल वन चैत्य, जहा श्रमण भगवत श्री महा

वीर स्वामी तहा आया, आकर श्रमण भगवंत महावीर स्वामी से उस दीव्यगमन करने के विमान को तीन वक्त दाहनी बाजु से दक्षिणावत फिराकर श्रमण भगवंत महावीर स्वामी से ईशान कोन मे उस दिव्य विमान को थोड़ा जमीन चार अगुल ऊपर उड़ा रख कर चार अग्र-महिषी और सब परिवार युक्त दो अनिका (सेना) तद्यथा (१) गन्धर्व की और (२) नाटक की उस युक्त उस के साथ परिवरा हुआ उस यान विमान के पूर्व दिशा के पक्तिये से उतरा। तब फिर उस सूर्याभ देव के चार हजार समानिक देवता उस यान विमान से उतरने के पक्तिये से उतरे अपरशेष सब देवता देवीयो उस दिव्य विमान से दक्षिण के पक्तिये से उतरे।

तव फिर वह सूर्याभदेव चार हजार अग्रमहिषी देवीयो यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देवता और भी बहुत सूर्याभ विमानवासी वैमानिक देवता देवीयों के परिवार से परिवरा हुवा सर्व देव सम्बन्धी ऋद्धि युक्त यावत् वादित्र के झकार युक्त जहा श्रमण भगवंत महावीर स्वामी थे तहा आया, तहां आकर श्रमण भगवंत महावीर स्वामी को तीन वक्त उठ बैठ हाथ

जोड पदक्षिणावर्तं फिराये, यो किया, यो करके वन्दना गुणानुवाद नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके यो कहने लगे—अहो भगवन् ! मैं सूर्याभ देव देवानुप्रिय को वन्दना नमस्कार करता हू । यावत् पर्युपासना सेवा भक्ति करता हू । श्रमण भगवत श्री महावीर स्वामी सूर्याभदेव से ऐसे बोले—अहो सूर्याभ ! यह तुम्हारा पुराना आचार है, अहो सूर्याभ ! यह तुम्हारा जीताचार है, अर्थात जो-जो सूर्याभ देव हुये हैं उन्होंने तीर्थंकरो को इसी प्रकार वन्दन किया है, अहो-२ सूर्याभ ! यह तुम्हारा कर्तव्य है, अहो सूर्याभ ! यह तुम्हारी करणी है, अहो सूर्याभ ! यह तुम्हारे आचरणे योग्य कार्य है, अहो सूर्याभ ! इस कर्तव्य की तीर्थंकरो ने आज्ञा दी है । सूर्याभ ! जो—२ भुवनपति वाणव्यन्तर जोतषी व वैमानिक देवता है वे सब अरिहत भगवत को वन्दते है नमस्कार करते है, फिर अपना नाम गोत्र कहते है, इस लिए अहो सूर्याभ ! यह तुम्हारा पुराना कर्तव्य है यावत् तीर्थंकरो ने आज्ञा दी है ।

तब सूर्याभ देव श्रमण भगवत महावीर स्वामी को उक्त कथन श्रवण करके हर्ष सन्तोष पाया यावत् श्रमण

भगवत श्री महावीर स्वामी को बन्दना नमस्कार किया, बन्दना नमस्कार करके नीचे आसनसेन बहुत दूर न बहुत नजीक सुश्रुषा करता हुआ नम्रता धरता हुआ भगवत के सम्मुख हाथ जोड कर सेवा करने लगा। तब श्रमण भगवत महावीर स्वामी सूर्याभदेव को और उस बडी परिषदा को यावत् धर्मोपदेश दिया, धर्म कथा श्रवण कर परिषदा जिस दिशा से आई थी उस दिशा मे पीछे गई। तब सूर्याभदेव श्रमण भगवत महावीर स्वामी के समीप से धर्म श्रवण कर अवधार कर हर्ष सन्तोष पाया, यावत् हृदय विकसायमान हुआ, उठा, खड़ा हुआ, खडा होकर श्रमण भगवत महावीर स्वामी को बन्दन नमस्कार किया, बन्दना नमस्कार कर यो कहने लगा—

(१) अहो भगवन्! मैं सूर्याभदेव क्या? भव्य सिद्धि हू कि अभव्य सिद्धि हू?

(२) सम्यकदृष्टि हू कि मिथ्या दृष्टि हू?

(३) परित ससारी हू कि अनन्त ससारी हू

(४) सुलभ बोधी हू कि दुर्लभ बोधी हू?

(५) अराधिक हू कि विराधिक हू?

(६) चरिम हू कि अचरिम हू?

अर्थात् यह मेरा देव सम्बन्धी भव अन्तिम है कि और भी मुझे भव करने पड़ेंगे ? श्रमण भगवत महावीर स्वामी सूर्याभदेव से यो बोले—

(१) सूर्याभ ! तू भव्य सिद्धिक है परन्तु अभव्य असिद्धिक नही है।

(२) तू सम्यक दृष्टि है परन्तु मिथ्या दृष्टि नही है ।

(३) तू परित ससारी है परन्तु अनन्त ससारी नही है।

(४) तू सुलभ वोधी है परन्तु दुर्लभ वोधी नही है ।

(५) तू आराधिक जिनाज्ञा पालक है परन्तु विराधिक नहीं है

(६) तू चरम है यह तेरा देव सम्बन्धी अन्तिम भव है परन्तु अचरिम नही है ।

तब वह सूर्याभदेव श्रमण भगवन महावीर स्वामी का उक्त कथन श्रवण कर हर्ष सन्तोष पाया, चित मे आनन्दित हुआ परमशीतल हुआ श्रमण भगवत महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार कर यो कहने लगा—अहो भगवन् ! तुम सब जानते हो सब देखते हो, तीनो काल के वर्ताव को जानते हो केवल ज्ञान कर तीनों काल के वर्ताव को देखते हो, केवल ज्ञान, केवल दर्शन कर, सर्व वस्तु के भाव-

प्र्याय को भी जानते हो देखते हो, अहो देवानुप्रिय ! जानते हो मेरी पहिले की हकीकत, अब होगी वह हकीकत, परन्तु गौतमादि जो छद्मस्थ श्रमण निर्ग्रन्थ को मुझे जो देवता सम्बन्धी दिव्य ऋद्धि, दिव्य द्युति दिव्य भाव मिला है प्राप्त हुआ है सन्मुख आया है उसे मैं चाहता हू कि अहो देवानुप्रिय ! भक्ति पूर्वक गौतमादि श्रमण निर्ग्रन्थ को दिव्य देवता सम्बन्धी ऋद्धि दिव्य देवता सम्बन्धी भाव दिव्य बत्तीस प्रकार का नाटक देखाऊ श्रमण निर्ग्रन्थ को दिव्य ऋद्धि यावत् देखाऊ । तब श्रमण भगवत श्री महावीर स्वामी सूर्याभदेव का उक्त कथन श्रवण कर आदर नही दिया, अच्छा भी नही जाना, परन्तु मौन रहे । तब वह सूर्याभदेव श्रमण भगवत महावीर स्वामी को दो वक्त तीन वक्त ऐसा बोला—अहो भगवन् ! आप तो सब जानते हो यावत् मे छद्मस्त को देव की ऋद्धि बताऊ, ऐसा कह कर श्रमण भगवत महावीर स्वामी को तीन वक्त उठ बैठ वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार कर, वैक्रय समुद्घात करके सख्यात योजन का आत्मप्रदेश का दण्ड निकाला, निकाल कर सोलह प्रकार के रत्न के बादर, पुद्गल, छोडे छोड कर सूक्ष्म पुद्गल को ग्रहण किये सूक्ष्म पुद्गल ग्रहण कर दूसरी वक्त वैक्रय समुद्घात की समुद्घात कर वहा बहुत सम बराबर भूमिका का भाग के मध्य विभाग मे तूला यावत् उत्तम मणियों का जडा हुआ,

उस बहुत सम रमणीय भूमिका के भाग के मध्य विभाग में प्रेक्षक घर मडप वैक्रय किया, वह अनेक सकडो स्थम कर वैष्टित वर्णन योग्य वह बहुत रमणिक भूमीका के विभाग के मध्य में ऊपर चन्द्रमा वन्धा, उसके नीचे प्रेक्षक घर में मणि पीठका चबूतरा वैक्रय किया, उस मणिपीठका के ऊपर सिंहासन वैक्रय किया सर्व परिवार सहित ,यावत् ऊपर अकुश लटका कर उस के नीचे कुंभ प्रमाणे मोती लगाये, उसके चारो तरफ आर्ध कुंभ प्रमाणे मोती इत्यादि सव कथन विमान जैसा जानना, तव सूर्याभदेव श्रमण भगवत महावीर स्वामी को सविनय मुद्रा से अवलोकन प्रणाम-नमन किया, नमन कर कहने लगा-अहो भगवन् मुझको अपना भक्त जानना, मेरी अशातना माफ करना ऐसा कह कर उस सिंहासन पर तीर्थंकर के सन्मुख मुख करके बैठा। तव वह सूर्याभदेव प्रथम तो अनेक प्रकार की मणीयों से जडित सुवर्णमय निर्मल स्वच्छ मह्रा मूल्यवान निपुण कारीगिर ने बनाये हो ऐसे देदीप्यमान महा आभरण कडा वहिरखा भुजवध आदि उत्तम आभूषण कर देदीप्यमान पुष्ट प्रलम्भ ऐसो दक्षिण भूजा का प्रसार किया भुजा लम्बी करके उसमें एक सरीखे एक सरीखी त्वचा शरीर की चमडी वाले, एक सरीखी वयउमर वाले, एक सरीखी लावण्यता शरीर के आकार वाले, सरीखे रूप शरीर की कान्ती, गुण कोमलतादि

युक्त, एक सरीखे सब आभरण भूषण के धारक, तैसे ही एक सरीखे वस्त्र के धारक, दोनो तरफ के पल्लव जिन्होंने सवार बराबर किये इस प्रकार का प्रलम्ब उत्तरासन स्कन्धपर धारण करने वाले, विधि युक्त केसर चोली का तिलक मस्तक पर धारण करने वाले, मस्तक पर शिखर समान मुकट के धारन करने वाले, गले में किचुक नामक आभरण विशेष के बन्धन करने वाले, विचित्र चित्र से चित्रिका कटीपर कम्मर पर बन्धन करने वाले, श्वेत समुद्र के फेन उज्जवल अथवा समुद्र मे पानी गमन होने से जिस प्रकार लेहरें पड़ती हैं फेन अच्छादित होता है उस आवंत समान प्रदीपमान माला के धारक अनेक चित्रकर चित्रत, वस्त्र के पहनने वाले एकावली कठ के आभरण युक्त प्रति पूर्ण शोभायमान वस्त्र के धारक भूषण के धारक ऐसे एक सो आठ देव कुमार वैक्रय कर निकाले। तदन्तर अनेक प्रकार के मणियो से जडित सुवर्णमय भूषणो से भूषित पुष्ट प्रलम्ब बायी (डाबी) भुजा को पसारी-लम्बी की, प्रसार कर उसमें मे एक सरीखी एकसी शरीर की त्वचा वाली, एक सरीखी वयवानी एकसी लावण्यता, रूप यौवन आदि विविध प्रकार के गुण की धारक एक सरीखे आभरण को धारक, वस्त्र की धारक, उपकरण की धारक इन तीनो कर युक्त दोनो तरफ के पल्ले जिस सभालकर बराबर किये स्कन्ध पर स्थापना कि साडी विधि युक्त तिलक भी मस्तक पर स्थापन किया है, तैसे ही मस्तक पर शिखर बन्ध मुकट, जरी की कुचुकी बन्धी और भी अनेक प्रकार की मणियों से जडे हुए है जिनके अगोपांग ऐसे एक सो आठ नाटक के लिये, सज्ज हुए देवता

उस बहुत सम रमणीय भूमिका के भाग के मध्य विभाग में प्रेक्षक घर मडप वैक्रय किया, वह अनेक सकडो स्थभ कर वेंष्टित वर्णन योग्य वह बहुत रमणिक भूमीका के विभाग के मध्य में ऊपर चन्द्रमा वन्धा, उसके नीचे प्रेक्षक घर में मणि पीठका चबूतरा वैक्रय किया, उस मणिपीठका के ऊपर सिंहासन वैक्रय किया सर्व परिवार सहित ,यावत् ऊपर अकुश लटका कर उस के नीचे कुंभ प्रमाणे मोती लगाये, उसके चारो तरफ आधे कुंभ प्रमाणे मोती इत्यादि सब कथन विमान जैसा जानना, तब सूर्याभदेव श्रमण भगवत महावीर स्वामी को सविनय मुद्रा से अवलोकन प्रणाम-नमन किया, नमन कर कहने लगा-अहो भगवन् मुझको अपना भक्त जानना, मेरी अशातना माफ करना ऐसा कह कर उस सिंहासन पर तीर्थंकर के सन्मुख मुख करके बैठा। तब वह सूर्याभदेव प्रथम तो अनेक प्रकार की मणीयो से जडित सुवर्णमय निर्मल स्वच्छ महा मूल्यवान निपुण कारीगिर ने बनाये हो ऐसे देदीप्यमान महा आभरण कडा बहिरखा भुजबध आदि ऊत्तम आभूषण कर देदीप्यमान पुष्ट प्रलम्भ ऐसी दक्षिण भूजा का प्रसार किया भुजा लम्बी करके उसमें एक सरीखे एक सरीखी त्वचा शरीर की चमडी वाले, एक सरीखी वयउमर वाले, एक सरीखी लावण्यता शरीर के आकार वाले, सरीखे रूप शरीर की कान्ती, गुण कोमलतादि

ऋद्धि युक्त देवता की द्युति कान्ती युक्त देवता के सामर्थ्यपना युक्त, भाव बत्तीस प्रकार के नाटक बतावो, बताकर शीघ्रता से यह मेरी आज्ञा पीछे मेरे सुपरत करो तब वे बहुत से देवता के कुमार बहुत से देवता की कुमारिका सूर्याभदेव का उक्त कथन श्रवण कर हृष्ट तुष्ट व आनन्दित हुए हाथ जोड कर यावत् आज्ञा परमाण की, जहां श्रमण भगवत महावीर स्वामी थे तहा आये आकर श्रमण भगवत महावीर स्वामी को उक्त विधि से वदना नमस्कार किया वदना नमस्कार कर जहा गौतमादि श्रमण निग्रन्थ थे तहा आए। तब वे बहुत देवता के कुमार और देवता की कुमारिओ ने पंक्ति वद्ध बराबरी से समवसरण किया, एकत्र हुऐ एक ही दम सब एकत्र होकर पंक्ति बन्धी-सब पंक्तिबध बराबर से रहे, बराबर पंक्तिबन्ध खडे रहकर एक ही साथ सब नीचे नमे, एक ही साथ नीचे नम कर एक ही साथ सब ऊचे हुए, साथ ही खडे हुऐ, ऐसे ही तीसरी वक्त भी नमस्कार कर खडे हुए, स्थम्भ की तरह हलन चलन रहित निश्चल खडे रहे ऊपर नीचे मस्तकों को झुका कर नाम व गोत्र बता कर एक ही साथ वे गुनपचास जाति के वादित्र को ग्रहण किये, एक ही साथ बजाने लगे और एक ही साथ गायन करने लगे, वे किस प्रकार गाने लगे सो कहते हैं—प्रथम हृदय में मन्द स्वर से उठा कर मस्तक में प्रवेश कर घुमा कर कण्ठ में उत्तार कर तीन प्रकार के ताल मद मध्यस्त ऊच अर्थात गीत का उच्चार करते मद स्वर फिर मध्यस्त से फिर मस्तक में हृस्वपने हनित होता ऊच

की कुमारीयो डावी भुजा से निकाली । तब फिर सूर्याभ देव एक सो आठ शख वैक्रय किये, एक सो आठ शख के वजाने वाले वैक्रय किये, एक सो आठ रणसंगे वैक्रय किये, एक सो आठ रणसंगे वजाने वाले वैक्रय किये, एक सो आठ छोटे सखिये वैक्रय किये एक सो आठ छोटे शखये वजाने वाले वैक्रय किये, एक सो आठ खरमुखी वादिन्त्र वैक्रय किये, एक सो आठ खरमुखी वजाने वाले वैक्रय किये, एक सो आठ काहुली वादिन्त्र वैक्रय किये, एक सो आठ कोलावाडी वादिन्त्र वैक्रय किये, एक सो आठ वजाने वाले वैक्रय किये, इत्यादि सब गुण पचास जाति के वादिन्त्र अलग-अलग एक सौ आठ-२ वैक्रय किए और उन के वजाने वाले भी एक सा आठ-२ वैक्रय किये, उन बहुत से देवता के कुमारो और बहुत सी कुमारीका को वोलाये । तब वे वहुत देवता के कुमार देवता की कुमारिकाओ सूर्याभदेवता के वोलाये हुये हृष्ट तुष्ट यावत् हृदय विकसायमान हुआ, जहा सूर्याभदेव हैं तहां आये, तहां आकर सूर्याभदेव से हाथ जोड कर दशो नख एकत्र मस्तक पर चढ़ा कर जय हो विजय हो इस प्रकार बधा कर यों कहने लगे अहो देवानुप्रिय जो हमारे योग्य कार्य हो उसकी हमको आज्ञा करो । तब सूर्याभदेव उन बहुत से देव कुमार देव कुमारीका को यो कहने लगा जावो तुम अहो देवानुप्रिया ! श्रमण भगवत महावीर स्वामी को तीन वक्त उठ बैठ हाथ जोड प्रदक्षिणावर्त फिरा कर इस प्रकार वदना नमस्कार करो, वन्दना नमस्कार करके तुमारा नाम गोत्र सुनावो फिर श्रमण निर्ग्रन्थो को वह प्रधान दिव्य देवता की

ऋद्धि युक्त देवता की द्युति कान्ती युक्त देवता के साम्यंयपना युक्त, भाव वत्तीस प्रकार के नाटक बतावो, बताकर शीघ्रता से यह मेरी आज्ञा पीछे मेरे सुपरत करो तब वे बहुत से देवता के कुमार बहुत से देवता की कुमारिका सूर्याभदेव का उक्त कथन श्रवण कर हृष्ट तुष्ट व आनन्दित हुए हाथ जोड कर यावत् आज्ञा परमाण की, जहां श्रमण भगवत महावीर स्वामी थे तहा आये आकर श्रमण भगवत महावीर स्वामी को उक्त विधि से वदना नमस्कार किया वदना नमस्कार कर जहा गौतमादि श्रमण निग्रन्थ थे तहा आए । तव वे बहुत देवता के कुमार और देवता की कुमारिओ ने पंक्ति बद्ध बराबरी से समवसरण किया, एकत्र हुऐ एक ही दम सब एकत्र होकर पंक्ति बन्धी-सव पंक्तिवध बराबर से रहे, बराबर पंक्तिबन्ध खडे रहकर एक ही साथ सव नीचे नमे, एक ही साथ नीचे नम कर एक ही साथ सब ऊचे हुए, साथ ही खडे हुऐ, ऐसे ही तीसरी वक्त भी नमस्कार कर खडे हुए, स्थम्भ की तरह हलन चलन रहित निश्चल खडे रहे ऊपर नीचे मस्तकों को झुका कर नाम व गोत्र बता कर एक ही साथ वे गुनपचास जाति के वादित्र को ग्रहण किये, एक ही साथ बजाने लगे और एक ही साथ गायन करने लगे, वे किस प्रकार गाने लगे सो कहते हैं—प्रथम हृदय में मन्द स्वर से उठा कर मस्तक में प्रवेश कर घुमा कर कण्ठ में उतार कर तीन प्रकार के ताल मद मध्यस्त ऊच अर्थात गीत का उच्चार करते मद स्वर फिर मध्यस्त से फिर मस्तक में ह्रस्वपने हनित होता ऊच

स्वर होवे उसे मस्तक तार कहिये, फिर मस्तक से ऊपर ऊच स्वर का चलन होता हुआ कण्ठ मे घोलता हुआ मधुरता को प्राप्त होता इस प्रकार तीन भेद युक्त गुजाते हुए प्रधान अवक्र शब्द मार्ग के अनेक प्रतिच्छन्दो के सहस्त्र उठते हुए गुह्य मस्तक कण्ठ में कारण क्रिया अविरुद्ध वह इस प्रकार कि हृदय मे स्वर अपनी भूमीकानुसार से विस्तार पावे, आगे उर मे जाकर विशालता धारण करे वह कण्ठ मे आ कर फटे नही विशुद्ध कण्ठ से मस्तक में पहुचा हुआ श्लेषादि दूषण रहित, वास की वीणा, कासे की झाजो, खरमुखी, तेल पडा समान वादित्र युक्त अनुसरता गीत समप्रयुक्त वापरता हुआ और भी मिष्ट ताल के पीछे गवाता हुआ घोलना सहित श्रोता के मन को हरण करता स्वर कर युक्त अक्षर पद का सचार है जिस का श्रोता को रति उत्पादक अत्यन्त शोभनीय अच्छा स्वरूप वाला वह देव सम्बन्धी नाटक मे स्वस्थ हुआ ऐसा गीत विशेष से गाने लगे और वे हु हु मुख का फुकार करके वजाते हुए शख को, साग को सखी को खरमुही को, पीपरी की इतने वाने मुख के वायु कर वजाते, पणच, ढोल को आस्फाल कर बजाते, भभा होरमान तावडू, भेरी, झालर, दुदभी, घोडा, बोलनेवड मुखर वादित्र, नदीमुख मादल, यह वादित्र विशेष ताडने से वजाते, आलिगन चुम्बन गोमुखी को, मादल को, पूछना, वीना को, वीपची को, वलकी को, कूटना, कलगी को, चित्र पीना को सारना, बन्धी वादित्र सुघोष को फोडना, भमरी छ भमरी फदी वादी स्परसना तूणा तुम्व वीणा थाडा सर ओडना खेंचना, अमोडी झाज, नकुल

मूर्छना मुकद को दुकद को चीची को वजाना, करड को दीडी को किरनका को कटम्भ को चित्र शेषन को ताडना, दर्दर को कुस्तम्भ को, कीलसीका को मडिका को परस्पर आस्फालना हाथीडा कासताल, घरडना, गिरीशिखा को, लानरीका को, मगरीका को, सुसमारीका को फूकना, वच को चाली को वेणु को पर्वतंना इस प्रकार गुणपचास जाती के वादित्र को विविध रीति से वजाने लगे। तब वे देवता उस दिव्य प्रधान नाटक से दीव्य प्रधान गीत, दिव्य प्रधान वादित्र, मन को सुहाता, शृंगार रस कर पूरित प्रधान मनोज्ञ मनोहर नाटक, मनहरगीत, मन हर वादित्र इत्यादि कर वहा आकुल बना, कलकलाट भूत हुआ, दीव्य देवरमण मे पर्वर्ते ' तब वे देव कुमार देव कुमारियो ने श्रमण भगवत महावीर स्वामी सन्मुख वत्तीस प्रकार के नाटक की रचना रची उसकी विधी—प्रथम भगवत सन्मुख (१) साथीया, (२) श्रीवत्स साथीया, (३) नन्दावर्त साथीया, (४) सरावला सपुट, (५) भद्रासन, (६) कलश (७) मच्छ युग्म और (८) दर्पण (आरीसा) यह आठ मगल के चित्राकार नाटक की रचना रच कर बताई। (२) तब फिर वे देव कुमार देव कुमारीका एक हो साथ समवशरण किया, एकठे मिले, मिल कर उक्त प्रकार सब कथन कहना यावत् दिव्य देव रमणीय प्रवर्तते हुए तव फिर देव कुमार देव कुमारिकाओं श्रमण भगवत श्री महावीर स्वामी के सन्मुख (१) आवर्त प्रत्यावर्त (२) उत्तरावर्त साथीया के रूप, सीधी श्रेणी उल्टी श्रेणी इस प्रकार साथीया, श्री स्वस्तिक लक्षण युक्त मच्छीयो के अण्डे के आकार, जारा मारी

लक्षण विशेष मणि के आकार, फूलो की पंक्ति, पदमकमल की पखडीयो, विविध भाति के चित्रो के नाम का दिव्य प्रधान दूसरा नाटक देखाया, ऐसे ही आगे के एक-एक नाटक की अलग-अलग विधी जानना, समवसरण करके नाटक किये, गीत गाये, वादित्र बजाये, देव रमण मे प्रवर्ते इत्यादि सब उक्त प्रकार कहना, तब वे बहुत देवताओं के कुमार देवताओ की कुमारिका श्रमण भगवत महावीर स्वामी के आगे-वरगड, मृग, वृषभ, घोडा मनुष्य, किन्नर, देवता, शाह मृग, अष्टापद, चमरी गाय, हस्ति, अशोकलता, पदमलता, इस प्रकार विविध प्रकार के चित्राकार नाम का तीसरा दीव्य नाटक बताया।

एक तरफ से वाकी, एक तरफ से तूटी, दोनो तरफ से टूटी एक तरफ से चक्र वाल (अर्ध चन्द्राकार) दोनों तरफ से चक्रावाल (पूर्ण चन्द्राकार) यों चक्रवाल नाम का चौथा नाटक बताया (५) चन्द्रमा की पक्ति, सूर्यो की पक्ति, हस पक्षी की पक्ति, एकावलिहार, ताराओ की पक्ति, कनकावली हार की पक्ति, रत्नावली हारकी पक्ति मुक्तावली का यो आवली आकार नामक पाचवा नाटक वताया।

चन्द्रमा के उदय होने की रीति, सूर्य के उदय होने की रीति, यों उदय प्रभूतिक नाम का छटा नाटक बताया।

चन्द्रमा के गमन की रीति, सूर्य गमन की प्रभृति, गमन की रीति, गमनागमन नामक सातवा नाटक दिखाया।

(८) चन्द्रमा का ग्रहण, सूर्य का ग्रहण, आवरण नामक आठवा नाटक देखाया ।

(९) चन्द्रमा अस्त होने की रीति । सूर्य अस्त होने की रीतियो अथमन प्रभृति नामक नवमा नाटक बताया ।

(१०) चन्द्रमा के मडलाकार, सूर्य के मडलाकार, नाग मडलाकार, यक्ष मडलाकार, भूत मडलाकार, राक्षस मडलाकार, गधर्व मडलाकार यों मडल प्रभृति नाम का दसवा नाटक बताया।

(११) वृषभ की ललित गति के आकार, सिंह की ललित गति के आकार, घोडे की ललित गति के आकार, ऐसे हस्ति की, मस्त घोडे की विलास गति, मस्त गति विलास गति द्रुत विलम्बन नाम का ग्यारहवा दिव्य नाटक बताया ।

(१२) गाडीयो के आकार, सागर के आकार, नगर के आकार, यो सागर नगर विनृति नाम का बाहरवा दिव्य नाटक बताया ।

(१३) नन्दावर्त की तरह, चन्द्रमावर्त की तरह, नन्दा प्रविभक्ति नाम प्रधान तेरहवा नाटक बताया ।

(१४) मच्छ का आकार, मगर के आकार, जरा जल चर जीवाकार, मरा जल चर जीवाकार, मगरमच्छ जरामरा के अण्डे के आकार, अण्डाकार नामक दिव्य नाटक चोहदवा बताया ।

(१५) कक्का नामक अक्षराकार, खख्खा नामक अक्षराकार गग्गा नामक अक्षराकार, घघ्घा नामक अक्षराकार, ङङ्ङा नामक अक्षराकार, इस के वर्ग के पाच अक्षर आकार रूप बना कर पन्द्रहवा नाटक बताया ।

(१६) जिस प्रकार कवर्ग का नाटक किया, ऐसे ही चवर्ग के पाच अक्षर च, छ, ज, झ, ञ इनके आकार ।

(१७) टवर्ग के पाच अक्षर ट, ठ ड ढ, ण इनके आकार

(१८) तवर्ग के पाच अक्षर त, थ, द, ध, न इन के आकार ।

(१६) पवर्ग के पाच अक्षर प, फ, ब, भ, म इनके आकार उन्नीसवा नाटक बताया ।

(२०) अशोक वृक्षाकार, अम्ब वृक्षाकार, जम्बू वृक्षाकार, कोसंब वृक्षाकार, यो पल्लवाकार नामक नाटक बीसवा बताया ।

(२१) पदमलता, नागलता (वेली) कार यावत् चपक अशोक, कुदलता इत्यादि लताकार नामक इक्कीसवा नाटक बताया ।

(२२) शीघ्रता से नृत्य करना यह नृत्य विधि नाम का

(२३) धैर्यता से नृत्य विधी का ।

(२४) पहले शीघ्र फिर धीरे नाम का ।

(२५) अचिन्तमान नामक का ।

(२७) रिभी नाम का ।

(२७) अचित रभीत नाम का ।

(२८) आरमड नाम का ।

(२९) भसोल नाम का ।

(३०) अरमड भलोस नाम का ।

(३१) ऊपर उछलना नीचा पडना, तिरछे कूदना, सकोचन करना, प्रसरना जाना आना, भयभ्रान्त होना सभ्रान्त होना नाम का एक तीसवा नाटक बताया ।

तब वे बहुत देव कुमार देव कुमारिका सब एकत्र मिल समवसरण किया यावत् दिव्य गीत नृत्य वादित्र से प्रवंत कर, तब फिर वे बहुत देव कुमार देवकुमारिका श्रमण भगवत महावीर स्वामी का पूर्व भव मे नन्द राजा थे वहा 11 लाख 81 हजार मासखमन कर तीर्थंकर गोत्रो पार्जन किया वह दशवे देवलोक में देवता हुए वह चरित्र, वहा से चवे, 82 वी रात्री मे साहरन हुआ, देवानन्दा ब्राह्मनी की कुक्षी से हरण कर त्रिशला देवी की कुक्षी मे स्थापन किया, वह जन्म हुआ, मेरुगिरी पर देवता ने अभिषेक किया, वह बाल्यावस्था का चारित्र, पानी ग्रहण काम भोग चारित्र, दीक्षा उत्सव , चारित्र, दीक्षा ग्रहण, तपाचरण चारित्र, केवल ज्ञानोत्पति चार तीर्थ स्थापना चारित्र

और आगे को मोक्ष किस प्रकार से होवेगे यह भी चारित्र यो अन्तिम बत्तीसवा भगवत के चारित्र नाम का दिव्य प्रधान नाटक बताया ।

तब फिर वे बहुत से देव कुमार देव कुमारिकाने चार प्रकार के बाजे बजाये तद्यथा (१) मादलादि कूट कर बजे सो, (२) वीणादि बस कर बजे सो, (३) कसलादि परस्पर आस्फालकर बजे और (४) शख आदि फूकने से बजे सो तब वे बहुत देव कुमार देव कुमारिका चार प्रकार के गीत गाये तद्यथा (१) प्रारम्भ में शीघ्र फिर मद (२) प्रारम्भ मे मद फिर शीघ्र ( ) आदि अन्त मन्द (४) अद्यन्त शीघ्र यह चारो रोचित रुप गीत गाये । तब फिर कुमार कुमारिका का चार प्रकार का नाटक बताया तद्यथा (१) अंचित (२) रिभति (३) आरभड और (४) भसोलका । तब फिर वे बहुत देव कुमार देव कुमारिका चार प्रकार का अभिनय नवा सस्कृतादि भाषा बोल कर बताये तद्यथा (१) दृष्टान्तिका, (२) प्रयत्नतिका (३) सामनोपनीपाति का और (४) लोकमध्य दशानका । तब फिर देव कुमार देव कुमारिका गौतमादि श्रमण निग्रन्थ को दिव्य देवता सबन्धी ऋद्धियुक्त, दिव्य द्युति कान्तीयुक्त, दिव्य देवताके भावयुक्त उक्त बत्तास प्रकार का नाटक बताया, बताकर श्रमण भगवत महावीर स्वामी को तीन वक्त उठ बैठ हाथ जोड प्रदक्षिणावर्त फिरा कर वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके जहाँ

सूर्याभदेव था वहा आये आकर सूर्याभदेव को दोनों हाथ जोड दशोनख एकचित्त कर शिरसावर्त फिरा कर मस्तक पर अजली स्थापन कर जय हो विजय हो इस प्रकार वधा कर वह प्रथम दी हुई उनकी आज्ञा उनके सुपरत की तब वह सूर्याभदेव वह दिव्य देव की ऋद्धि देवता की द्युति क्रान्ती देवता के भाव जो प्रसारित किये थे, एक के अनेक रुप वनाये थे उस का प्रतिसहार किया, क्षणमात्र पीछा आप स्वय एक रूप वन गया, तव वह सूर्याभदेव श्रमण भगवत महावीर स्वामी को तीन वक्त हाथ जोड प्रदक्षिणावर्त फिरा कर वदना नमस्कार किया, वदना नमस्कार करके अपने परिवार के साथ परिवरा हुवा उस ही दिव्य गमन के विमान मे बैठा, बैठ कर जिस दिशा से आया था उस दिशा को चला गया। अहो भगवन् ! यों आमन्त्रण कर श्रमण भगवत महावीर स्वामी को वदना नमस्कार कर गौतम स्वामी यो बोले अहो भगवन् सूर्याभदेव की ऐसी देव समवन्धी दिव्य ऋद्धि दिव्य क्रान्ती दिव्य देवता समवन्धी भाव जो प्रगट किया था वह पीछा कहा प्रवेश कर गया ? अहो गौतम ! शरीर मे गया शरीर मे प्रवेश किया, अहो भगवन् ! किस कारण ऐसा कहते हो शरीर में गया शरीर में प्रवेश किया ? अहो गौतम ! यथा दृष्टात स्थान कूटाकारशाला चारों तरफ गडकर (कोट) कर वैष्टित की गोवर कर लीपी छावी गुप्त अप्रगट जिसके द्वार, जिसमें वायु भी मुश्किल से प्रवेश कर सके ऐसी ऊडी हो, उसे कूटाकारशाला से वहुत दूरी नही वहुत नजीक नही, यहा एक

भग ी जी का छटा शतक

का

पांचवां उद्देशा

अहो भगवन् ! क्या पृथ्वी को तमस्काय कहते हैं, या पानी को तमस्काय कहते हैं ? अहो गौतम ! जो तमस्काय है वह पृथ्वी का परिणाम नही है परन्तु पानी का परिणाम है। इस लिये पृथ्वी को तमस्काय कहना नही, परन्तु पानी को तमस्काय कहना, अहो भगवन ! किस कारण से पृथ्वी को तमस्काय नही कहना परन्तु पानी को तमस्काय कहना ? अहो गौतम ! पृथ्वी काया के मणि आदि कितनेक स्कंध भास्वरपना से विवक्षित क्षेत्र में प्रकाश करते हैं, और कितनेक पृथ्वी कायिक देश पृथ्वी कायातर प्रकाशने योग्य होने पर भी अभास्वरपना से प्रकाश नहीं करते है । अपकाय मे अप्रकाशकपना रहा हुआ है वैसे ही तमस्काय में भी अप्रकाशपना -रहा हुआ है । इस से अप्काय परिणाम वाली तमस्काय रही हुई है।"।

अहो भगवन ! तमस्काय कहा से उत्पन्न हुई है व कहां रही हुई है ? अहो गौतम ! इस जम्बू द्वीप से बाहिर असख्यात द्वीप समुद्र उल्लघ कर जावे वहा अरुणवर द्वीप आता है, उस

अरुणवर द्वीपकी बाहिर की वेदिका से ४२ हजार योजन दूर अरुणा अरुणवर समुद्र मेजावे वहा पानी के ऊपर अन्तिम विभाग की एक प्रदेश की श्रेणी में से तमस्काय निकली हुई है । वहा से १७२१ योजन ऊची जा कर तीर्च्छी विस्तृत होती हुई सौधर्म, ईशान सनत्कुमार व माहेन्द्र इन चारो देवलोक को घेर कर पांचवे ब्रह्मदेव लोक में रिष्ट नामक तीसरी प्रतर मे उस के विमान तक गई हुई है और वहा पर ही तमस्काय स्थिर रही हुई है ॥२॥

अहो भगवन् ! तमस्काय का कौन सा स्थान है ? अहो गौतम ! नीचे सरावले के सपुट के आकारवाली है और ऊपर मूर्गे के पिंजर के आकारवली है ॥३॥

अहो भगवन् तमस्काय चौड़ाई में कितनी है, व परिधि में कितनी है ? अहो गौतम ! तमस्काय का विस्तार दो प्रकार का है (१) सख्यात योजन का विस्तार, व (२) असख्यात योजन का विस्तार, जहां सख्यात योजन का विस्तार है वहा उसकी चौडाई सहस्र योजन की है और परिधि असख्यात सहस्र योजन की है जहां का असख्यात योजन का विस्तार है वहा असख्यात योजन सहस्र की चौडाई है और असख्यात- योजन सहस्र की परिधि है ॥४॥

अहो भगवन् ! तमस्काय कितनी बडी कही ? अहो गौतम सब द्वीप समुद्र में यह जम्बू द्वीप बहुत छोटा, व आभ्यन्तर है

इस की परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सो अठाइस योजन से कुछ कम की है, इस को कोई महर्द्धिक यावत् महानुभाग देव तीन चपटी बजावे इतने काल मे इक्कवीस (इकीस वार) चक्त फिरे ऐसी उत्कृष्ट, त्वरित यावत् देवगति से एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् छ मास पर्यन्त फिरे तब सख्यात योजन के विस्तार वाली तमस्काय को उत्तीर्ण (पार) हो जाते हैं परन्तु असंख्यात योजन वाली तमस्काय को उत्तीर्ण (पार) नही हो सकते। अहो गौतम! तमस्काय इतनी बडी कही है ॥५॥

अहो भगवन्! क्या तमस्काय मे गृह, दुकान ग्राम या नगर के आकार हैं? अहो गौतम! यह अर्थ योग्य नही है।६।

अहो भगवन! तमस्काय मे बहुत बडे मेघ स्नेह उत्पन्न करते हैं, पुद्गल उत्पन्न होते हैं और वर्षा वर्षती है? हां गौतम! यावत वर्षा वर्षती है अहो भगवन् क्या वह वर्षा देव करते हैं असुर करते हैं व नाग करते हैं? अहो गौतम! देव असुर व नाग तीनो ही वर्षा करते हैं ॥७॥

अहो भगवन! तमस्काय में क्या बादर शब्द व बादर विद्युत होते हैं। हा गौतम! तमस्काय में बादर विद्युत व बादर शब्द होते हैं, अहो भगवन्! उसे क्या देव, असुर व नाग करते हैं? अहो गौतम! तीनों जाति के देव करते हैं ॥८॥

अहो भगवन! तमस्काय मे बादर पृथ्वीकाय में बादर

अरुणवर द्वीपकी बाहिर की वेदिका से ४२ हजार योजन दूर अरुणा अरुणवर समुद्र मेजावे वहा पानी के ऊपर अन्तिम विभाग की एक प्रदेश की श्रेणी में से तमस्काय निकली हुई है । वहा से १७२१ योजन ऊची जा कर तीच्छीं विस्तृत होती हुई सौधर्म, ईशान सनत्कुमार व माहेन्द्र इन चारो देवलोक को घेर कर पांचवे ब्रह्मदेव लोक में रिष्ट नामक तीसरी प्रतर मे उस के विमान तक गई हुई है और वहा पर ही तमस्काय स्थिर रही हुई है ॥२॥

अहो भगवन् ! तमस्काय का कौन सा स्थान है ? अहो गौतम ! नीचे सरावले के सपुट के आकारवाली है और ऊपर मूर्गे के पिजर के आकारवली है ॥३॥

अहो भगवन् तमस्काय चौडाई मे कितनी है, व परिधि में कितनी है ? अहो गौतम ! तमस्काय का विस्तार दो प्रकार का हैं (१) सख्यात योजन का विस्तार, व (२) असस्यात योजन का विस्तार, जहां सख्यात योजन का विस्तार हैं वहा उसकी चौडाई सख्यात सहस्र योजन की है और परिधि असख्यात सहस्र योजन की है जहां का असख्यात योजन का विस्तार है वहां असख्यात योजन सहस्र की चौडाई है और असख्यात योजन सहस्र की परिधि है ॥४॥

अहो भगवन् ! तमस्काय कितनी बडी कही ? अहो गौतम सब द्वीप समुद्र में यह जम्बू द्वीप बहुत छोटा, व आभ्यन्तर है

(९) देव अरण्य (१०) देवव्यूह (११) देव फलसा (१२) देव प्रतिक्षोभ व (१३) अरूणोदय ॥१२॥

अहो भगवन ! तमस्काय क्या पृथ्वीपरिणामवाली, पानी परिणामवाली, जीव परिणामवाली व पुद्गल परिणाम वाली है ? अहो गौतम ! तमस्काय पृथ्वी परिणामवाली नही है अपितु पानी, जीव व पुद्गल परिणामवाली है ॥१३॥

अहो भगवन ! तमस्काय में पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय पने सब प्राण भूत जीव व सत्व पहिले क्या उत्पन्न हुए । हां गौतम ! सब प्राण, भूत, जीव व सत्व अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुए, परन्तु बादर पृथ्वीकाय व बादर अग्निकाय पने नही उत्पन्न हुए, क्योंकि उन की उत्पत्ति का वहा अभाव है ॥१४॥

तमस्काय के समान रगवाली कृष्णराजी है इस से कृष्णराजी का प्रश्न पूछते हैं अहो भगवन् ! कृष्णराजी कितनी कहीं ? अहो गौतम ! कृष्णराजी आठ कही अहो भगवन ! कृष्णराजी कहा कहीं ? अहो गौतम सनत्कुमार महेन्द्र देवलोक के ऊपर व ब्रह्मदेव लोक के नीचे रिष्ट विमान प्रस्तर मे अखाडे के समान समचउरस सठाणसे रही हुई है पूर्व में दो, पश्चिम मे दो, दक्षिण मे दो, उत्तर में दो पूर्व की आभ्यतर कृष्णराजी दक्षिण की बाह्य कृष्णराजी को स्पर्शकर रही हुई है, दक्षिण की आभ्यतर कृष्णराजी पश्चिम की बाह्य कृष्णराजी को स्पर्श

तेजस्काय क्या है ? अहो गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् उस मे बादर पृथ्वीकाय व बादर अग्निकाय नही हैं। मात्र बादर पृथ्वीकाय के जीव आयुष्य पूर्ण होने पर तमस्काय में से जाते हैं, बादर अग्निकाय मात्र मनुष्य लोक मे है । ९।

अहो भगवन ! तमस्काय मे चद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र व तारे रहे हुए हैं ? अहो गौतम ! यह अर्थ योग्य नही है, अर्थात तमस्काय मे ज्योतिष चक्र नही है परन्तु उस के आस पास रहा हुआ है अहो भगवन् ! तमस्काय मे क्या चद्र व सूर्य की प्रभा हैं । अहो गौतम ! यह अर्थ योग्य नही है क्यो कि अढाइद्वीप के बाहिर चद्र सूर्य स्थिर हैं और उन पुद्गलो से चन्द्र सूर्य की प्रभा दूषित है ॥१०॥

अहो भगवन् ! तमस्काय का वर्ण कौनसा कहा ? अहो गौतम ! तमस्काय का वर्ण काला, काली प्रभा वाल', गभीर रोमकम्पहर्ष उत्पन्न करने वाला, भयकर त्रास उत्पन्न करे वैसा व परम कृष्ण कहा है, कितनेक देव भी उस को पहिले देखकर क्षुभित होते हैं । फिर तमस्काय मे प्रवेश करके शीघ्र `त्वरित गति से उसे उल्लघ जाते हैं ॥११॥

अहो भगवन् ! तमस्काय के कितने नाम कहे हैं ? अहो गौतम ! तमस्काय के तेरह नाम कहे हैं (१) तम (२) तमस्काय (३) अधकार (४) महा अधकार (५) लोकाधकार (६) लोक तमिस्त्र (७) देवाधकार (८) देवतमिस्त्र

(९) देव अरण्य (१०) देवव्यूह (११) देव फलसा (१२) देव प्रतिक्षोभ व (१३) अरूणोदय ॥१२॥

अहो भगवन ! तमस्काय क्या पृथ्वीपरिणामवाली, पानी परिणामवाली, जीव परिणामवाली व पुद्गल परिणाम वाली है ? अहो गौतम ! तमस्काय पृथ्वी परिणामवाली नही है अपितु पानी, जीव व पुद्गल परिणामवाली है ॥१३॥

अहो भगवन ! तमस्काय में पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय पने सब प्राण भूत जीव व सत्व पहिले क्या उत्पन्न हुए । हॉ गौतम ! सब प्राण, भूत, जीव व सत्व अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुए, परन्तु बादर पृथ्वीकाय व बादर अग्निकाय पने नही उत्पन्न हुए, क्योंकि उन की उत्पत्ति का वहा अभाव है ॥१४॥

तमस्काय के समान रगवाली कृष्णराजी है इस से कृष्णराजी का प्रश्न पूछते हैं अहो भगवन् ! कृष्णराजी कितनी कहीं ? अहो गौतम ! कृष्णराजी आठ कही अहो भगवन ! कृष्णराजी कहा कही ? अहो गौतम सनत्कुमार महेन्द्र देवलोक के ऊपर व ब्रह्मदेव लोक के नीचे रिष्ट विमान प्रस्तर मे अखाडे के समान समचउरस सठाणसे रही हुई है पूर्व में दो, पश्चिम मे दो, दक्षिण मे दो, उत्तर में दो पूर्व की आभ्यतर कृष्णराजी दक्षिण की बाह्य कृष्णराजी को स्पर्शकर रही हुई है, दक्षिण की आभ्यतर कृष्णराजी पश्चिम की बाह्य कृष्णराजी को स्पर्श

कर रही है पश्चिम की आभ्यतर कृष्णराजी उत्तर की बाह्य कृष्णराजी को स्पर्श कर रही है और उत्तर की आभ्यतर कृष्णराजी पूर्व की बाह्य कृष्णराजी को स्पर्श कर रही है, पूर्व पश्चिम की बाह्य दो कृष्णराजियो छ कोने वाली है उत्तर दक्षिण की बाहिर की दो कृष्णराजियो त्रिकोनाकार हैं, पूर्व पश्चिम की आभ्यतर दो कृष्णराजियो चौरस है, वैसे ही उत्तर दक्षिण की दोनो आभ्यनर कृष्णराजियो चौरस हैं । १५॥

अहो भगवन् ! कृष्णराजियो लम्बाई चोडाई व परिधि मे कितनी कही हैं ? अहो गौतम ! कृष्णारजियो असख्यात योजन की लम्बी, सख्यात सहस्र योजन की चोडी व असख्यात योजन सहस्र की परिधि वाली हैं ॥१६॥

अहो भगवन् ! कृष्णराजियो कितनी बडी कही हैं ? अहो गौतम ! कोई देव तीन चप्पटिका मे इस जम्बूद्वीप की आसपास इक्कीस वक्त परिभ्रमण करे ऐसी शीघ्र दीव्य देवगति से कृष्णराजी मे आठ मास तक चले तब कितनीक कृष्णराजियो को अतिक्रमे और कितनीक कृष्णराजियो को अतिक्रमे नही अहो गौतम ! इतनी बडी कृष्णराजियो कही हैं ॥१७॥

अहो भगवन ! इन कृष्णराजियो मे गृह, दुकान, ग्राम यावत् सन्निवेश हैं ? अहो गौतम ? इन में गृह यावत सन्निवेश नही हैं ॥१८॥

अहो भगवन ! कृष्णराजियो मे क्या बडे-बडे मेघ वगैरह

हैं ? हा गौतम ? बडे बडे मेघ रहे हुऐ हैं अहो भगवन् ! उन्हे क्या देव करते हैं, असुर करते हैं या नाग करते हैं ? अहो गौतम ! उन मेघ को देव बनाते है परन्तु असुर व नाग नही बनाते हैं, अहो भगवन ! कृष्णराजियो मे क्या बादर गर्जना व बादर विद्युत् है ? हा गौतम ! उस मे बादर गर्जना व बादर विद्युत् हैं, और उन्हे देव बनाते हैं, परन्तु असुर व नाग जाति के देव नही बनाते है क्यो की उनका वहा गमन नही हैं ॥१९॥

अहो भगवन् क्या कृष्णराजियो मे बादर अपकाय, अग्निकाय व वनस्पति काय है ? अहो गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है परन्तु विग्रहगतिवाले जीव क्वचित उत्पन्न होते है ॥२०॥

अहो भगवन् ! क्या वहा चन्द्र सूर्य अथवा चन्द्र सूर्य की कान्ति है ? यह अर्थ योग्य नही है अर्थात वहा नही है ॥२१॥

अहो भगवन् ! कृष्णराजियो का वर्ण कैसा है ? अहो गौतम ! कृष्णराजियो का वर्ण काला, कान्तिवाला यावत् देवता भी उसे देखकर क्षुब्ध होते है और शीघ्र ही उसे उल्लघ जाते है ॥२२॥

अहो भगवन ! कृष्णराजियो के कितने नाम कहे हैं ? अहो गौतम ! कृष्णराजियो के आठ नाम कहे है ? कृष्णराजि, मेघराजि, मघा, माघवती, वातफलिह, वातपरिक्षोभ, देवकलिह, देवपरिक्षोभ ॥२३॥

अहो भगवन् ! क्या कृष्णराजियों पृथ्वी परिणाम वाली है या अपजीव व पुद्गल परिणामवाली है ? अहो भगवन् ! कृष्णराजियों पृथ्वी परिणाम वाली है वैसे ही जीव व पुद्गल परिणामवाली है परन्तु अप परिणामवाली नही हैं । २४॥

अहो भगवन् ! कृष्णराजि मे सब प्राण भूत, जीव व सत्व क्या पहिले उत्पन्न हुए ? हा गौतम ! पहले अनेक बार व अनन्त बार उत्पन्न हुए परन्तु बादर अपकाय, अग्निकाय व वनस्पति कायपने उत्पन्न नही हुए हैं ॥२५॥

इन आठ कृष्णराजियों के आठ आतरे कहे हैं उन आठ आतरे मे लोकान्तिक देव के आठ विमान कहे है – अर्ची, अर्चीमाली वैरोचन, प्रभकर, चन्द्रभ, सूर्याभ, शुक्राभ, सुप्रतिष्ठाभ और मध्य में रिष्टाभ ॥२६॥

अहो भगवन् ! अर्ची विमान कहा कहा हैं ? अहो गौतम ! अर्ची विमान ईशान कोन मे कहा है अर्चीमाली पूर्व मे, वैरोचन अग्निकोन मे, प्रभकर दक्षिण में, चन्द्राभ नैऋत्य कोन मे, सूर्याभ पश्चिम मे, शुक्राभ वायव्य मे, सुप्रतिष्ठाभ उत्तर में और मध्य मे रिष्ठाभ ॥२७॥

इन आठ लोकान्तिक विमान मे आठ प्रकार के लोकान्तिक देव रहते है (१) सारस्वत, (२) आदित्य (३) वन्हि (४) वरुण, (५) गर्दतोय (६) तुषित (७) अव्याबाध (८) अगिच्च और (९) रिष्ट ॥२८॥

अर्ची विमान मे सारस्वत देव रहते है, अर्चिमाली मे आदित्य, वैरोचन मे वन्हि, प्रभकर मे वरुण, चन्द्राभ मे गर्दतोय, सूर्याभ मे तुषित, शुक्राभ मे अव्याबाध, सुप्रतिष्टाभ मे अगिच्च और रिष्टाभ में रिष्ट नामक लोकान्तिक देव रहते है ॥२९॥

सारस्वत आदित्य इन दोनो देवो को सात देव अधिपति हैं और एक-एक को एकसो एकसो का परिवार रहा हुआ हैं इस से सात सौ देव का परिवार है वन्हि वरुण को चौदह देव हैं, एक को एक-एक हजार का परिवार होने से चौदह हजार देव का परिवार रहा हुआ है गर्दतोय और तुषित को सात देव और सात हजार देव का परिवार, अव्याबाध अगिच्च व रिष्ट को नव देव नवसो देवो का परिवार है ॥३०॥

अहो भगवन ! लोकान्तिक विमान किस आधार से रहे हुऐ है अहो गौतम ! लोकान्तिक विमान वायु प्रतिष्टित हैं लोकान्तिक विमान अत्युत्तम श्रेष्ठ हैं विमान मे रक्त, पीत व शुक्ल ऐसे तीन वर्ण हैं सात सो योजन के ऊचे कहे हैं, पच्चीस सो योजन का तला कहा है, यावत् लोकान्तिक विमान मे पृथ्वीकायादिपने अनेक बार व अनन्त बार उत्पन्न हुए परन्तु लोकान्तिक देवपने नही उत्पन्न हुए ॥३१॥

अहो भगवन ! लोकान्तिक देवों की कितनी स्थिति कही ? अहो गौतम ! लोकान्तिक देवो की आठ सागरोपम की स्थिति कही ॥३२॥

अहो भगवन ! लोकान्तिक विमानो से कितनी दूर लोकान्त रहा है ? अहो गौतम ! अव्याबाध पने असख्यात योजन दूर लोकान्त रहा हुआ है अहो भगवन ! आप के वचन सत्य है।

प्रश्न—अहो भगवन् ! पर्याप्त अपर्याप्त भवनवासी देव के स्थान कहा है ? और भवन वासी देव कहा रहते हैं ?

उत्तर—अहो गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का एक लाख अस्सी हजार योजन का पृथ्वी पिंड है जिस में एक हजार योजन उपर व एक हजार योजन नीचे छोडकर बीच मे एक लाख अठत्तर हजार योजन की पोलार है यहा पर भवनपति देवो के सात क्रोड बहुत्तर लाख भवन कहे, वे भवन बाहर से वर्तुलाकार, अदर से चौकुने हैं नीचे का तल कमल की कर्णिका के सस्थानवाला है। अर्थात, सूक्षम स्पर्शवाला है, उस की ऊची विस्तार वाली गभीर खाइ है स्फटिकमय प्रकार अट्टालक, (गोखडे) कपाट, तोरण व प्रतिद्वार रहे हुवे हैं, यत्न नाशक शतघ्नी [तोप] मुसल वगैरह शस्त्रो से वे भवन परिवेष्टित हैं, इस से अन्य कोई भी युद्ध नही कर सकते हैं, सदैव विजय वत, अजय, व गुप्त हैं, अडतालीस प्रकार के कोट हैं, अडतालीस प्रकार के वन—मालाए है, क्षेम व कल्याण के करने वाले हैं, किंकरभूत देव उन की रक्षा करते हैं, गोमय व चूने से भवन लिप—कर पूजित हुवे हैं, श्रेष्ट रक्त गोशीर्ष चदन के पाच अगुलियो के छापे दीये हैं, वहा

पर मंगलकार्य निमित्त चदन के कलश स्थापन कीये हैं, चदन के घडे से प्रतिद्वार के तोरण बनाये है, नीचे भूमि को स्पर्श कर रहे वेंसी विस्तीण पर्तुलाकार लटकती हुई पुष्पो की मालाओं का समूह रहा हुवा है. पाँच वंण के श्रेष्ट सुगन्धित पुष्पो का पुज रहा हुवा है, कृष्णगार कुदरुक्क, धूप सेल्हारस इत्यादि धूपो से मघमघाय मान होने से सुदर बने हुवे हैं, श्रेष्ट सुगधियो से सुवासित बने हुवे हैं. सुग धी पदाथ की गोली समान वेभवन हैं, अप्सराओ के समुह से सकीर्णं है, दिव्य तुटित वादित्रो के शब्दों से सुनने योग्य, सव रत्नमय, आकाश समान निर्मल है, सुकुमाल हैं घुनट जैसे निर्मल सुकुमाल, पाषाण जैसे घटारे मठारे है, रज सहित, मैल रहित, पक रहित, आभरण—पडल रहित, शोभा सहित, प्रभा सहित, सश्रिक शोभायमान किरण सहित, उद्योत सहित, मन को प्रसन्न कारी, देखने योग्य, अत्यन्त सूक्षम व देखते प्रतिबिम्बित हैं, यहा पर भवनपति देवो के पर्याप्त अपर्याप्त के स्थान कहे हैं, उपपात आश्रय लोक के असख्यातवे भाग मे समुद्घात आश्रय लोक के असख्यातवें भागमे व स्वस्थान आश्रीय लोक के असख्यातवे भाग मे हैं, यहा पर बहुत भवनवासी देव रहते हैं जिनके नाम— (१) असुर कुमार (२) नाग कुमार (३) सुवर्ण कुमार (४) विद्युत कुमार (५) अग्नि कुमार (६) द्वीप कुमार (७) उदधि कुमार (८) दिशाकुमार (९) पवन कुमार (१०) स्थनित कुमार यो दस प्रकार

की जाती वाले देव रहते हैं ॥१।

असुर कुमार के मुकुट मैं चूडामणि का चिन्ह है। नाग कुमार के मुकुट मे नागफणि का चिन्ह है। सुवर्ण कुमार के मुकुट मे गरुड का चिन्ह है। विद्युत कुमार के मुकुट मे वज्र का चिन्ह है। अग्नि कुमार के मुकुट मे पूर्ण कलश का चिन्ह है। द्वीप कुमार के सिंह का चिन्ह है। उदधि कुमार के मुकुट मे वावडि का चिन्ह है। दिशा कुमार के मुकुटमे हस्ती काचिन्ह है। पवन कुमार का नगर का चिन्ह है और स्तनित कुमार के मुकुट मे सरावले सपुट का चिन्ह है ॥२॥

उक्त देव अपने अपने चिन्हो से युक्त सुरूप, महार्द्धिक, महाद्युति वाले महायश वाले, महानुभाग, महासुख के भोक्ता हैं, इनका वक्ष स्थल हारो से विराजित है, भुजाओ कडे व भूजबधों से सुशोभित है। कानों के कुण्डल व गण्डस्थल को घिसा कर कर्णाभरण विशेष शोभित जिन को रहे हुए हैं। हाथ में विचित्र आभरण रहे हुए हैं, मस्तक मे विचित्र मालाए रही हुई हैं, कल्याणकारी श्रेष्ट वस्त्र पहिने हुए है, कल्याणकारी श्रेष्ट विलेपन किये हुए हैं, देदीप्यमान शरीर पर लम्बी माला धारन की हैं, दिव्य वर्ण, दिव्य गन्ध दिव्यरस, दिव्य स्पर्श दिव्य सघयण, दिव्य सठाण, दिव्य ऋद्धि, दिव्य द्युति, दिव्य प्रभा, दिव्य कान्ति, दिव्य अर्ची, दिव्य तेज, व दिव्य लेश्या से दशोदिशि में प्रकाश करते हुए, उद्योत

करते हुए अपने 2 लाखों भवनो, सामानिक, त्रायत्रिशक, लोक पाल, अग्रमहिषियो, परिषदा, अनिक, अनिकाधिपति, आत्म-रक्षक देव व अन्य बहुत भवनवासी देवता व देवियो का अधिपतिपना, पुरोगामीपना स्वामीपना पोषकपना, बडपना करते व आज्ञा पालते अन्य को पलाते हुए बडे २ नृत्य, गीत, वादित्र, तन्त्री, ताल, तूटित व मृदग के बड़े २ शब्दो से दिव्य भोग उपभोग भोगवते हुए विचरते हैं ।

प्रश्न—अहो भगवन् ! पर्याप्त अपर्याप्त वाणव्यतर देव के स्थान कहा कहे हैं ? और वाणव्यतर देव कहा रहते है ?

उत्तर—अहो गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का उपर का रत्नमय काण्ड एक हजार योजन का है उसमें से एकसो योजन उपर व एकसो योजन नीचे छोड़कर बीच के आठ सो योजन की पोलार है उसमें वाणव्यतर देवो के तीच्छें असख्यात भूमिगृह समान नगर कहे हैं, वे भूमिगृह समान नगर बाहिर से वर्तुलाकार अन्दर से चौकूने [चौरस] हैं, उन का नीचे का भाग पुष्कर कर्णिका के सस्थानवाला है, विस्तीण विपुल ऊडो खाइ उन को चौतरफ घेर रही हुई हैं कोट अटालक (गवाक्षक) कपाट तोरण व प्रतिद्वार उनको रहे हुवे है व नगर शत्रुविना शक शतध्न [तोप मुशल व भसडी आदि शस्त्रो से परिवेष्टित है इस से इन के साथ कोई भी युद्ध नही कर सकने से अजय है सदा

जयपानेवाले है, सदैव गुप्त है, अडतालिस प्रशसाकारी कोट व अडतालीस पुष्पमालाओ वाले हैं, क्षेम व कल्याणकारा हैं किकरभूत देवो से रक्षाये हुए हैं, गोमय व चूने से लिप कर पूजित हुए है, श्रेष्ट रक्त गोशीर्ष चन्दन से पाँचो अगुलियों के थापे दिये हैं, वहाँ पर मगलकार्य निमित्त चन्दन के कलश स्थापन किए हैं, चन्दन के घडे से प्रतिद्वार के तोरण बनाए हैं। नीचे भूमि को स्पर्श कर रहे वैसी विस्तीण वर्तुलाकार लटकती हुई पुष्पो की मालाओ का समुह रहा हुआ है। कृष्णागार, कुन्दरुक्क धूप सेल्सरस इत्यादि धूपो से मघमघायमान होने से सुन्दर बने हैं, श्रेष्ट सुगन्धियो से सुवासित बने हुए हैं, सुगंधि पदार्थों की गोली समान हैं, अप्सराओ के समुह से सकीर्ण है दिव्य त्रुटित वादित्र के शब्दो से सुनने योग्य हैं सब रत्नमय हैं, आकाश समान निर्मल हैं, सुकुमाल है घुनट जैसे सुकुमाल पाषाण जैसे घटारे हैं मठारे हैं, रजरहित, मेल रहित, पक रहित, आवरण वपडल रहित, शोभा सहित, प्रभा सहित, सश्रीक शोभायमान किरणो सहित, उद्योत सहित, मण को प्रसन्नकारी देखने योग्य अभीरूप व प्रतिरूप हैं। यहा पर वाणव्यन्तर देवो के पर्याप्त अपर्याप्त के स्थान कहे हैं, उपपात आश्रिय लोक के असख्यातवे भाग में, समुद्घात आश्रिय लोक के असख्यातवे भाग में, और स्वस्थान आश्रिय लोक के असख्यातवे भाग में है। वहाँ पर बहुत वाणव्यन्तर देव रहते हैं जिन के

नाम पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, भुजपति महोरग, महाकाय, गन्धर्व व गीतरति में निपुण गाधर्व, समुदाय ये मुख्य आठ भेद हुए और अवान्तर आठ भेद आणपन्नी, पाणपन्नी, ईषिवाइ, भूतवादी, कन्दी, महाकन्दी कोहुडग और पतग देव, वे देव क्रीडा करने के लिए अतिशय चचलचित्त वाले हैं गम्भीर प्रिय गीत में रुचि वाले हैं वनमाला व मस्तक सुशोभित देखाते हैं अपनी काति से वैक्रेय किय हुये मुकुट, कुण्डल आदि आभूषण धारण करने वाले हैं, सब ऋतुओ के योग्य सुगन्धि पुष्पो से बनाई हुई लम्बी शोभती हुई सुन्दर विकसित विचित्रवन माला से वक्षस्थल सुशोभित बनाया हुआ है। हृदय में कामातुर हैं, काम रूप देह धारण करने वाले हैं, विविध प्रकार के रगों से रगित श्रेष्ट देदीप्यमान वस्त्र पहिने हुए हैं कन्दर्पक्रीडा में प्रमुदित रहते हैं कलह क्रीडा व कोला-हल जिन को प्रियकारी है हास्य करने वाले, बहुत बोलने वाले, खड्ग, मुद्गल व भाला हस्त में धारण किये अनेक प्रकार के मणि रत्नो से विविध प्रकार के चिन्हों वाले हैं, महर्द्धिक, महा द्युतिवत महा यशवाले, महा बल वाले, महानुभाग, व महा सुख वाले हैं, हारो से वक्षस्थल सुशोभित बनाया हुआ है, कडे तुटित आदि आभूषणो से भुजाओं सुशोभित बनी हुई है, जिनको अगद, कुण्डल व कर्ण को घिसाते रहे हुए कर्णाभरण विशेष हैं, हस्त में विचित्र आभरण हैं। मस्तक में विचित्र मालाए

हैं, कल्याणकारी वस्त्र पहिरे हुवे हैं। कल्याणकारी श्रेष्ट विलेपन किया हुआ है देदीप्यमान शरीर पर लम्बी लटकती हुई माला धारण की है, दिव्य वर्ण, दिव्य गन्ध, दिव्य स्पर्श, दिव्य संघयन, दिव्य संस्थान, ऋद्धि, द्युति, प्रभा, छाया, अर्ची, तेज, व लेश्या से दशो दिशो में उद्योत करते हुए प्रकाश करते हुये अपने भूमि गृह समान असंख्यात लाखों नगरों में अपने अपने हजारो सामानिक देवो, अग्रमहिषियो, परिषदा, अनिक अनिकाधिपति आत्म रक्षक देव व अन्य अनेक वाणव्यन्तर देवना व देवियों का अधिपतिपना, पुरोगामी, पना स्वामीपना बडापना करते कराते आज्ञा पालते पलाते, बडे नृत्यगीत, वादिन्त्र, तन्त्री, ताल, तमाल, त्रुटित, घन, मृदंग के शब्दो से दिव्य भोगोपभोग भोगते हुए विचरते हैं।

अहो भगवन्! मनुष्य क्षेत्र में कितने सूर्य चन्द्र ने प्रकाश किया! अहो गौतम मनुष्य लोक में १३२ चन्द्र १३२ सूर्य है दो जम्बू द्वीप में चार लवण समुन्द्र मे १२ धातकी खण्ड में ४२ कालोदधि मे ७२ पुष्कराध द्वीप में यु सब मिल कर १६२ होते है ११६१६ महाग्रह ३६९६ नक्षत्र ८८४०७०० करोड़ा करोड तारागण है यह ज्योतिषी मडल मनुष्य लोक में जानना और बाहर असख्यात चन्द्र सूर्य ग्रह नक्षत्र तारा गण श्री तीर्थंकर भगवान् ने! इतना तारा समुह कहा है। मनुष्य लोक में जो ज्योतिषी देवताओ के विमान है वह सब कदम्ब पुष्प के सस्थान वाले नीचे सकुचित उपर विस्तार वत

आधा कवीठ जैसे आकार वाले हैं। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र व तारा जो मनुष्य लोक में कहे हैं उनके नाम व गोत्र प्रकट पने नहीं कह सकते। इस मनुष्य लोक मे चन्द्रमा व सूर्य के ६६ पिटक कहे है एक एक पिटक में २ चन्द्र २ सूर्य है इस मनुष्य लोक में नक्षत्र के ६६ पिटक कहे हैं एक २ पिटक में ५६, ५६ नक्षत्र हैं मनुष्य लोक में महाग्रह के ६६ पिटक कहे हैं और एक २ पिटक में ११६ महाग्रह हैं चन्द्र व सूर्य की मिलकर ४ पक्ति हैं। एक एक पक्ति में ६६-६६ चन्द्र व सूर्य हैं। मनुष्य लोक मे नक्षत्र की ५६ पक्ति हैं प्रत्येक पक्ति में ६६-६६ नक्षत्र हैं मनुष्य लोक में ग्रह की ११६ पक्ति हैं, प्रत्येक पक्ति मे ६६-६६ ग्रह हैं उपरोक्त सब मन्डल मेरू पर्वत के चारों ओर प्रदक्षणा करते हैं अर्थात उस में स्वभाव से ही गति करते हैं। यहा चन्द्र सूर्य ग्रह अनवस्थित हैं। क्योकि यथायोग से अन्य मण्डल मे गमण करते हैं। नक्षत्र और तारा मण्डल अवस्थित हैं। अर्थात् वह मण्डल में परिभ्रमण नही करते हैं। यह भी मेरु पर्वत की आस पास प्रदक्षणा करते हैं। चन्द्र व सूर्य के उपर अथवा नीचे सक्रमण गति नही है। परन्तु अपने मडल मे ही गति है अर्थात् आभ्यन्तर व बाहिर के मण्डल मे तिरछा गमन है। चन्द्र सूर्य ग्रह व, नक्षत्र मे चारो की राशि मिलती है तभी मनुष्य लोक में सुख दुख के फल की प्राप्ति होती है। चन्द्र सूर्य आदिक बाहर के मण्डल से ज्यों ज्यो अभ्यन्तर मण्डल में प्रवेश करते हैं त्यों त्यो ताप क्षेत्र बढता है और दिन मान भी बढ़ता है और ज्यो ज्यो

च-द्र सूर्य अभ्यन्तर मण्डल से निकलते हैं त्यो त्यो ताप क्षेत्र कम होता है और रात्रि मान बढ़ता है।

सूर्यादिक का ताप क्षेत्र कदम्ब वृक्ष के पुष्प के आकार का है। शकट-अर्थात् गाडी के आकार वाला अन्दर मेरू पर्वत पास सकुचित और बाहर लवण समुन्द्र के पास विस्तारवन्त है। अहो भगवन्! किस कारण से शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा वृद्धि पाता है, किस कारण से कृष्णपक्ष मे चन्द्र हीन होता हैं। और किस कारण से कृष्ण व शुक्ल पक्ष कहा है?

अहो गौतम! कृष्ण अजन रत्नमय राहु का विमान चन्द्र विमान नीचे चार अगुल की दूरी पर चन्द्रमा के साथ विरह रहित चलता है चन्द्र विमान के 62 (६२) भाग करे वैसे चार २ भाग शुक्ल पक्ष में खुला करता है और ऐसा ही चार २ भाग कृष्ण पक्ष मे राहु अच्छादित करता है। अमावास्या के दिन दो भग खुले रहते हैं।

चन्द्र विमान के पन्नरह भाग करे उस में से एक-एक भाग प्रति दिन कृष्ण पक्ष में ढके यों अमावास्या तक सब भाग ढक जावे, और शुक्ल पक्ष में एक-एक भाग खुल्ला कर देवें यो पूर्णिमा में सब मुक्त हो जावे। इस तरह शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा बढता व कृष्ण पक्ष में हीन होता है, और कृष्ण पक्ष व शुक्ल पक्ष इसी तरह होते हैं। मनुष्य क्षेत्र में चन्द्र, सूर्य, ग्रह नक्षत्र व तारा अनवस्थित हैं।

अब मनुष्य क्षेत्र के बाहर चन्द्र सूर्य का अन्तर कहते हैं मानुषोत्तर से बाहर चन्द्रमा सूर्य अवस्थित हैं इसलिए मनुष्य लोक जैसे योग नक्षत्रों का नही होता है वहा चन्द्र अभिजित नक्षत्र युक्त सदैव रहता हैं और सूर्य पुष्य नक्षत्र युक्त सदैव रहता है। वहा चन्द्र से सूर्य व सूर्य से चन्द्र का अन्तर पचास हजार योजन का है, सूर्य से सूर्य व चन्द्र से चन्द्र का अन्तर वहा एक लाख योजन का है। सूर्य के अन्तरित चन्द्र है व चन्द्र से अन्तरित सूर्य हैं व दीप्तीवत अपनी अपनी मर्यादा से तेजवंत हैं सुखकारी व मन्दलेश्या वाले है अर्थात् चन्द्र अति शीतल नहीं है वैसे ही सूर्य अति उष्ण नही है।

अहो भगवन मनुष्य क्षेत्र में जो चन्द्र सूर्य व ग्रह नक्षत्र तारा हैं वह क्या उर्ध्व गति उत्पन्न है कल्पात उत्पन्न हैं विमान उत्पन्न है चारोत्पन्न हैं चार स्थिति वाले हैं। गति मे रक्त है या गति समापन्न हैं। हे गोतम वह देव उर्ध्व गति में उत्पन्न नही हैं कल्पोत्पन्न नही हैं तिरछे लोक में अपने ज्योतिषी विमान में उत्पन्न होते है चारोत्पन्न अर्थात चलने वाले हैं स्थिरचारी नही हैं गति मे रक्त हैं गति समापन है उर्ध्व मुख वाले कदम्ब पुष्प के संस्थान वाले हैं अनेक हजार योजन ताप क्षेत्र व बाहर की विकुलविन पृच्छा सहित बडे बडे नृत्य गीत वाजयतर तत ताल ततल तूटितघन, झूसिर व पडेके शब्द से बडे बडे सिंहनाद जैसा कोलाहल करते हुए विपुल भोगपभोग भोगते हुए स्वच्छ निर्मल मेरु पर्वत राज को प्रदिक्षना करते हुए रहते

चन्द्र सूर्य अभ्यन्तर मण्डल से निकलते हैं त्यो त्यो ताप क्षेत्र कम होता है और रात्रि मान बढ़ता है।

सूर्यादिक का ताप क्षेत्र कदम्ब वृक्ष के पुष्प के आकार का है। शकट-अर्थात् गाडी के आकार वाला अन्दर मेरू पर्वत पास सकुचित और बाहर लवण समुन्द्र के पास विस्तारवन्त है। अहो भगवन्! किस कारण से शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा वृद्धि पाता है, किस कारण से कृष्णपक्ष मे चन्द्रहीन होता हैं। और किस कारण से कृष्ण व शुक्ल पक्ष कहा है?

अहो गौतम! कृष्ण अजन रत्नमय राहु का विमान चन्द्र विमान नीचे चार अगुल की दूरी पर चन्द्रमा के साथ विरह रहित चलता है चन्द्र विमान के 62 (६२) भाग करे वैसे चार २ भाग शुक्ल पक्ष में खुला करता है और ऐसा ही चार २ भाग कृष्ण पक्ष मे राहु अच्छादित करता है। अमावास्या के दिन दो भाग खुले रहते हैं।

चन्द्र विमान के पन्नरह भाग करे उस में से एक-एक भाग प्रति दिन कृष्ण पक्ष में ढके यों अमावास्या तक सब भाग ढक जावे, और शुक्ल पक्ष में एक-एक भाग खुल्ला कर देवें यो पूर्णिमा में सब मुक्त हो जावे। इस तरह शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा बढता व कृष्ण पक्ष में हीन होता है, और कृष्ण पक्ष व शुक्ल पक्ष इसी तरह होते हैं। मनुष्य क्षेत्र में चन्द्र, सूर्य, ग्रह नक्षत्र व तारा अनवस्थित हैं।

अब मनुष्य क्षेत्र के वाहर चन्द्र सूर्य का अन्तर कहते हैं मानुषोत्तर से बाहर चन्द्रमा सूर्य अवस्थित हैं इसलिए मनुष्य लोक जैसे योग नक्षत्रों का नही होता है वहा चन्द्र अभिजित नक्षत्र युक्त सदैव रहता हैं और सूर्य पुष्य नक्षत्र युक्त सदैव रहता है। वहा चन्द्र मे सूर्य व सूर्य से चन्द्र का अन्तर पचास हजार योजन का है, सूर्य मे सूर्य व चन्द्र से चन्द्र का अन्तर वहा एक लाख योजन का है। सूर्य के अन्तरित चन्द्र है व चन्द्र से अन्तरित सूय हैं व दीप्तीवत अपनी अपनी मर्यादा से तेजवंत है सुखकारी व मन्दलेश्या वाले है अर्थात् चन्द्र अति शीतल नही है वैसे ही सूर्य अग्नि उष्ण नही है।

अहो भगवन मनुष्य क्षेत्र में जो चन्द्र सूर्य व ग्रह नक्षत्र तारा हैं वह क्या उर्ध्व गति उत्पन्न है कल्पात उत्पन्न हैं विमान उत्पन्न है चारोत्पन्न हैं चार स्थिति वाले हैं। गति मे रक्त है या गति समापन हैं। हे गोतम वह देव उर्ध्व गति मे उत्पन्न नही है कल्पोत्पन्न नहो हैं तिरछे लोक में अपने ज्योतिषी विमान में उत्पन्न होते है चारोत्पन्न अर्थात चलने वाले हैं स्थिरचारी नही है गति मे रक्त हैं गति समापन है उर्ध्व मुख वाले कदम्ब पुष्प के सस्थान वाले हैं अनेक हजार योजन ताप क्षेत्र व वाहर की विकुलविन पृच्छा सहित वडे वडे नृत्य गीत वाजयतर तत ताल ततल तृटितधन. झूसिर व पडेके शब्द से वडे वडे सिहनाद जैसा कोलाहल करते हुए विपुल भोगपभोग भोगते हुए स्वच्छ निर्मल मेरु पर्वत राज को प्रदिक्षना करते हुए रहते

हैं । अहो भगवन जब उनके इन्द्र चवता है तब इन्द्र बिना कैसे करते हैं हे गोतम जहा लग अन्य इन्द्र उत्पन्न हुए नही वहा लग वहाँ के चार पाच सामानिक देव इन्द्र का स्थान अधी कार कर रहते हैं । अहो भगवन इन्द्र उत्पन्न होने का स्थान कितने काल तक विरहिना रहता है । अहो गोतम जघन्य एक समय उत्कृष्ट छ । मास भी रहता है । वह कान्ति से हीन अथवा तुल्य है चन्द्र सूर्य के समविभाग मे तारा रूप हैं क्या वह कान्ति से हीन व तुल्य हैं ?

चन्द्र सूर्य से उपर तारा है वह क्या कन्ति से हीन तुल्य हैं । हे गोतम वह तारा कान्ति में हीन व तुल्य हैं अहो भगवन किस कारण से चन्द्र सूर्य के तारा विमान है वह कान्ति से हीन व तूल्य हैं हे गोतम जैसे जैसे तारा रूप विमान के अधिष्ठाता देवो ने पूव भव में तप नियम बृह्मचर्य प्रमुख उत्कृष्ट किया जैसे वह देवता कान्ति से हीन व तुल्य होते हैं । अहो गोतम इस रत्नप्रभा भूमि के बहुत समरणेय भूमि भाग से ७९० ऊचे सब ज्योतिषी के नीचे तारामडल कहा है । ८०० योजन ऊचे सूर्य विमान चलता है ८८० योजन ऊचे चन्द्र विमान चलता है ९०० योजन उपर के तारा रूप विमान चलते है हे गोत्तम तारा रूप विमान से १० योजन उपर सूर्य का विमान चलता है ९० योजन उपर तारा के विमान चलते हैं अहो भगवन चन्द्र विमान कितना लम्ब चौडा व कितना परिधि व कितना (मोटा) है अहो गोतम एक योजन के ६१ भाग में

से ५६ भाग का लम्बा चोडा है इसमे तीन गुणी से अधिक परिधि है एक योजन के ६१ के २४ भाग का जाडा (मोटा) हैं हे गौतम ! सूर्य विमान एक योजन के ४८ भाग का लम्बा चोडा है ! इस से कुछ अधिक तीन गुणो परिधि है ६१ के २८ भाग का मोटा है ग्रह विमान आधा योजन का लम्बा चौडा है तीन गुणी से अधिक परिधि है एक कोस का मोटा तारा विमान एक कोस का लम्बा चोडा है कुछ अधिक तीन गुणी परिधि है और ५०० धनुष का मोटा है हे भगवन ! चन्द्र विमान को कितने देव उठाते है हे गोतम ! १६००० देव उठाते हैं ! अब सुर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र ताराओ मे किस की गति मन्द है किस की गति तीव्र है। अहो गोतम ! चन्द्र से सूय को गति शीघ्र है सूर्य से ग्रह की गति शीघ्र है ग्रह से नक्षत्र की गति शीघ्र है ओर नक्षत्र से तारा की गति शीघ्र है ओर सब से मन्द गति चन्द्र की है और सब से तीव्र गति तारा की है ! हे भगवन ! ज्योतिषी का राजा चन्द्र की कितनी रानीयो हैं हे गोतम चार इन्द्राणी है जिनके नाम चन्द्र प्रभा दोषीनाभा, अरची माली ओर प्रभकरा है एक एक देवी का चार हजार का परिवार है यो सोलह हजार देवी जानना हे भगवन् चन्द्र नामक ज्योतिषी का इन्द्र ज्योतिषियों का राजा चन्द्रावतसक विमान् में सुधर्मा सभा मे चन्द्र-सिहासन पर त्रुटित साथ दिव्य भोगोपभोग भोगते हुए विचरने को क्या समर्थ है ?

हे गोतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् वह भोग भोगने में समर्थ नहीं है।

हे भगवन् ! किस कारन से चन्द्र नाम के ज्योतिषी का इन्द्र

हैं । अहो भगवन जब उनके इन्द्र चवता है तब इन्द्र बिना कैसे करते हैं हे गोतम जहा लग अन्य इन्द्र उत्पन्न हुए नही वहा लग वहा के चार पाच सामानिक देव इन्द्र का स्थान अगी कार कर रहते हैं । अहो भगवन इन्द्र उत्पन्न होने का स्थान कितने काल तक विरहिना रहता है । अहो गोतम जघन्य एक समय उत्कृष्ट छ । मास भी रहता है । वह कान्ति से हीन अथवा तुल्य है चन्द्र सूर्य के समविभाग मे तारा रूप हैं क्या वह कान्ति से हीन व तुल्य हैं ?

चन्द्र सूर्य से उपर तारा है वह क्या कन्ति से हीन तुल्य हैं । हे गोतम वह तारा कान्ति में हीन व तुल्य हैं अहो भगवन किस कारण से चन्द्र सूर्य के तारा विमान है वह कान्ति से हीन व तूल्य हैं हे गोतम जैसे जैसे तारा रूप विमान के अधिष्टाता देवो ने पूव भव में तप नियम ब्रह्मचर्य प्रमुख उत्कृष्ट किया जैसे वह देवता कान्ति से हीन व तुल्य होते हैं । अहो गोतम इस रत्नप्रभा भूमि के बहुत समरणेय भूमि भाग से ७९० ऊचे सब ज्योतिषी के नीचे तारामडल कहा है । ८०० योजन ऊचे सूर्य विमान चलता है ८८० योजन ऊचे चन्द्र विमान चलता है ९०० योजन उपर के तारा रूप विमान चलते है हे गोत्तम तारा रूप विमान से १० योजन उपर सूर्य का विमान चलता है ९० योजन उपर तारा के विमान चलते हैं अहो भगवन चन्द्र विमान कितना लम्ब चोडा व कितना परिधि व कितना (मोटा) है अहो गोतम एक योजन के ६१ भाग में

से ५६ भाग का लम्बा चौडा है इसमे तीन गुणो से अधिक परिधि है एक योजन के ६१ के २४ भाग का जाडा (मोटा) हैं हे गौतम ! सूर्य विमान एक योजन के ४८ भाग का लम्बा चौडा है ! इस से कुछ अधिक तीन गुणी परिधि है ६१ के २८ भाग का मोटा है ग्रह विमान आधा योजन का लम्बा चौडा है तीन गुणी से अधिक परिधि है एक कोस का मोटा तारा विमान एक कोस का लम्बा चौडा है कुछ अधिक तीन गुणी परिधि है और ५०० धनुष का मोटा है हे भगवन ! चन्द्र विमान को कितने देव उठाते हैं हे गोतम ! १६००० देव उठाते हैं ! अब सुर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र ताराओ मे किस की गति मन्द है किस की गति तीव्र है। अहो गोतम ! चन्द्र से सूर्य को गति शीघ्र है सूर्य से ग्रह की गति शीघ्र है ग्रह से नक्षत्र की गति शीघ्र है ओर नक्षत्र से तारा की गति शीघ्र है ओर सब से मन्द गति चन्द्र की है और सब से तीव्र गति तारा की है ! हे भगवन ! ज्योतिषी का राजा चन्द्र की कितनी रानीयां हैं हे गोतम चार इन्द्राणी है जिनके नाम चन्द्र प्रभा दोषीनामा, अरची माली और प्रभकरा है एक एक देवी का चार हजार का परिवार है यो सोलह हजार देवी जानना हे भगवन् चन्द्र नामक ज्योतिषी का इन्द्र ज्योतिषियो का राजा चन्द्रावनसक विमान् में सुधर्मा सभा मे चन्द्र-सिंहासन पर त्रुटित साथ दिव्य भोगोपभोग भोगते हुए विचरने का क्या समर्थ है ?

हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है। अर्थात् वह भोग भोगने में समर्थ नहीं है।

हे भगवन् ! किस कारन से चन्द्र नाम के ज्योतिषी का इन्द्र

ज्योषितो का राजा चद्रावतसक विमान मे यावत् त्रुटित साथ भोग भोगने में समर्थ नही है ? हे गौतम ! चन्द्र नामक ज्योतिषी का इन्द्र ज्योतिषी का राजा को चन्द्रावनसक विमान मे सुधर्मा सभा मे। मानवक वहा चैतय है वज्र रतनमय गोल डब्बे हैं जिन मे जिन दाडा है यह जिन दाडा ज्योतिषी के इन्द्र व ज्योतिषी के राजा चन्द्र यावत अन्य ज्योतिषी देव व देवियो को अर्चनीय पूजनीय है इसलिए हे गोतम चन्द्र नामक ज्योतिषा का इन्द्र ज्योतिषी का राजा चन्द्र विमान की सुधमा सभा मे चन्द्र सिहासन पर रहा तुटित्त सख्यात वाली देवियो के साथ भोग भोगने मे समर्थ नही है ! परन्तु चन्द्रावतसक विमान में सुधर्मा सभा मे चन्द्र सिहासन पर चार हजार सामानिक यावत् १६ हजार आत्म रक्षक और अन्य बहुत ज्योतिषि देव व देवीयो के साथ प्ररवरा हुआ वडे नृत्य गीत वादित्र मृदग शब्द से दिव्य भोग भोगता हुआ विचरता है ! देवियो के वृन्द को मात्र दृष्टि से देखे परन्तु मैथूनवार्ता करे नही ?

अहो भगवन् ! सोधर्म ईशान देवलोक में विमान की पृथ्वी किस आधार से रही हैं ? अहो गौतम ! घनोदधि के आधार से पृथ्वी रही है । अहो भगवन ! सनत्कुमार माहेन्द्र देवलोक मे पृथ्वी किस आधार से रही है ? अहो गौतम ! घनवात के आधार से रही है। अहो भगवन् ! ब्रह्म देवलोक में विमान की पृथ्वी किस आधार से रही है ? अहो गौतम ! घनवात के आधार से रही है लतक की पृच्छा, अहो गौतम ! दोनो के आधार से रही है महाशुक्र और सहस्रार मे घनोदधि और घनवात इन दोनो के आधार से रही है। आणत से अच्युत

देवलोक तक के विमान आकाशास्ति काया के आधार से है ग्रैवेयक की पृच्छा ? अहो गौतम ! आकाशास्ति काया के आधार से है अनुत्तर विमान की पृच्छा ? अहो गौतम ! आकाशास्ति काया के आधार से है ।।१।।

अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक मे विमान की पृथ्वी का कितना जाडपना है ? अहो गौतम ! २७०० योजन विमान की नीव का जाडपना है । आगे भी पृच्छा करना सनत्कुमार माहेन्द्र में २६०० योजन विमान की नीव का जाडपन है, ब्रह्म और लतक देवलोक में २५०० योजन विमान की नीव का जाडपन है, महाशुक्र और सहसार मे २४०० योजन नीव का जाडपन है । आणत, प्राणत, आरण और अच्युत में २३०० योजन विमान की नीव का जाडपन है । ग्रैवेयक विमान मे २२०० योजन पृथ्वी का जाडपन है, और पाच अनुत्तर विमान की पृथ्वी का २१०० योजन का जाडपना है ।।२।।

अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक में विमान कितने ऊंचे है ? अहो गौतम ! ५०० योजन ऊंचे है । ऐसे ही सनत्कुमार और माहेन्द्र में ६०० योजन ऊंचे है ब्रह्म और लतक मे ७०० योजन ऊंचे, हैं महाशुक्र और सहसार मे ८०० योजन ऊंचे, आणत, प्राणत आरण और अच्युत मे ९०० योजन ऊंचे, हैं नव ग्रैवेयक ये विमान १००० योजन के ऊंचे है। और अनुत्तर विमान ११०० योजन की ऊंचाई वाले हैं । ।।३।।

अहो भगवन ! सौधर्म ईशान देवलोक में जो विमान

है, ये किस सस्थान वाले हैं ? अहो गौतम ! विमान के दो भेद आवलिका प्रविष्ठ सो श्रणिबद्ध और आवलिका बाहिर सो पुष्पावकीर्ण इनमें जो आवलिका प्रविष्ट है, वे वर्तुल, त्र्यस और चउरस यो तीन प्रकार के सस्थान वाले है और जो आमलिका बाहिर हैं व विविध प्रकार के सस्थान वाले हैं। ग्रैवेयक विमान पर्यंत कहना अनुत्तरोपपातिक मे विमान दो प्रकार के है, वर्तुल और त्र्यस ॥४॥

अहो भगवन ! सौधर्म ईशान देवलोक मे विमान कितने लम्बे चौडे है और कितनी परिधिवाले हैं ? अहो गौतम ! वे विमान दो प्रकार के है सख्यात योजन के विस्तार वाले और असख्यात योजन के विस्तार वाले यो नरक का कहा वैसे ही यहा जानना यावत् अनुत्तरोपपातिक सख्यात योजन के विस्तार वाले है इनमे जो सख्यात योजन के विस्तार वाले है वे जम्बूद्वीप प्रमाण है, और असख्यात योजन के विस्तार वाले यावत असख्यात योजन की परिधि कही है ॥५।

अहो भगवन ! सौधर्म ईशान देवलोक मे विमान कितने वर्ण वाले है ? अहो गौतम ! पाच वर्ण वाले कहे है। जिनके नाम-कृष्ण नील, लोहित हालिद्र और शुक्ल सनत्कुमार और माहेन्द्र मे चार वर्ण वाले विमान है जिनके नाम-नील, लोहित हालिद्र, और शुक्ल ब्रह्मदेवलोक और लतक में रक्त पीत और श्वेत यो तीन वर्ण वाले विमान है महाशुक्र सहस्रार मे पीत श्वेत ऐसे दो वर्ण वाले विमान है आणत प्राणत आरण

अच्युत ग्रैवेयक विमान मे शुक्ल वण वाले है और अनुत्तरोप-पातिक विमान परम शुक्ल वण वाले कहे है ।।६।।

अहो भगवन ! सोधर्म ईशान देवलोक मे विमान कैसो प्रभा वाले है ? अहो गौतम ! व सदव प्रकाशवत, उद्योतवत हैं और अपनो प्रभा सहित हैं यो अनुत्तर विमान पयत कहना वे भी सदैव प्रकाशवत है, सदैव उद्योतवन है और अपनी प्रभा सहित है ।।७।।

अहो भगवन ! सोधर्म ईशान देवलोक मे विमान कसी गन्ध वाले हैं ? अहो गौतम ! जैसे कोष्ट पुड़ा वगैरह सब वर्णन पूर्ववत् जानना इससे भी अधिक इष्टतर यावत् गधवाले कहे यो अनुत्तर विमान पर्यन्त कहना ।। अहो भगवन् ! सोधर्म ईशान देवलाक में विमान का कैसा स्पर्श कहा है ? अहो गोतम ! जैसे मृगचम रूई वगैरह सब स्पश का वर्णन करना यावन् अनुनोरपपातिक पर्यन्त जानना ।।८।।

अहो भगवन् ! सोधर्म ईशान देवलोक में विमान कितने बड़े कहे हैं ? अहो गौतम ! सब द्वीप समुद्र में यह जम्बूद्वीप एक लाख योजन का लम्बा चौडा है । इसकी परिधि ३१६२२७ योजन से कुछ अधिक है कोई देवता तीन चिमटी बजावे उतने मे इक्कीस बार इसकी पर्यटना कर आवे ऐसी दिव्य शीघ्रगति से छमास पर्यन्त परिभ्रमण करे तो भी कितनेक विमानों को उल्लघ सकता है और कितनेक विमानो को उल्लघ नही सकता है यो अनुत्तरोपपातिक विमान

पर्यन्त कहना इसमे कितनेक का उल्लघन कर सकते हैं और कितनेक का उल्लघन नही कर सकते है अर्थात् चार अनुत्तर विमान असख्यात योजन के है और सर्वार्थ सिद्ध विमान एक लक्ष योजन का है ।९॥

अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक में विमान किस के हैं ? अहो गौतम ! सब वज्ररत्नमय है, वहा बहुत जीव और पुद्गल आते है, उत्पन्न होते है और चवते हैं वे द्रव्य से शाश्वत है और वर्ण पर्यायसे यावत् स्पश पर्याय से अशाश्वत है यो अनुत्तर विमान पर्यन्त जानना ॥१०॥

अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक मे जीव कहा से आकर उत्पन्न होते हैं ? अहो गौतम ! सर्मूच्छिम वर्जकर तिर्यंच पचेंद्रिय और मनुष्य मे से उत्पन्न होते हैं, यो सहस्रार देव लोक पर्यन्त जानना, वहा से आगे मात्र मनुष्य उत्पन्न होते हैं ॥११॥

अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक मे एक समय में कितने देव उत्पन्न होते हैं ? अहो गौतम ! जघन्य एक दो तीन उत्कृष्ट सख्यात असख्यात उत्पन्न होते है यो सहस्रार पर्यन्त कहना आणत से अनुत्तरोपापातिक तक एक दो तीन यावत् सख्यात उत्पन्न होते है ॥१२॥

अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक मे से देवता को समय २ मे अपहरते कितने समय म अपहरण होवे ? अहो

गौतम ! वे देव असख्यात है प्रतिसमय एक २ अपहरण करते असख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी बीत जाय तो भी अपहरण नही होता है यो सहस्रार पर्यन्त कहना आणतादि चार देवलोक, नव ग्रैवेयक मे यावत् कितने काल मे अपहरण होवे ? अहो गौतम ! वे असख्यात देव हैं। वहा से प्रतिसमय एक-एक अव हरते २ सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम के असख्यातवे भाग तक अपहरण करे परन्तु अपहरन होवे नही अनुत्तरोपपातिक को पृच्छा ? अहो गौतम ! वे असख्यात है। प्रत्येक समय में एक एक अपहरण करते हुए पल्योपम के असख्यातवे भाग तक अपहरन करे किन्तु अपहरण नही होवे ॥१३॥

अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक मे देवताओ के शरीर की कितनी अवगाहना कही है ? अहो गौतम् ! अवगाहना के दो भेद हैं तद्यथा—भवधारणीय और उत्तर वैक्रेय उस में भवधारणीय अवगाहना जघन्य अगुल का असख्यातवा भाग उत्कृष्ट सात हाथ, उत्तर वैक्रेय अवगाहना जघन्य अगुल का असख्यातवा भाग उत्कृष्ट एक लाख योजन की, यो एक एक हाथ कम करते अनुत्तरोपपातिक विमान मे एक हाथ की अवगाहना जानना अर्थात् सनत्कुमार माहेन्द्र में छ हाथ की, ब्रह्म और लतक मे पाच हाथ की, महाशुक्र सहस्रार मे चार हाथ की, आणत प्राणत आरण व अच्युत ये चार देवलोक में तीन हाथ की, नव ग्रैवेयक मे दो हाथ की और पाँच अनुत्तर विमान में एक हाथ की शरीर की अवगाहना है। नव ग्रैवेयक और पाच अनुत्तर विमान में उत्तर वैक्रेय शरीर नही करते हैं ॥१४॥

अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक मे देवो के शरीर कौन से संघयण वाले है ? अहो गौतम ! छ संघयण मे से एक भी संघयण नही है, क्योंकि उनको हड्डी, शिरा, नस नही है परन्तु जो इष्ट कान्त यावत् मनोज्ञ पुद्गल है वे संघयणपने परिणमते है यो अनुत्तरोपपातिक पर्यंत जानना ॥१५॥

अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक मे देवो के शरीर का संस्थान कैसा कहा है ? अहो गौतम ! उन के शरीर के दो भेद भवधारणीय और उत्तर वैक्रेय उन मे से जो भवधारणीय है वे सम चतुस्र संस्थान वाले है और जो उत्तर वैक्रेय है वे विविध प्रकार के संस्थान वाले है । यो अच्युत विमान पर्यंत कहना ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान में मात्र भवधारणीय शरीर है । इनका संस्थान सम चतुस्र है। उत्तर वैक्रेय वहा नही है ॥१६॥

अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक मे देवो के शरीर का वर्ण कैसा कहा ? अहो गौतम ! तप्त सुवर्ण समान रक्त वर्ण है । सनत्कुमार माहेन्द्र मे पद्म कमल की केसरा समान गौर वर्ण है, ब्रह्मदेवलोक में देवता का वर्ण आद्रमधुक वनस्पति समान पीला है, लतकादि से ग्रैवेयक पर्यंतमात्र एक शुक्ल वर्ण ही है और अनुत्तरोपपातिक देवो का शरीर परम शुक्लवर्ण वाले है ॥१७॥

अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक मे देवो के शरीर की गंध कैसी कही ? अहो गौतम ! जैसे कोष्टपुट यावत मनामतर गंध कही यो अनुत्तरोपपातिक पर्यंत कहना ॥१८॥

अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक मे देवो के शरीर का कैसा स्पश है ? अहो गौतम ! उनके शरीर स्थिर मृदु सुकोमल व स्निग्ध सुकोमल स्पशवत है, यावत् अनुत्तर विमान के देव पर्यन्त कहना ॥९॥

अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक के देव कैसे पुद्गल उच्छवासपने ग्रहण करते है ? अहो गौतम ! जो पुद्गल इष्टकांत यावत् उच्छवासपने परिणमत है यो अनुत्तरोपपातिक पर्यन्त कहना ऐसे ही आहार के लिए पुद्गल ग्रहण करते है यो अनुत्तरोपपातिक पर्यन्त कहना ।।२०॥

अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक मे देवो को कितनी लेश्या कही है ? अहो गौतम ! एक तेजो लेश्या सनत्कुमार माहेन्द्र मे एक पद्म लेश्या, ब्रह्मलोक मे भी एक पद्मलेश्या और आगे सबमे शुक्ल लेश्या और अनुत्तरोपपातिक देव मे एक परम शुक्ल लेश्या है, ॥२१॥

सौधर्म ईशान देवलोक के देव क्या समदृष्टि मिथ्यादृष्टि, व समिथ्यादृष्टि है ? अहो गौतम ! तीनो दृष्टि है यो अच्युत पर्यन्त जानना ग्रैवेयक देव समदृष्टि और मिथ्यादृष्टि है परन्तु समभिक्यादृष्टि नही है, अनुत्तरोपपातिक देव एकात समदृष्टि है परन्तु मिथ्यादृष्टि और समिथ्यादृष्टि नही है ॥२२।

अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक में देवता क्या ज्ञानी है, अज्ञानी है ? अहो गौतम ! दोनो है तीन ज्ञान व तीन

अज्ञान की नियमा यो अनुत्तर विमान पर्यन्त कहना अनुत्तरोप-पातिक की पृच्छा ? अहो गौतम ! तीन ज्ञान है ॥२३॥

तीन योग, दो उपयोग अनुत्तरोपपातिक पर्यन्त सब मे कहना ॥२४॥

सौधर्म ईशान देवलोक मे देव अवधिज्ञान से कितना जानते व देखते है ? अहो गौतम ! जघन्य अगुल का असख्यातवा भाग उत्कृष्ट नीचे यावत रत्न प्रभा पृथ्वी पर्यंत, ऊर्ध्व अपने-अपने विमान पर्यंत, और तीर्च्छी असख्यात द्वीप समुद्र पर्यंत इस तरह सौधर्म और ईशान वाले देव प्रथम नरक, सनत्कुमार माहेन्द्रवाले दूसरी नरक, ब्रह्मलोक लतक वाले तीसरी नरक महाशुक्र और सहस्रार वाले चौथी नरक, आणत प्राणत वाले पाचवी नरक, आरण अच्युत वाले भी पाचवी नरक, नीचे और मध्य की ग्रैवेयक वाले छठी नरक, ऊपर ग्रैवेयक वाले सातवी नरक और अनुत्तर विमान वाले कुच्छ कम समस्त लोक नाल देखते हैं ॥२५॥

अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक मे देवो को कितनी समुद्घात कही है ? अहो गौतम ! पाँच समुद्घात कही है तद्यथा वेदना, कषाय, मारणातिक, वैक्रेय और तेजस ऐसे ही अच्युत पर्यंत कहना ग्रैवेयक और अनुत्तरोपपातिक मे तीन समुद्घात है वेदनीय कषाय और मारणातिक ॥२६॥

अहो भगवन ! सौधम ईशान देवलोक के देवता कैसी क्षुधा पिपासा अनुभवते हुए विचरते हे ? अहो गौतम ! वहा क्षुधा पिपासा नही है, यो अनुत्तरोपपातिक पर्यंत कहना ।२७।

अहो भगवन् ! सोधर्म ईशान देवलोक में देवता एक ही रुप की विकुर्वणा करने मे समर्थ है अथवा अनेक रुप की विकुर्वणा करने मे समर्थ है ? अहो गौतम ! एक रुप की भी और पृथक रूप की भी विकुर्वणा करने मे समर्थ है एक रूप करते हुए एकेन्द्रिय का रूप यावत् पचेन्द्रिय का रूप बनावे और बहुत रूप में पचेन्द्रिय के रूप यावत् पचेन्द्रिय के रुप बनावे उन्होने सख्यात असख्यात, सदृश, असदृश, सबद्ध असबद्ध रुप की विकुर्वणा की, विकुर्वणा करते है और विकुर्वणा करेंगे स्वय जैसी इच्छा करते है वैसा कार्य करते है यो अच्युत पर्यंत कहना ग्रैवेयक और अनुत्तरोपपातिक देव मे क्या एक रुप की विकुर्वणा करने मे समर्थ है अथवा अनेक रुप की विकुर्वणा करने मे समर्थ है ? अहो गौतम ! एक रूप और अनेक रुप की विकुर्वणा करने मे समर्थ तो है परन्तु उन्होने उनकी विकुर्वणा की नही करते नही और करेंगे भी नही ॥२८॥

अहो भगवन् ! सोधर्म ईशान देवलोक के देवता कैसा सुख का अनुभव करते हैं ? अहो गौतम मनोज्ञ शब्द यावत् मनोज्ञ स्पर्श का अनुभव करते हैं यावत ग्रैवेयक पर्यंत कहना, अनुत्तरोपपातिक में अनुत्तर शब्द यावत् अनुत्तर स्पर्श का अनुभव करते है ॥२९॥

अहो भगवन् ! सोधर्म ईशान देवलोक मे कैसी ऋद्धि कही है ? अहो गौतम ! वे महर्द्धिक, महाद्युति वाले यावत् महानुभाग हैं। यो अच्युत पर्यंत कहना ग्रैवेयक अनुत्तर विमान वाले

देव महर्द्धिक यावत् महानुभाग इन्द्र रहित अहमेन्द्र है ॥३०॥

अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक के देव की कैसी विभूषा कही है ? अहो गौतम ! वे दो प्रकार के हैं तद्यथा वैक्रेय शरीर वाले और वैक्रय बिना के शरीर वाले इन मे जो वैक्रेय शरीर वाले हैं वे हार से विराजित वक्षस्थल वाले यावत् दशो दिशि में उद्योत करते हुए प्रकाश करते हुए रहते हैं। यावत् प्रतिरूप है और जो वैक्रेय रहित शरीर वाले हैं वे आभरण वस्त्र रहित स्वाभाविक विभूषा वाले है । अहो भगवन् ! सौधर्म ईशान देवलोक मे देवी कैसी विभूषा वाली कही हैं ? अहो गौतम ! उनके दो भेद कहे है। वैक्रेय शरीर वाली और वैक्रेय रहित शरीर वाली । जो वैक्रेय शरीर वाली हैं वे झाझर प्रमुख आभूषण सहित, शब्दवत सुवर्णमय घुघरी सहित है । प्रवर उत्तम वस्त्र पहिने हुए है, चन्द्र समान मुख है, चन्द्र समान विलासवाली है, अर्ध चन्द्र समान ललाट है । इगितादि और आकार से मनोहर वेश वाली है । सगत प्रमुख यावत् प्रतिरूप है और जो वैक्रेय बिना—भवधारणीय शरीर वाली देवांगना है व आभरण वस्त्र रहित स्वाभाविक शरीर की शोभा वाली है शेष देवलोक में देविया नही है इससे इनका कथन आगे नही किया है और अच्युत देवलोक पर्यंत देवो के शरीर की विभूषा का कथन सौधर्म ईशान देवलोक के देवो जैसा जानना । अहो भगवन् ! ग्रैवेयक देवो के शरीर की विभूषा कैसी है ? अहो गौतम ! आभरण वस्त्र रहित हैं वहा देवी नही है । स्वभाव से ही विभूषा वाले शरीर हैं। ऐसे ही अनुत्तरोपपातिक पर्यंत कहना ॥३१॥

अहो भगवन ! सौधर्म ईशान देवलोक मे देव कैसा काम भोग का अनुभव करते हैं ? अहो गौतम ! इष्ट शब्द इष्ट रूप यावत स्पर्श का अनुभव करते है। ऐसे ही ग्रैवेयक पर्यंत कहना अनुत्तरोपपातिक मे अनुत्तर शब्द यावत् अनुत्तर स्पर्श का अनुभव करते हैं स्थिति सबधी कहना। देव वहा से चवकर अन्यस्थान जाते है। वह भी कहना ॥३२॥

अहो भगवन् ! सब प्राण भूत जीव और सत्त्व सौधर्म ईशान देवलोक मे पृथ्वी काया पने यावत् वनस्पति कायापने, देवपने, देवीपने आसन, शयन यावत् भडोपकरणपने क्या पहिले उत्पन्न हुए ? हा गौतम ! एक वार अथवा अनतवार उत्पन्न हुए शेष देवीलोक मे वैसे ही कहना परन्तु वहा देवीपने उत्पन्न नहीं हुए यों अनुत्तरोपपातिक पर्यंत कहना, अनुत्तरोपपातिक मे वैसे ही कहना परन्तु वहा देवतापने नहीं उत्पन्न हुए। यह देव उद्देशा सम्पूर्ण हुआ।

उववाइ सूत्र

अहो भगवन ! जिसने संयम नहीं साधा, जिसने पापो से निवृति नही की वास्तविक श्रद्धान के द्वारा पापकर्म हलके नही किये और सर्वविरति से आते हुए पापकर्म नही रोके, वे जीव यहां से मर मर, दूसरे जन्म में क्या देव होते है ?

हे गौतम ! कोई देव होते है, कोई देव नही होते हे भगवन् ! आप किस कारण से इस प्रकार कहते हैं कि—कोई जीव देव होते हैं और कोई जीव देव नही होते ?

हे गौतम ! जो ये जीव ग्राम, आकर, नगर, निगम, राजधानी, खेड, कब्बड, मडंब, द्रोणमुख, पट्टण आश्रम, प्रवाह और सन्निवेशो मे, कर्मक्षयादि की इच्छा से रहित भूख-प्यास के सहने से ब्रह्मचर्य के पालन से अस्नान, शीत, आतप, मच्छर स्वेद (=पसीना), 'जल' (=रज), 'मल' (=सूखकर कठोर बना हुआ मैल) और पङ्क (=पसीने से गीला बना हुआ मैल) के परिताप से, थोड या बहुत काल तक, अपने को क्लेशित करके क्लेश देते हैं । थोडे वहुत समय तक अपने को क्लेशित करके काल के समय मे काल करके, वाणव्यन्तर देवो की जाती मे से किसी भी जाती मे, देव रूप से उत्पन्न होते हैं। वहा उनका

जाना स्थित रहना और देव रूप मे होना कहा गया है।

वदनीय कर्म की तीव्र वेदना के कारण, महनीय कर्म का वेदन मन्द हो जाता है। जिस से देवायु का वन्ध होता है।

हे भगवन्! उन देवो का आयुष्य, कितने काल का बतलाया गया है।

हे गौतम! दस हजार वर्ष की स्थिति बतलाई गई है।

भन्ते! उन देवो की ऋद्धि (परिवारादि सम्पत्ति) द्युति, (शरीर, आभरणादि की दीप्ति), यश (ख्याति) बल (शारीरिक प्राण) वीर्य (जीवप्रभाव या जीव जनित प्राण), पुरुषाकार (पुरुषाभिमान मर्दानगी) और पराक्रम (हिंमत भरा बहादुरी) है।

हां! है।

हे भगवन! क्या ये देव परलोक के आराधक हैं! यह आशय संगत नही हैं। अर्थात् वे परलोक क आराधक नही है।

ये जो इन ग्राम आकर सन्निवेशो मे मनुष्य होते है यथा—अन्दुक (लोहेया काठ के बन्धन विशेष) से जिनके हाथ पैर जकडे हुए है, वेडियो से जकडे हुए, कोडे में फसे हुए, अन्धकारमय कारागार मे पडे हुए, (सजा आदि के कारण) छिदे हुए हाथ, पैर, कान, नक होठ, जीभ, शीश, गलघण्टिका (मुख टेंटुआ)

कमर या उदर और जनेऊ के स्थल वाले (या जनेऊ के आकार मे छिदे हुए अगवाले।

जिनके हृदय का मास नोच लिया गया हो, जिनके नेत्र उखाड लिये गये हो जिनके दात उखडवा लिये हो जिनके अण्डकोश उखाडे गये हो जिनके गये के अवयव छेद दिये गये हो ऐसे व्यक्ति।

जिसे उसका देह से ही कोमल मास उखाड-उखाडकर खिलाया गया हो, जो रस्सी से बान्धकर खड्डे मे लटकाये गये हो जो भुजाओं से वक्ष की शाखा पर बाघे गये हो जो (चन्दन के समान) घिसे गये हो जो (दधिघट याघट के समान) घोलित (मथा गया) हुए हो, जो (लकडी के समान) कुठार से फाडे गये हो जो (इक्षु के समान) यन्त्र में पीले गये हो, जो शूली पर चढाये गये हो, जो शूल से भिन्न हो गये हों, ऐसे व्यक्ति, जिस पर क्षार डाला गया हो या जो क्षार में फेंके गये हो, जो गीले चमडे से बाघे गये हो जिन्हें सिंहपुच्छ से कर दिये गये हो ऐसे व्यक्ति।

टिप्पण 'सिंहपुच्छ यहा उपचार से' पुच्छ शब्द से 'मेहन' (लिग) का ग्रहन किया गया है। मैंथुन से निवत सिंह का मेहन अति घर्षण के कारण कदाचित् टूट जाता है। इस प्रकार किसी अपराध में राजपुरुष अपराधी के मेहन को तोड देते है उसे 'सिंह पुच्छित, कहते है अथवा हलक से लगाकर

पुतप्रदेश तक की चमडी उधेड कर सिहपुच्छा कार कर दी जाती है उसे सिह पुच्छा कहते हैं।

दावाग्नि से जले हुए कीचड में डूबे हुए कीचड में फसे हुए सयम से भ्रष्ट बनकर या भूख आदि परीषहो से घबराकर मरे हुए विषय- सेवन परतन्त्र होने से पीडित हो कर मरे हुए या हिरण के समान शब्दादि विषयो में लीन बनकर मरे हुए, निदान करके मरे हुए, (बाल तपस्वी आदि), भावशल्य को या मध्यवर्ती भल्लि आदि शल्य को निकाले बिना ही मरे हुए, पवत से गिरकर, या महापाषाण के गिरने से मरे हुए, वृक्ष से गिरकर या वृक्ष के गिरने से मरे हुए, निर्जल प्रदेश मे जा पडने वाले, पर्वत से झपापात करके मरने वाले, वृक्षो से झपापात करके मरने वाले, मरुभूमि की रेतो में गिरकर मरने वाले ।

जल में प्रवेश करके मरने वाले, अग्नि में प्रवेश करने वाले, विष भक्षण करने वाले, शस्त्र से अपने आप को विदा- रने वाले, गले में फासी लगाकर या तरुशाखादि आकाश में उछल कर मरने वाले, किसी के मरे हुए कलेवर में प्रवेश करके गृद्ध पक्षियो की चोचो से मरने वाले, जगल में और दुर्भिक्ष मे मरने वाले।

यदि ये व्यक्ति स क्लिष्ट परिणाम (=महा आर्त-रोद्रध्यान) वाले न हो तो काल के समय काल करके, वाणव्यतर के देवलोक में से किसी देवलोक मे देवरूप में उत्पन्न होते हैं। वहां

उनकी गति, स्थिति और उत्पत्ति कही गई है ? भन्ते ! वहा कितनी स्थिति है ? गौतम ! बारह हजार वर्ष की ।

भन्ते उन देवो के ऋद्धि पराक्रम है ?-हा है। भन्ते ! वे देव, परलोक के आराधक हैं ! यह आशय स गत नही है ?

ये जो ग्राम, आकर मे मनुष्य होते हैं यथा—स्वभाव से ही भद्र अर्थात् परोपकार करने वाले स्वभाव से ही शान्त, स्वभाव से ही क्षणिक या हलके क्रोध, मान माया और लोभवाले कोमल-अहङ्कार रहित स्वभाव वाले गुरुजनो (बडो) के आश्रित, विनीत, माता-पिता के सेवक, माता-पिता के वचनो का उल्लघन नही करने वाले अल्प इच्छावाले, अल्प आरम्भ (=कृषि आदिरूप पृथ्वी आदि जीवो का उपमर्दन वाले, अल्प परिग्रह (धन धान्यादि को स्वीकार वाले, अल्प आरम्भ (=जीवो का विनाश) अल्प समारभ (=जीवो को परितापित करना) और आरम्भ समारम्भ से जीविका उपार्जन करने वाले बहुत वर्षों की आयु व्यतीत करते है ।

आयुष्य व्यतीत करके काल के समय मे काल करके, वाणव्यतर के किसी देवलोक मे देवरूप से उत्पन्न होते हैं गौतम ! उनकी चौदह हजार वर्ष की स्थिति है।—ये जो ग्राम सन्निवेशो मे स्त्रियां होती है !

जैसे—जो अन्त पुर मे रहती हो, जिनके पति परदेश चले गये हों, जो बाल विधवा हो जिन्हे पतियों ने छोड दिया हो, जो माता-पिता या भाई से रक्षित हो जो कुलगृह (पीहर-नेहर, या श्वसुरकुल (सुसराल) से रक्षित हो !

(विशिष्ट सस्कार के अभाव के कारण); जिनके नख, केश और काख के बाल बढ गये हो, जो फूल गध माला और अलङ्कारो से दूर रहती हों, जो अस्नान, स्वेद, रज, मल और पङ्क (पसीने से गीले हुए मैल) से परितापित हो, जो दूध, मद्य और मास से रहित आहार का सेवन करती हो, जिनकी इच्छाए अल्प हों, जो अल्प हिंसावाली हो, जिनका परिग्रह (=धनादि का सचय या) स्वाकार) अल्प हो और जो हिंसा अल्प आरम्भ-समारम्भ से वृति (=आजीविका) करने वाली हो, ऐसी स्त्रिया अकाम (=निर्जरा की इच्छा के बिना) ब्रह्मचर्य के पालन से उसी पति की शय्या का अतिक्रमण नही करती हैं अर्थात् अकाम ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई रहती है, किन्तु उपपति नही करती हैं। वे स्त्रिया इस प्रकार की चर्या से जीवन व्यतीत करती हुई शेष उसी तरह यावत् चौसठ हजार वर्ष की स्थिति है।

ये जो मनुष्य होते है। जैसे—उदकद्वितीय (=ओदन द्रव्य की अपेक्षा से दूसरा द्रव्य जल अर्थात् एक भात और दूसरा जल ऐसे दो द्रव्य के भोजी), उदकतृतीय (=ओदन आदि दो द्रव्य और तीसरा जल के भोजी), उदकसप्तम (=ओदन भात आदि छह द्रव्य और सातवें जल के भोजी), उदकएकादश (=भात आदि दस द्रव्य और ग्यारहवें जल के भोजी)।

यहा गौतम शब्द का अर्थ है बैल से आजीविका करने वाले), गोव्रतिक (=गाय से सम्बन्धित व्रतवाले), गृहधर्मी, धर्म-

चिन्तक (=धर्मशास्त्र पाठक), अविरुद्ध (=वैनयिक भक्ति-मार्गी), विरुद्ध (अक्रियावादी), वृद्धणवक (ब्राह्मण अथवा वृद्ध (तापस) और श्रावक (ब्राह्मण प्रभृति—

टिप्पण—पैरो मे पडने आद व विचित्र शिक्षा से शिक्षित ओर जन से चिताक्षेप में दक्ष, छोटे बैल के द्वारा भिक्षाटन करते वाले को 'गौतम कहते हैं।

गाय से सम्बन्धित व्रत के करने वाले को 'गोव्रतिक कहते हैं। वे गायो के ग्राम के बाहर निकलते हैं। चरने पर चरते हैं। पीने पर पीते हैं आने पर आते है सोने पर सोते हैं कहा है—

गृहस्थधर्म ही श्रेष्ठ है—ऐसा विचार करके देव, अतिथि आदि के लिये दानादि रूप गृहस्थधर्म का अनुमान करने वाले को 'गृहिधर्मी' कहते हैं ?

अविरुद्ध-वैनयिक (देवादि का विनय करने वाला)। कहा है —
अविरुद्धो विणयकरो, देवाईण पराय भतीए।

जह वेसियायणसुओ, एव अन्नेडवि नापव्वा वृद्ध अर्थात् तापस। बृद्धकाल (पुरातन काल मे) दीक्षा लेने के कारण और आदिदेव के काल में सकल लिगियों मे पहुले उत्पन्न-होने के कारण तापसो को 'वृद्ध' कहा गया है —

धर्म शास्त्र को श्रवण करने के कारण ब्राह्मणो को श्रावक

कहा गया है अथवा वृद्ध शब्द को श्रावक का विशेषण मान लिया जाता तो भी 'वुड्ढसावय' (=पुराने श्रावक) का अर्थ ब्राह्मण ही होगा।

उन मनुष्यों के ये नव विकृतिया खाने का कल्प नही है। यथा दूध, दही, मक्खन, घी, तेल गुड (=फाणित), मधु (शहद) मद्य (=शराब) और मांस । इन मे से एक सरसों का तेल छोड कर) वे मनुष्य अल्प इच्छा वाले शेष सब पूर्ववत् । केवल स्थिति चौरासी हजार वर्ष की है।

वे जो ये गङ्गा के किनारे रहने वाले वानप्रस्थ (वन-वासी) तापस होते हैं । जैसे-होत्रिक (अग्निहोत्र करने वाले), वस्त्रधारी, कौत्रिक—भूमिशायी (=भूमि पर सोने वाली), यज्ञयाजी (याज्ञिक =यज्ञ करने वाले), श्रद्धा करने वाले, पात्र रखने वाले या खप्परधारी कुण्डिकाधारी, फलभोजी, एक बार पानी मे डुबकी लगाकर स्नान करने वाले (=उन्मज्जक), सन्मज्जक (=उन्मज्जन) के बार बार करने से स्नान करने वाले), निमज्जक (=पानी में कुछ देर तक डूब कर स्नान करने वाले), संप्राक्षालक (=मिट्टी आदि के द्वारा रगड कर अंगों को धोने वाले)।

गंगा के दक्षिण के किनारे पर ही रहने वाले, गंगा के उत्तरी किनारे पर ही रहने वाले, शख धमाकर भोजन करने वाले, किनारे पर स्थित होकर शब्द करके भोजन करने वाले, मृगलुब्धक, हस्तितापस (=हाथी को मारकर, उसके भोजन से बहुत काल व्यतीत करने-वाले)

डण्डे को ऊचा रखकर फिरने वाले, दिशाओ की तरफ पानी छीट कर फूल फलादि चुनने वाले, वल्कलधारी (अम्बुवासी ? बिलवासी), वस्त्रधारी, जल मे ही रहने वाले, वृक्ष के मूल मे रहने वाले।

जलाभिसेयक ढिणगायमूपा—त्तिपा मात्र जलभक्षक, वायुभक्षक, शैवाल (=कोई=सेवार भक्षक, मूलाहारी, कदाहारी, त्वचा (=छाल) आहारी, पत्राहारी, पुष्पाहारी, बीजाहारी सडे हुए या गिरे हुये या किसी के द्वारा छोडे गये कद, मूल, छाल, पत्र, फूल और फल का आहार करने वाले, बिना स्नान किये भोजन नही करने वाले या स्नान के कारण सफेद बनी हुई देववाले (वृद्धा)'

ओर पञ्चाग्नि की आतापना के द्वारा अपने आपको अगारो से पका हुआ-सा करते हुए, बहुत वर्षों तक उस अवस्था को पालकरके काल के समय मे काल करके उत्कृष्ट रूप से ज्योतिषी देवों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं। पल्योपम ओर एक लाख वर्ष अधिक की स्थिति . ये परलोक के आराधक नही हैं।

ये जो सन्निवेशो मे प्रवृजित श्रमण (=निर्ग्रन्थ) होते हैं। जैसे—हास—परिहास करने वाले (=कान्दर्पिक), भाड के समान चेष्टा को करते हुए स्वय हसकर दूसरो को हसाने वाले (=कौकू—चिक), ऊटपटाग वृथा बोलने वाले (=मौखरिक), गीत के साथ रमणक्रीडा जिसे प्रिय हो या गीत रतिवाले लोक जिसे प्रिय हो

ऐसे श्रमण (=गीतरति प्रिय) और अस्थिर शीलाचार वाले या नर्तनशील। वे ऐसी चर्या से काल व्यतीत करते हुए, बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय को पालते हैं।

उस स्थान की (=अतिचार-दोष सेवन की) आलोचना प्रतिक्रमण (=उनको दोष रूप से मानकर पश्चाताप) किये बिना ही, काल के समय मे काल करके, उत्कृष्ट सौधर्म-कल्प(=पहले देवलोक) में कान्दर्पिक देवों मे उत्पन्न होते हैं। एक लाख वर्ष अधिक एव पल्योपम की स्थिति होती है।

ये जो सन्निवेसो में परिव्राजक होते हैं। यथा-साख्य (=बुद्धि—अहङ्कारादि तत्वों का मनने वाले और प्रकृति और पुरुष दोनो को जगत्कारण मानने वाले) योगी (=अध्यात्म शास्त्र के अनुयायी कपिल) (=निरीश्वर सांख्य, भार्गव)

टिप्पण—साख्य और योगियो का तत्त्वज्ञान समान है। अन्तर केवल इतना ही है कि साख्य तत्त्वज्ञान पर अधिक जोर देते हैं और योगी अनुष्ठान पर। साख्य को कुछ लोग निरीश्वरवादी मानते हैं तो कुछ लोग ईश्वरवादी। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उनमे दोनो प्रकार के मतवादी थे। जो निरीश्वरवादी थे वे कपिल कहलाते थे।

जो सृष्टि के कारण रूप से अनादि से निर्लिप्त पुरुष विशेष को मानते हैं। वे ईश्वरवादी और सृष्टिकर्त्ता रूप से ईश्वर को मानने से इन्कार करते हैं वे निरीश्वरवादी कहलाते हैं।

भृगुऋषि के शिष्य भार्गव कहलाते हैं। (चार प्रकार के परिव्राजक यति) हंस (=पर्वत की गुफा, आश्रम, देवकुल आदि में रहने वाले और भिक्षार्थ ग्राम में प्रवेश करने वाले परिव्राजक), परमहंस (=वे परिव्राजक यति जो नदी के पुलिनो (=किनारो पर या समागम प्रदेशो मे रहते हो और चीर कौपीन और कुश का त्याग करके प्राण छोडते हो), बहूदक (गाव मे एक रात्रि और नगर मे पाच रात तक वास करते हुए, अपने योग्य प्राप्त सामग्री का उपयोग करते हुए, विचरण करने वाले परिव्राजक यति), कुटीचर (=वे जो घर मे रहते हुए क्रोध, लोभ और मोह से दूर रह कर, अहङ्कार का त्याग करते हैं। और कृष्ण परिव्राजक (=नारायण भक्त परिव्राजक विशेष)

उन (परिव्राजको) मे ये आठ (जाति के) ब्राह्मण परिव्राजक होते हैं। यथा—१ कृष्ण २ करकण्ड, ३ अम्बड, ४ पाराशर ५ कृष्ण, ६ द्वीपायन, ७ देवगुप्त और ८ नारद। उनमें ये आठ क्षत्रिय परिव्राजक होते हैं। यथा =१ सलिई (=शलिजित्) २ ससिहार (=शीशधर) ३ नग्गई, ४ भग्गई, ५ विदेह ६ रायाराय, ७ रायाराम और ८ बल।

टिप्पण :—इन सोलह जाति के परिव्राजको का वर्णन कही देखने मे नही आया। टीकाकार ने भी 'लोकतोऽवसेया' कहकर व्याख्या नही की है।

वे परिव्राजक ऋजु यजु साम, अथर्वण पाचवां इतिहास (-पुराण) और छट्ठे निघण्टु (नाम कोश) रूप अंगोपांग और

रहस्य सहित चारो वेदों के सारग (अध्यापन के द्वारा प्रवर्तक या दूसरो को याद करवाने के कारण स्मारक), पारग (अन्त तक पहुचने वाले) और धारग (धारण करने में समर्थ) थे (क्वचित् वारग=भ्रष्ट उच्चारण आदि के वारक)

शिक्षा (=अक्षर-स्वरूप निरूपकशास्त्र कल्प (=तथा), विध आचार निरूपक शास्त्र), व्याकरण, छन्द, निरुक्त (=शब्दो की निरूक्ति व प्रतिपादक शास्त्र) और ज्योतिष शास्त्राह्न दो के छह अगो के ज्ञाता (सखागविन्द्र षष्ठितन्त्र (=कापिलीय तन्त्र) के पण्डित और गणित (=मखांण) तथा ओर भी वेद के व्याख्यान रूप ब्राह्मण सम्बन्धी शास्त्रों मे पूर्ण रूप से निष्णात् थे ।

वे परिव्राजक दानधम शौचधर्म, (=स्वच्छता रूप धर्म और तीर्थाभिषेक (=तीर्थस्नान का कथन करते हुए, समझाते हुए प्रतिपादन करते हुए विचरते थे ।

'जो हमे किञ्चित् भी अशुचि होती है तो उसे जल और मिट्टी से धोकर पवित्र हो जाते हैं इस प्रकार हम स्वच्छ (=विमल देह और वेशवाले) और स्वच्छ (विमल) आचार वाले—शुचि (=पवित्र) और शुचि आचार वाले होकर जल द्वारा अभिसेक (=स्नान) से पवित्र आत्मा बनकर, निर्विघ्न स्वर्ग में जायेंगे ।'

उन परिव्राजकों का मार्ग मे गमन के सिवाय कूप, तालाब,

नदी, बावडी, पुष्करणी (=कमलों से भरा हुआ मालेघातव ध जलाशय) दीर्घिका (=सारणी) गुञ्जलिका (=एक तरह की बावडी =वक्रसारणी) सर और सागर में प्रवेश करने का कल्प नही है ।

कल्प (आचर) नही हैं—गाडी यावत् डोली मे—चढकर चलने का ।

उन परिव्राजको का कल्प नही है—घोडे, हाथी, ऊट, बैल भैसे और गधे पर सवार होकर चलने का।

उन का कल्प नही है, नटप्रेक्षा (=नट के अभिनय) मागध प्रेक्षा देखने का ।

उनका कल्प नही है । वनस्पति को परस्पर मिलाने या मसलने, इकट्ठी करने, ऊचो करने और उखाडने का। उन का कल्प नही है—स्त्रीकथा, भातकथा, देशकथा, राजकथा और चोरकथा—जिनसे कि स्वपर को क्लेश हो ऐसी निरर्थक कथाएं करने का तुम्बे, लकडी और मिट्टी के पात्रो के सिवाए, लोहे, त्रपुक (=कथाए), ताम्र, जसद, शीशे, चादी और सोने के पात्र रखने का कल्प नही है ।

जाव करण से निम्न विशेषण—वाले पात्र ग्रहण किए गए हैं—"त्रपुकसीसकरजतजात रूप कायवेड्रिनयवृत—लोहकसलोहहा—पुट करीरिका मणिशखदतचर्मशैलशब्द विशेषितानि पात्राणि दृश्याणि ।'

जातरूप=स्वर्ण । वृतलोह=त्रिकुठी। कललोह=कांसा । हारपुटक =मोती के सीप के पुट। रीतिका=पीतल ।

उनके लोहे के वन्धन, कथीर के वन्धन, ताम्बे के बन्धन यावत् किसी भी प्रकार के बहुमूल्य बन्धनवाले (पात्र रखना नही कल्पता है।

गेरूए रंग से रंगे हुए (=धातुरत्त) वस्त्र के सिवाय=दूसरे नाना प्रकार के रंगो से रंगे हुए वस्त्र धारण करने का कल्प नही है।

एक ताम्बे की पवित्रक (=अंगूठी) के सिवाय, अन्य हार, अर्द्धहार, एकावली, मुक्तावली कनकावली, रत्नावली, मुरवि, कंठ-मुखी (=कंठला) प्रालम्ब (=लम्बी माला), त्रिसरक, कटिसूत्र, दस अंगुठिया, कटक, त्रुटित, अंगद, केयूर, कुण्डल या चूडामणि (=मुकुट) पहनने का कल्प नही है ।

एक कर्णपूरक (=फूलो का कान का आभरण) के सिवाय, अन्य ग्रन्थिम (=गून्थी हुई) वेष्टिम (=लपेटने से बनी हुई है), पूरिम (=वंशशलाका—जाल) के पूरणमय या पूरने से बनी हुई और संघातिम (=संघात से बनी हुई= नाल में नाल उलझाने से बनी हुई) इन चार तरह की मालाओ को धारण करने का कल्प नही है । एक मात्र गंगा की मिट्टी के सिवाय, अगरू चन्दन अथवा कुंकुम से शरीर को लिप्त करनेका कल्प नही है उनको एक मागध प्रस्थक जल ग्रहण करना कल्पता

है वह भी बहता हुआ, बधा हुआ नही । निर्मलभूमि का जल, नीचे कीचड जमा हुआ, बिना छना हुआ नही दिया हुआ, अदत्त नही । =पीने के लिए ही, किन्तु हाथ, पैर, चरू, चमस, (= लकडी का चम्मच— दर्विका) धोने के लिये या स्नान करने के लिए नही।

टिप्पण—जैसे आजकल बगाली तोल आदि तोल प्रसिद्ध है। वैसे ही पहले मागधादि तोल प्रसिद्ध । मागधप्रस्थक का उल्लेख उपर्युक्त सूत्र मे हुआ है । वह प्रमाण इस प्रकार है।

उन परिव्राजको के आधा मागध आढक जल लेने का कल्प है । वह भी बहता हुआ, बधा हुआ नही यावत् अदत्त नही.. हाथ, पैर, चरु चमस को धोने के लिए, पीने और स्नान के लिए नही ।

वे परिव्राजक इस तरह की चर्या से रहते हुए, बहुत वर्षों तक उस अवस्था को धारण करते हैं। फिर काल के समय में काल करके, ब्रह्मलोक कल्प (=पाचवें स्वर्ग) में देव रूप से उत्पन्न होते है । उनकी दस सागरोपम की स्थिति है । शेष उसी प्रकार ।

वे जो ग्राम ॰ में प्रव्रजित श्रमण होते है। जैसे—आचार्य के प्रत्यनीक (विरोधी), उपाध्याय के प्रत्यनीक, कुल के प्रत्यनीक और गण के प्रत्यनीक, आचार्य-उपाध्याय का अपयश करने वाले और अनादर करने वाले ।

वे (=आचार्यादि के विरोधी) असद्भाव के आरोपण अथवा उत्पादन और मिथ्याभिनिवेश के द्वारा अपने को, दूसरों को और स्वपर को बुरी बात की पकड-असत्य हठाग्रह मे लगाते हुए-असद्भाव (=अनहोनी बातें) का आरोपण-कल्पना मे मजबूत बनाते हुए, विचरण करके, बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करते हैं। उन दोषो का आलोचन—प्रतिक्रमण किये बिना ही, काल के समय में काल करके, उत्कृष्ट लान्तक कल्प (छटठे स्वर्ग) में देवकिल्विषिको (=चाण्डाल तुल्य देवो) मे किल्विषिक (=साफ-सफाई करने वाले) देव रूप से उत्पन्न होते है। स्थिति तेरह सागरोपम की . परलोक के आराधक नही। शेष पूर्ववत्।

ये जो सज्ञी (=मनवाले) पञ्चेन्द्रिय (=पाचो इन्द्रियो वाले) तियञ्च योनिक (=पशु आदि) पर्याप्तक होते हैं। जैसे जलचर, नभचर और स्थलचर।

उनमें से कई जीवों को, शुभ परिणाम, प्रशस्त अध्यव-साय और विशुद्ध लेश्या से तदावरणीय (=पूर्वजन्म की स्मृति के आवारक) कर्मो का क्षयोपशम होने से, पदार्थो को जानने मे प्रवृत्त हुई बुद्धि और पदार्थों का निश्चयात्मक ज्ञान कराने वाली बुद्धि के द्वारा वस्तु के स्वकीय धर्मो के अस्तित्व और परकीय धर्मो के नास्तित्त्व रूप हेतु से, वस्तुतत्त्व का निर्णय करते हुए, मनवाले जीव के रूप मे किये हुए पहले के भवो की स्मृति रूप जातिस्मरण पैदा होता है।

तब जातिस्मरण ज्ञान के पैदा होने पर, स्वय ही पाच अणुव्रतो (=पूर्ण साधना की अनुगमन करने वाले व्रत) को स्वीकार करते है। बहुत—से शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास से आत्मा को भावित करते हुए, बहुत वर्षों की आयुष्य पाते हैं।

भक्त का प्रत्याख्यान करते हैं। बहुत-से भोजन के समयो को बिना खाये पीये ही काटते हैं। दोषो की आलोचना करके, उनसे परे होते है। समाधि को प्राप्त करते हैं और काल के समय मे काल करके, उत्कृष्ट सहस्रारकल्प (=आठवें स्वर्ग) मे देव रूप से उत्पन्न होते हैं। अठारह सागरोपम की स्थिति। परलोक के आराधक। शेष पूर्ववत्।

ये जो ग्राम में आजीविका (=नियतिवादी) होते हैं। जैसे-एक घर से भिक्षा लेकर बीच में दो घरों—को छोड कर भिक्षा लेने वाले, तीन घर के अन्तर मे भिक्षा लेने वाले सात घर के अन्तर से भिक्षा लेने वाले नियम विशेष से कमल डठल की भिक्षा लेने वाले प्रत्येक घर पर भिक्षाटन करने वाले, बिजली चमकने पर भिक्षा ग्रहण नहीं करने वाले और मिट्टी के बडे भाजन में प्रविष्ट होकर तप करने वाले।

वे इस प्रकार की चर्या से बहुत वर्षों की पर्याय अवस्था को पालकर, काल के समय मे काल करके, उत्कृष्ट अच्युत कल्प (=बारहवें स्वर्ग) में देव रूप से उत्पन्न होते हैं। बावीस सागरोपम की स्थिति परलोक के अनाराधक। शेष

पूर्ववत् । ये जो ग्राम मे प्रव्रजित श्रमण होते हैं । जैसे- आत्मोत्कर्षिक (अपना ही उत्कर्ष बतलाने वाले) (=वरादि से पीडितो को उपद्रव से रक्षा के लिये भूति=भभूत भस्म देने वाले) और बार बार कौतुक (=सौभाग्यादि के निमित्त की जानेवाली क्रिया विशेष) करने-कराने वाले।

वे इस चर्या से विचरते हुए बहुत वर्षों की श्रमण अवस्था को पालते हैं। उन दोष-स्थानो की आलोचना-प्रतिक्रमण किये बिना ही, काल के समय मे काल करके, उत्कृष्ट अच्युत-कल्प मे अभियोगिक (=सेवक जाति) देवो मे उत्पन्न होते हैं। बाईस सागरोपम की स्थिति परलोक के अनाराधक। शेष पूर्ववत्।

टिप्पण—उन श्रमणो के देवत्व का कारण चरित्र है और सेवकता का कारण आत्मोत्कर्ष है।

ये जो ग्राम मे निह्नव (=जिनोक्त अर्थ के अप-लापक) होते हैं। जैसे—१ बहुरत (अनेक समयो के द्वारा ही कार्य की निष्पत्ति माननेवाले) २ जीवप्रादेशिक (=एक प्रदेश भी न्यून हो वह जीव नही होता है अत जिस एक-प्रदेश को पूर्णता से जीव, जीव रूप से माना जाता है, वही एक-प्रदेश जीव है ऐसा मानने वाले), ३ अव्यक्तिक (=समस्त जगत् अव्यक्त है ऐसा मत मानने वाले) ४ सामुच्छेदिक (नारकादि भावो का प्रति क्षण क्षय होता है—ऐसे मत को मानने वाले), ५ द्वैक्रिया

(=एक समय में दो क्रिया का अनुभव होना मानने वाले), ६ त्रैराशिक (—जीव, अजीव और नोजीव रूप तीन राशियो के मानने वाले) और ७ अवद्दिक (= जीव कर्म मे अहिकचुकिवत् स्पृष्ट है क्षीर-नीरवत् बन्द वही—ऐसे मत के मानने वाले)।

ये सात प्रवचन के उपलापक, चर्या और लिंग की अपेक्षा से साधुके तुल्य—किन्तु मिथ्या दृष्टि बहुत-से असद्भाव के उत्पादन और मिथ्यातव के अभिनिवेश के द्वारा स्वय को दूसरो को और स्वपर को झूठे आग्रह मे लगाते हुए असत् आशय में दृढ बनाते हुए, बहुत वर्षो तक साधु अवस्था में रहते हैं।

फिर काल के समय में—काल करके, उत्कृष्ट ऊपरी ग्रंवेयक में देव रूप से उत्पन्न होते हैं। एकतीस सागरोपम की स्थिति । परलोकके अनाराधक। शेष पूर्वमत् ।

टिप्पण—ये निह्नववाद क्रमशः जमालि, तिष्यगुप्त आषाढा-चार्य के शिष्य, अश्वमित्र, गगाचार्य, रोहगुप्त और गोष्ठीमाहिल से उत्पन्न हुए थे । जामालि को छोड कर शेष निह्लवो का अविर्भाव भगवान् महावीर स्वामि के निर्वाण के पश्चात् हुआ था। निह्लवों की क्रिया आदि जिनशासन के अनुसार ही होती हैं। किन्तु सिद्धान्त के किसी एकदेश को लेकर वे हठाग्राही—मिथ्य-भिनिवेशी बन जाते हैं । ये जो ग्राम में मनुष्य होते हैं। जैसे अल्प हिंसक, अल्प परिग्रही, धार्मिक (=श्रुतचरित्त रूप धर्म के धारक), धर्मानुराग (=धर्म का अनुसरण करने वाले), धर्मेष्ट

धर्म को ही इष्ट माननेवाले,) धर्माख्यायी (=भव्यों के लिये धर्म का कथन करने वाले) धर्मप्रलोकी (=धर्म को उपदेय मानने वाले), धर्मप्ररञ्जन (=धर्म के रग में रगे हुए) धर्म समुदाचार (=धर्म रूप सदाचारवाले), श्रुत या चरित्त धम से अविरुद्ध भाव के द्वारा आजीविका का उपार्जन करने वाले, सुशील सुव्रत (=सद्‌व्रती) और सुप्रत्यानन्द (=शुभभाव के सेवन में सदा प्रसन्न चित्त रहने वाले)।

वे साधुओं के पास मे अशत प्राणातिपात से क्रिया हटाते हैं, जीवन भर के लिये—अशत क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, अरतिरति मायामृषा और मिथ्यादर्शनशल्य से मन, वचन और काया की क्रिया हटाते (=प्रतिविरत=योगानिवृत) हैं। जीवन भर के लिए और अशत नही हटाते हैं।

मिथ्यादर्शन से जन्य अन्य पथिको के प्रति वन्दनादि की क्रिया उससे भाव से तो विरत हैं किन्तु राजाभियोगादि के कारण अविरत हैं।—टी०) वस्तुत देखा जाय तो श्रमणोपासक त्याग की दृष्टि से तो सभी सावद्यादि क्रियाओ को त्याज्य ही समझता है। किन्तु निवृत होने मे शक्त्यानुसार ही प्रवृत होता है।

अपनी अशत अनिवृति मे, वह स्वकीय आत्मिक दुर्बलता का ही दर्शन करता है अर्थात् दृष्टि मे तो पूर्णत विशुद्धि है, किन्तु प्रवृत्ति में नहीं। अंशत क्रिया—निवत्ति में भी यही दृष्टि—

विशुद्धि कार्य कर रही है जो सूत्रकार ने 'विरया' शब्द के स्थान पर 'पडिविरया' शब्द का प्रयोग किया है, इसमे यही रहस्य प्रतीत होता है।

अंशत आरम्भ-समारम्भ से जीवनभर के लिए क्रिया निवृत होते हैं और अशत अनिवृत। अशत' करने-कराने से पचन-पचावन से निवृत होते हैं। जीवनभर के लिए और अशत अनिवृत।

अशत कुट्टन (खदिरादि) के समान छेद विशेष करना) पिट्टन (=मुद्गरादि से पीटना तर्जन (=उपालभ देना), ताडन चपेटादि से मारना) वध (मारना) बन्ध (रस्सा आदि से बाधना) और परिक्लेश (=बाधा उत्पादन) से जीवन भर के लिए और स्नान, मर्दन, वएकि, विलेपन, शब्द स्पर्श, रस रूप, गध, माल्य और अलङ्कार मे जीवन भर के लिए निवृत और अशत अनिवृत हैं।

और भी इसी प्रकार निन्दय—पापात्मक क्रिया से युक्त (=सावद्ययोग) और कूड-कपट के प्रयोजन से युक्त (=औप-धिक कर्मांश व्यापार—जो दूसरो के प्राणों को कष्टकर हो करते हैं, उनसे—यावत् अशत अनिवृत हैं। जैसे कि श्रमणोपासक होते हैं।

वे जीव और अजीव के स्वरूप को अनेक दृष्टियो से समझते हुए, पुण्य और पाप के अन्तर—रहस्य को पूर्णत। पाये

हुए और आश्रव (=आत्मा मे कर्म आगमन के मार्ग सवर (=कर्म प्रवाह को रोकने के उपाय निर्जरा (देशत कर्मक्षय, क्रिया (शरीरादि की प्रवृत्तिया प्रवृति से अनिवृत्ति) अधिकरण (—ससार के आधार या खड्गादि का निर्वर्तन सयोजन), बन्ध (—जड चेतन के मिश्रण की प्रक्रिया) और मोक्ष (—चेतन से जड का वियोग समस्त कर्मों का क्षय) मे कुशल होते हैं ।

वे देव (—वैमानिक देव), असुर नागकुमार (—भवनपति जाति के देव सुवर्ण (ज्योतिष्क देव) गरुड (—सुवर्णकुमार) गन्धर्व महोरग —व्यन्तर देव विशेष आदि देवगणो के द्वारा निर्ग्रन्थ— प्रवचन से विचलित नही होते हैं ।

वे निर्ग्रन्थ—प्रवचन मे नि शङ्कित, अन्य दर्शन के पक्षपात से मुक्त और फल के प्रति सदेह रहित होते हैं । वे लब्धार्थ (— अर्थ को पाये हुए), गृहीतार्थ (अर्थ को धारे हुए दृष्टार्थ (= प्रश्न पूछ कर अर्थ को जाने हुए), अभिगतार्थ (=अर्थ को अनेक दृष्टियों से जाने हुए) और विनिश्चितार्थ (अर्थ मे पूर्णत निश्च-यात्मक बुद्धि रखने वाले होते हैं । उनकी अस्थि मज्जा तक निर्ग्रन्थ—प्रवचन के प्रेमानुराग से रगी होती हैं ।'(यह उनका अन्तर्घोष है कि-—) "आयुष्यमान् ! यह जड-चेतन की ग्रन्थियो को खोलने वाला प्रवचन ही अर्थ (सार जीवन लक्ष्य या साधक है यही परमार्थ (चरम सत्य उपकार परायण है और शेष (सुख-कार लगने वाले पदार्थ उनको पाने की साधना कुप्रवचन आदि अनर्थ (—व्यर्थ या हानिकार हैं ।)"

टिप्पण—मार्ग की सत्यता का सन्देह, अन्य मार्ग का आकर्षण और कार्य की सफलता मे डगमगाता हुआ विश्वास साधना के नाशक और अवरोधक हैं । मार्ग की सत्यता की प्रतीति, अन्यत्र आकर्षण का अभाव और उसकी सफलता का दृढ निर्णय साधना के उत्पादक, प्रेरक और पोषक हैं ।

लब्धादि पदों के द्वारा बुद्धि के विविध रूपो का निर्देश किया गया है । बुद्धि के सग्राहात्मक, धारणात्मक, जिज्ञासात्मक प्रदेशात्मक और व्यवसायात्मक कार्य का वर्णन है । बुद्धि के इन विविध रूपो से क्रियाशील होने पर ही साधना मे सच्ची प्रीति और मुस्तदी की प्राप्ति हो सकती है ।

' निर्ग्रन्थ प्रवचन ही अर्थ है, परमार्थ है, शेष अनर्थ है' यह अन्तर्जल्प ही साधना की रीढ का कार्य करता है। वे अन्य को प्रेरित करने के लिए भी यही उद्घोष करते हैं।

वे उन्नत स्फटिक के समान निर्मल चित्त वाले और कपाट से द्वार को बन्द नही रखने वाले (अर्थात् सदर्शन के लाभ के कारण कही भी पाखण्डियों से नही डरने वाले, शोभनमार्ग के परिग्रहण के कारण निर्भय) होते हैं । लोगो के अन्तपुर गृह या द्वार में उनका प्रवेश प्रीतिकार होता है अर्थात् अति-धार्मिकता के कारण सर्वत्र अनाशङ्कनीय होते हैं । वे चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन प्रतिपूर्ण पौषध (—आत्मा की, पुष्टि के लिए आहार, आदि चार तरह के त्याग की एक

दिन-रात की साधना) का विशेष शुद्धिपूर्वक पुन पुन पालन करते हुए, श्रमण-निर्ग्रन्थ के लिए निर्दोष और ग्रहण करने योग्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, ओषध; (—एक द्रव्याश्रित वस्तु अथवा त्रिफलादि दवा), भैषज्य (अनेक द्रव्यो की समुदाय रूप वस्तु अथवा पथ्य), काम हो जाने पर पुन. लौटा दिया जाने योग्य (—पडिहारिय) आसन, पाट निवास स्थान और सस्तारक को प्रतिलाभित करते (—देते हुए विचरण करते हैं ।)

टिप्पण—'ऊसिय-पवेसी' इन तीन पदो का उपर्युक्त अर्थ वृद्ध व्याख्या के अनुसार है । अन्य व्याख्या-'ऊसिय' ...अर्गला से रहित गृहद्वार वाले अर्थात् अतिशय दानी होने के कारण भिक्षुओ के प्रवेश में कोई रुकावट नही था । 'अवगुय=औदार्य के कारण उनके घर के द्वार सदा खुले थे । 'चियत्त' .. अन्तपुर या गृह में मुख्य द्वार से शिष्टजनो का प्रवेश उन्हें अप्रीतिकर नही था अर्थात् उनमें ईर्ष्या का अभाव था ।

फिर आहारादि का त्याग करते हैं । बहुत से भोजन के समयो को बिना खाये पीये काटते हैं । आलोचना प्रतिक्रमण करके, समाधि को प्राप्त होते हैं । काल के समय मे काल करके, उत्कृष्ट अच्युत कल्प (=बारहवे स्वर्ग) मे देवरूप उत्पन्न होते हैं । बाइस सागरोपम की स्थिति । आराधक शेष पूर्ववत् ।

ये जो ग्राम—नगर .में मनुष्य होते हैं ।, जैसे—अहिंसक

टिप्पण—मार्ग की सत्यता का सन्देह, अन्य मार्ग का आकर्षण और कार्य की सफलता मे डगमगाता हुआ विश्वास साधना के नाशक और अवरोधक हैं। मार्ग की सत्यता की प्रतीति, अन्यत्र आकर्षण का अभाव और उसकी सफलता का दृढ निर्णय साधना के उत्पादक, प्रेरक और पोषक हैं।

लब्धादि पदों के द्वारा बुद्धि के विविध रूपो का निर्देश किया गया है। बुद्धि के सग्राहात्मक, धारणात्मक, जिज्ञासात्मक प्रदेशात्मक और व्यवसायात्मक कार्य का वर्णन है। बुद्धि के इन विविध रूपो से क्रिया शील होने पर ही साधना मे सच्ची प्रीति और मुस्तदी की प्राप्ति हो सकती है।

'निर्ग्रन्थ प्रवचन ही अर्थ है, परमार्थ है, शेष अनर्थ है' यह अन्तर्जल्प ही साधना की रीढ का कार्य करता है। वे अन्य को प्रेरित करने के लिए भी यही उद्घोष करते हैं।

वे उन्नत स्फटिक के समान निर्मल चित्त वाले और कपाट से द्वार को बन्द नही रखने वाले (अर्थात् सदर्शन के लाभ के कारण कहीं भी पाखण्डियों से नही डरने वाले, शोभनमार्ग के परिग्रहण के कारण निर्भय) होते हैं। लोगो के अन्त पुर गृह या द्वार में उनका प्रवेश प्रीतिकार होता है अर्थात् अति-धार्मिकता के कारण सर्वत्र अनाशङ्कनीय होते हैं। वे चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन प्रतिपूर्ण पौषध (—आत्मा की, पुष्टि के लिए आहार, आदि चार तरह के त्याग की एक

दिन-रात की साधना) का विशेष शुद्धिपूर्वक पुन पुन पालन करते हुए, श्रमण-निर्ग्रन्थ के लिए निर्दोष और ग्रहण करने योग्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, औषध; (—एक द्रव्याश्रित वस्तु अथवा त्रिफलादि दवा), भेषज्य (अनेक द्रव्यो की समुदाय रूप वस्तु अथवा पथ्य), काम हो जाने पर पुन लौटा दिया जाने योग्य (—पडिहारिय) आसन, पाट निवास स्थान और सस्तारक को प्रतिलाभित करते (—देते हुए विचरण करते हैं ।)

टिप्पण—'ऊसिय-पवेसी' इन तीन पदो का उपर्युक्त अर्थ वृद्ध व्याख्या के अनुसार है । अन्य व्याख्या-'ऊसिय' ...अर्गला से रहित गृहद्वार वाले अर्थात् अतिशय दानी होने के कारण भिक्षुओ के प्रवेश मे कोई रुकावट नही था । 'अवगुय=औदार्य के कारण उनके घर के द्वार सदा खुले थे । 'चियत्त' . अन्त पुर या गृह मे मुख्य द्वार से शिष्टजनो का प्रवेश उन्हे अप्रीतिकर नही था अर्थात् उनमें ईर्ष्या का अभाव था ।

फिर आहारादि का त्याग करते हैं । बहुत से भोजन के समयो को बिना खाये पीये काटते हैं । . आलोचना प्रतिक्रमण करके, समाधि को प्राप्त होते हैं । काल के समय मे काल करके, उत्कृष्ट अच्युत कल्प (=बारहवे स्वर्ग) मे देवरूप उत्पन्न होते हैं । बाइस सागरोपम की स्थिति । आराधक शेष पूर्ववत् ।

ये जो ग्राम—नगर ....में मनुष्य होते हैं । जैसे-अहिंसक

अपरिग्रही, श्रुतचारित्रधर्म के धारक—यावत् धर्मानुसार ही वृत्ति करने वाले, सुन्दर शील वाले, सद्व्रती, शुभभाव के सेवन मे सदा प्रसन्न-उत्साह युक्त, साधु (आत्मभाव की साधना मे तल्लीन) जो सम्पूर्णत प्राणातिपात से अपनी क्रिया निवृत कर चुके हैं

यावत् सम्पूर्णत परिग्रह सर्वत क्रोध, मान, माया, लोभ मिथ्यादर्शन शल्य से मन, वचन और काया की क्रिया को हटा चुके हैं।

सर्वत हिंसा से दूसरो को पीडित करने से करने-कराने से पचन-पचावन (=पकाने पकवाने से कूटने-पीटने तिरस्कार करने मार मारने, वध करने, बाँधने और दुखित करने या बाधा उत्पन्न करने से सर्वत स्नान मर्दन, वर्णक (=उबटन), विलेपन, शब्द, स्पर्श रस, रूप, गध, माल्य और अलङ्कार से निवृत हो चुके हैं। और भी जो प्राप्त होने वाले इसी प्रकार के दूसरो के प्राणो को परितप्त करने वाली पाप क्रिया से युक्त और कूड कपटादि आवेश से अन्य कर्माशो को करते हैं। उनसे भी वे जीवन भर के लिए निवत होते हैं।

जैसे कि कोई—यथा नामक (अनगार होते हैं चलने फिरने मे, भाषा मे यत्नावान यावत् निर्ग्रन्थ—प्रवचन को ही सन्मुख रखते हुए या दृष्टि के आगे रखकर विचरण करते हैं। इस प्रकार की चर्या से विचरण करते हुए उन भगवन्तो मे से कुछ को अनन्त श्रेष्ठ केवल ज्ञान् और केवल दर्शन उत्पन्न होता है।

वे बहुत वर्षों तक केवली अवस्था मे विचरण करते हैं। फिर भात-पानी का त्याग करते हैं। बहुत से भोजन के समयो को निराहार काट देते हैं फिर वे जिस अर्थ के लिये देह के साज-सँवार से विरक्त बने थे-यावत् उस अर्थ को पाकर सब दु खो को नष्ट कर देते हैं।

और कइयो को केवलज्ञान-केवल दर्शन उत्पन्न नही होता है वे बहुत वर्षों तक छद्मस्थ कर्मावरण से युक्त अवस्था मे विचरण करते हैं। फिर किसी रोगादि बाधा के उत्पन्न होने या नही होने पर भात-पानी को त्याग देते हैं।

बहुत से भोजन के समयो को निराहार, बिताकर जिस ध्येय से धारण किया था नग्न भाव उस ध्येय की आराधना करके, अन्तिम श्वास नि श्वास मे अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात निरावरण कृत्स्न और प्रतिपूर्ण केवल ज्ञान और केवल दर्शन को प्राप्त करते हैं। उनके बाद सिद्ध होगे. यावत् दुखो का नाश करेंगे।

पुन कोई एक (भविष्य) मे एक ही मनुष्य देह को धारण करने वाले, अनुष्ठान विशेष का सेवन करने वाले या भय से बचाने वाले, क्षीण होते हुए कर्मो में से शेष रहे हुए कर्मों के कारण, उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध महाविमान मे देवरूप से उत्पन्न होते हैं वहा उनकी तैतीस सागरोपम का स्थिति है। वे आराधक हैं शेष पूर्ववत्।

ये जा ग्राम . मे मनुष्य होते है जैसे समस्त शब्दादि विषयो से निवृत या उनमे उत्सुकता से रहित, विषयाभिमुखता के कारणरूप समस्त आत्म-परिणाम विशेष से निवृत, सभी जगत् सम्बन्धो से परे रहे हुए, सम्बन्धो से हेतुरूप समस्त स्नेह के त्यागी, क्रोध को विफल करने वाले क्रोध का उदय ही नही होने देनेवाले, क्रोध को क्षीण कर देने वाले. .. इसी प्रकार मानादि को भी इसी अवस्था मे पहुचा देनेवाले, क्रमश आठ कर्म प्रकृतियो को क्षय करके ऊपर लोकाग्र पर स्थित होते हैं।

समाप्त